शरत्चन्द्र
व्यक्ति और साहित्यकार

# शरत्चन्द्र :
# व्यक्ति और साहित्यकार

मन्मथनाथ गुप्त

नेशनल पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली

# शरत्चन्द्र : व्यक्ति और साहित्यकार

मन्मथनाथ गुप्त

नेशनल पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली

नेशनल पब्लिशिंग हाउस
२६ ए, चन्द्रलोक जवाहर नगर दिल्ली
बिक्रीकेन्द्र नई सड़क दिल्ली

प्रथम संस्करण
दिसम्बर १९६२

मूल्य
६

मुद्रक
भारत मुद्रणालय (रजि०)
शाहदरा दिल्ली-३२

# भूमिका

बहुत दिन पहले मैंने शरत्चन्द्र पर एक पुस्तक लिखी थी। पर इस बीच शरत्चन्द्र की जीवनी पर बहुत नये उपकरण उपलब्ध हुए हैं, साथ ही राष्ट्रीय और अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्र में उनके साहित्य का प्रचार भी अधिक हुआ है। वह पहला संस्करण समाप्त हो गया पर उसके कारण उनके साहित्य को और भी अधिक समझने का मौका मिला है। यह सुनिश्चित है कि शरत् का स्थान कथाकार के रूप में पाश्चात्य के उन बहुत से बड़े महारथियों से ऊँचा है जिन्हें समय-समय पर नोबल पुरस्कार से सम्मानित किया गया है। उनकी कला के सम्बन्ध में इस पुस्तक में विस्तार के साथ आलोचना की गई है, इसलिए उसके सम्बन्ध में यहाँ कुछ नहीं कहा जायगा।

यहाँ केवल एक बात की ओर दृष्टि आकर्षित करना चाहूँगा कि शरत् की जनप्रियता को देखकर हिन्दी में जो देखो सो उनके साहित्य का अनुवाद कर रहा है। एक तरफ जहाँ इस पर खुशी प्रकट की जाती है, दूसरी तरफ घटिया अनुवादों से उनकी कला को समझने में और उसका मूल्यांकन करने में दिक्कत हो सकती है। इसलिए पाठकों से अनुरोध है कि वे शरत् को या तो मूल बंगला में पढ़ें या अच्छे अनुवादों में ही पढ़ें। अभी साहित्य अकादमी का ध्यान शरत् की ओर नहीं गया है, शायद इसलिये कि उनका यों ही बहुत प्रचार है, पर उनकी रचनाओं के प्रामाणिक और सुन्दर अनुवाद कराने का काम ऐसी ही संस्थाओं को अपने ऊपर लेना चाहिए। सम्भवतः घटिया पुस्तकों के महज सस्ते दर्जे के कुछ पाठकों को गुदगुदा देने के लिए तेरह भाषाओं में अनुवाद कराने की बजाय राष्ट्रीय और अन्तर्राष्ट्रीय महत्व के भारतीय लेखकों की रचनाओं का

मातृभाषातर भाषाओं में प्रामाणिक अनुवाद कराना चाहिए।

शरत्चन्द्र की इच्छा थी कि उनकी रचनाओं का योरोपीय भाषाओं में अनुवाद हो तो अंग्रेजी और रूसी में उनकी कुछ रचनाओं के अनुवाद हो चुके हैं। हमें यह स्मरण रखना चाहिए कि शरत्-साहित्य को राष्ट्रीय तथा अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्र में आगे बढ़ाने के लिए शान्तिनिकेतन की तरह एक पूरी संस्था तथा कृतविद्य शिष्यमण्डली नहीं है, फिर भी शरत् का प्रचार भारत के घर-घर में है। उनका पाठक-समाज से सीधा सम्बन्ध स्थापित हुआ। सब कुछ कह-सुन लेने पर भी यह निश्चित है कि अब तक के भारतीय-साहित्य में उपन्यासकार के रूप में शरत् का स्थान ही अत्यन्त श्रेष्ठ है। आशा है इस पुस्तक से शरत्-साहित्य को समझने में सहायता मिलेगी।

इधर हिन्दी के कुछ नये लेखकों ने यह जो प्रचारकार्य शुरू किया है कि शरत् रवीन्द्र-प्रेमचन्द्र बासी पड़ गए हैं और इस प्रकार अपने मेंढकी पैरों का माप बढ़ाकर नाल जड़वाने की इच्छा दिखाकर अपने को युग प्रवर्तक बनाना चाहा है, वह हास्यास्पद है। नये तो आएंगे और दूर की नई-नई कौड़ियां लायेंगे भी, पर जैसे डायसन और इलियट के आने से शेक्सपियर का कुछ नहीं बिगड़ा बल्कि उन पर नई रोशनी पड़ी उसी प्रकार शरत् का कुछ नहीं बिगड़ेगा। सच तो यह है कि 'शेष प्रश्न' में शरत् नये लेखकों के उभरते संसार का बहुत कुछ परिचय करा गए हैं।

अन्त में एक बात और। इधर शरत् जीवनी पर कई सनसनीमूलक तथ्य सामने लाए जा रहे हैं। शायद साहित्य की दृष्टि से कम और मनोविकार की दृष्टि से अधिक। जब शरत् स्वयं ही बता गए कि वह कभी 'शराबी-कबाबी' थे तो फिर इस दिशा में अधिक विष्टा टटोलने का क्या अर्थ है? कम से कम इससे साहित्य का कोई प्रयोजन तो सिद्ध न होगा ऐसा मेरा विश्वास है।

१६ गैबर पाम
दिल्ली–६

—मन्मथनाथ गुप्त

# क्रम



# उपक्रमणिका

कहानी सुनने की इच्छा मनुष्य में शायद उतनी ही प्राचीन है जितनी उसमें बोलकर अपने भावों को दूसरों पर जाहिर करने की शक्ति, कदाचित् यह उससे भी पुरानी हो। इसी इच्छा की पूर्ति के लिए अत्यन्त प्राचीन युग से ही पुराण, गाथा, इतिहास, उपाख्यान आदि रचे गये हैं। युग की रुचि के अनुसार जो भाव जिस युग में प्रधान थे, उन्हीं को लेकर उस युग में कहानी का ताना-बाना बुना जाता रहा। जिस युग में प्रकृति की अव्यक्त तथा अपरिमेय शक्ति को देखकर मनुष्य भय, आश्चर्य तथा अपनी क्षुद्रता के ज्ञान से विह्वल हो जाता था, उस युग की कहानियों में भूत प्रेत पिशाचों का प्रादुर्भाव था। जब धर्म का बोलबाला हुआ तो पुराण आदि के ढङ्ग पर कहानियाँ कही गईं। इनमें से कुछ तो बिल्कुल नये सिरे से गढ़ी गईं पर कुछ में केवल पुरानी कहानियों का युगानुसार नया संस्करण किया गया। ठीक उसी प्रकार अब यहूदियों की कहानियों को ईसाइयों ने तथा ईसाइयों की कहानियों को मुसलमानों ने नया रूप दे दिया। चाहे ग्रीस की पौराणिक कहानियों को पढ़िए चाहे भारत की (और इन्हीं दो स्थानों के पुराण सबसे अधिक दिलचस्प तथा विचित्र हैं, यहूदी, ईसाई तथा मुस्लिम पुराणों में तो कोई दिलचस्प या रोमांचकारी बात है ही नहीं) आप देखेंगे कि ये देवता तथा देवियाँ, अतिमानव (Supermen) तथा अतिमानवियाँ उसी प्रकार से प्रेम करती हैं, विरह में उसाँसें भरती हैं, प्रतिद्वन्द्वी को मारकर जलती हैं, उसके विरुद्ध षड्यन्त्र करती हैं, झूठ बोलती हैं जिस प्रकार मर्त्यलोक के रहने वाले मनुष्य। देवता या वीर भी अपनी प्रियतमा की मृत्यु पर बाल नोचकर रोते हैं फिर कुछ दिनों बाद सब भूल जाते हैं और दूसरी

सुन्दरी से अपना दिल लगाते हैं हूबहू वैसे ही जैसे हम आस-पास के मामों को करते देखते हैं या जैसा हम स्वयं करते हैं। तभी तो ये देवता तथा देवियाँ हमारे अन्दर दीर्घजीवी हो सकी हैं और तब तक जीती रहेंगी जब तक उनका मनुष्योचित आवेदन (human appeal) मौजूद रहेगा चाहे धर्म रहे या न रहे। रोम तथा एथेन्स में इस समय रोमन या ग्रीक पुराण को धर्म के अंग के रूप में मानने वाले कोई भी नहीं हैं फिर भी जुपिटर मिनर्वा और पाडारा की कहानियाँ सभी पढ़ते हैं। इसका कारण यही मनुष्योचित आवेदन है। अस्तु।

पर देवता आखिर देवता ही थे उनकी कहानियों को एक हद तक ही ले जाया जा सकता था। नव-नये बालक एक दायरे के अन्दर ही इन कहानियों को तोड़-मरोड़कर अपनी कल्पना के घोड़े दौड़ा सकते थे यदी मायाग्रा की बातें जाने दी जायें तो इसी नव-नये ढंग से कहानी का कहने की प्रवृत्ति के कारण संस्कृत में ही रामायण आदि धर्मग्रन्थों के कई कई संस्करण हुए। इन संस्करणों में केवल वर्णन-शैली ही भिन्न नहीं थी बल्कि छोटी-मोटी घटनाओं में भी यथेष्ट प्रभेद थे। मुख्य घटनाओं में प्रभेद हो ही कैसे सकता था? उस जमाने का समाज धार्मिक रंग में रँगा था इसलिए वह कहानी के लोभ से भी एक सीमा तक ही बहकाया जा सकता था। वह अपने वीरों को इस प्रकार बदलते देखना न तो पसन्द ही करता था न बर्दाश्त ही कर सकता था अतएव कहानी लेखकों का अब दूसरा रास्ता देखना पड़ा।

इस प्रकार कहानी अब भूत प्रेत पिशाच और देवताओं के स्वर्ग नरक से उतरकर मर्त्यलोक के साधारण मनुष्यों में उतर आई, किन्तु फिर भी वह मर्त्यलोक की न हो सकी। लेखकों की आदत कैसे जाती? इसका नमूना हमें धर्मप्रशंसा बोधकाधिया तथा उस युग के उपन्यासों में मिलता है। ये रचनाएँ मनुष्यों को लेकर ही लिखी गई थी किन्तु ये मनुष्य वे मनुष्य नहीं थे जिन्हें उनके पाठक देखते थे। धर्मप्रशंसा में

हैं कि पौराणिक कथा-साहित्य के बाद ऐसे काव्य महाकाव्य तथा नाटकों की उत्पत्ति हुई, जिनमें मनुष्य मुख्य थे और अन्य योनियों के लोग गौण थे फिर भी ये मनुष्य साधारण मनुष्य न होकर कवियों की कल्पना-जगत् के मनुष्य थे।

हिन्दी बँगला आदि भाषाओं की उत्पत्ति उस युग में हुई जब संस्कृत साहित्य में इसी प्रवृत्ति का प्रसार था। अतः उत्तराधिकार-सूत्र से इन साहित्यों में भी इसी प्रवृत्ति का संचार हुआ। साथ ही साथ संस्कृत साहित्य में जो प्रवृत्ति अब अप्रचलित-सी हो चली थी यानी पौराणिक गाथा पर कहानी-संकलन की प्रवृत्ति उसका भी इन भाषाओं में प्रचलन हुआ। पुराणों की कहानियों को लेकर प्राकृत भाषाओं में धड़ाधड़ अन्य काव्य तथा महाकाव्य लिखे जाने लगे। बँगला आदि के लेखक अक्सर संस्कृत से अनभिज्ञ थे इसलिये उन्होंने जनश्रुति पर निर्भर रहकर या दूसरों से सुनकर जो कुछ लिखा उसमें और संस्कृत के मौलिक कथा भाग में बहुत अन्तर पड़ गया। उन लेखकों को जहाँ मालूम नहीं था वहाँ उन्होंने कल्पना से काम लिया कुछ लोगों ने संस्कृत जानते हुए भी अपने पाठकों की बदली हुई रुचि के अनुसार कथाभाग में परिवर्तन कर दिया जैसे तुलसीदास ने वाल्मीकि के आमिषाशी श्रीरामचन्द्र को पक्का निरामिषभोजी बना दिया प्राचीन देव-देवियों तथा वीरों के साथ स्थानीय देव-देवियाँ भी आ गईं, उनका एक होना बतलाया गया पर इन सबका नतीजा और जो कुछ भी हो साहित्य के लिए अच्छा ही हुआ। इस साहित्य के मुकुर में हम उस काल को अधिक अच्छी तरह प्रतिफलित पाते हैं। कृत्तिवास की रामायण को लिया जाय या तुलसीदास की रामायण को तो हम इनमें प्राग्‌ऐतिहासिक युग की अयोध्यापुरी का चित्र न पाकर सामयिक बंगाल या अयोध्या-काशी का चित्र पाते हैं। हमारे वर्तमान विषय से बाहर होने के कारण केवल सूत्ररूप से इस छूकर और यह बात दिखाकर कि लेखक कल्पना-जगत् में भी अपने समय से बाहर नहीं जा सकता हम आगे बढ़ जाते हैं।

जब अंग्रेज भारतवर्ष में आये उस समय मोटे-तौर पर हमारे साहित्य में यही सब बातें हो रही थीं तथा इन्हीं का युग था। मजे की बात है कि बँगला तथा हिन्दी साहित्य का यह काल कई सदियों तक स्थायी रहा। पहले-पहल इस युग का प्रादुर्भाव होने पर इन भाषाओं में कुछ अच्छे मौलिक साहित्य का सृजन हुआ पर बाद को लकीर की फ़क़ीरी तथा स्वास्थ्यकर कल्पनाओं रक्त के अभाव के कारण साहित्य में बाढ़ उतर आ गई। मुस्लिम शासकों के साथ ही फ़ारसी तथा अरबी साहित्य के साथ संसर्ग क़ायम होने के कारण भारतीय साहित्य में एक स्फूर्ति-सी आ गई थी। किन्तु इन साहित्यों में स्वयं रक्ताल्पता आ जाने के कारण यह आदान-प्रदान का प्रवाह क़ायम न रह सका। साहित्य में कुछ विस्तार अवश्य हुआ पर उसमें न तो कोई नया कल्ला ही फूटा न कोई मौलिक परिवर्तन ही हुआ। गतानुगतिकता का ही दौरदौरा रहा। कुछ हलचल पैदा हुई, पर रक्त का स्पंदन नहीं। हमारे इस युग का साहित्य इस युग की राजनीति की तरह एक आबद्ध (stagnant) वस्तु थी। राष्ट्र की या जनता की आत्मा के साथ इस साहित्य की नाड़ी का सम्बन्ध नहीं था। यह तो दरबारों तथा उसके आस-पास के कुछ बड़े लोगों के विलास की वस्तु थी।

हमारे इस समय के साहित्यों की दरिद्रता इसी से स्पष्ट हो जायगी कि जिस समय भारतवर्ष में अंग्रेज आये उस समय हमारे साहित्यों में कोई कहने लायक गद्य ही नहीं था! कहना न होगा कि ऐसी अवस्था में जो कहानियाँ या उपाख्यान मौजूद थे वे पद्य के रूप में ही थे। स्वाभाविक रूप से वह एक stereotyped पुराने ढङ्ग की अस्वरीभूत चीज के रूप में थी जिसे हम आधुनिक अर्थ में कहानी या उपन्यास नहीं कह सकते। समस्त यूरोप में troubadour तथा trouvere (चारण) के युग का अवसान होकर सुन्दर गद्य-लेखकों का बोलबाला हो रहा था किन्तु बंगाल में अभी भारतचन्द्र और दाशु राय का ही युग था। दाशु ऊँचे दर्जे का या सिर पर चढ़ाया हुआ glorified असंस्कृत-मात्र था किन्तु भारतचन्द्र की

भाषा नये युग की भाषा की प्रसूती थी। उसे पढ़कर यह कहना कठिन न होता कि उसमें आगे चलकर रवीन्द्रनाथ या शरत्चन्द्र के भावों के वाहन के रूप में परिणत होने की सम्भावना निहित थी।

राजा राममोहन राय को ही हम आधुनिक बँगला गद्य के जनक मान सकते हैं। यद्यपि यह बात याद रहे कि बँगला की जो प्रथम गद्य पुस्तक मानी जाती है वह राममोहन की लिखी हुई नहीं बल्कि राम बसु का लिखा हुआ 'प्रतापादित्य-चरित्र' था। राजा राममोहन राय का जन्म कुछ लोगों के मत से १७७४ में हुआ कुछ लोगों के मत से १७८० में। प्रतापादित्य-चरित्र १८०१ में प्रकाशित हुआ था इस पुस्तक की पांडुलिपि का राममोहन राय ने शुद्ध तो किया था किन्तु उनकी लिखी कोई पुस्तक १८१५ के पहले प्रकाशित नहीं हो पाई। राजा राममोहन ने अपने गद्य का प्रयोग उपन्यास लिखने में नहीं किया, बल्कि उसे अपने मतों के प्रचार का वाहन बनाया। उन्होंने कठोपनिषद् पथ्यप्रदान वेदान्त जैसी पुस्तकें लिखीं। नामों से ही पुस्तकों के विषय स्पष्ट हैं। राममोहन राय बँगला गद्य के जनक थे फिर भी श्री ईश्वरचन्द्र विद्यासागर को ही यह यश प्राप्त हुआ कि उन्होंने उसे पढ़ने योग्य बनाया। बँगला साहित्य में उनका स्थान बड़ा ही महत्त्वपूर्ण है। संस्कृत के प्रकाण्ड विद्वान् होते हुए भी विद्यासागर ने बँगला को सुगम तथा सुललित बनाया। पाठ्य पुस्तकों में ही अक्सर लोगों का विद्यासागर से परिचय होता है और वह परिचय वहीं समाप्त होता है। इसलिये आमतौर से लोगों की यह धारणा है कि उनका गद्य दुर्बोध्य तथा संस्कृतबहुल है पर यह बात गलत है। कई जगह बंकिम का गद्य उनसे कहीं दुरूह है।

विद्यासागर ने कोई भी महत्त्वपूर्ण मौलिक पुस्तक नहीं लिखी। उन्होंने संस्कृत अंग्रेजी आदि भाषाओं की पुस्तकों का बँगला में अनुवाद भर किया पर इसमें सन्देह नहीं कि उन्होंने बँगला गद्य को विस्तृततर भावों का वाहन बनाया। जो कुछ भी हो जब हमारे यहाँ गद्य का जन्म ही हो रहा था तब यूरोप में विक्टर ह्यूगो ऐसे शक्तिशाली उपन्यासकार

जब अंग्रेज भारतवर्ष में आये उस समय मोटे-तौर पर हमारे साहित्य में यही सब बातें हो रही थीं तथा इन्हीं का युग था। मजे की बात है कि बँगला तथा हिन्दी साहित्य का यह काल कई सदियों तक स्थायी रहा। पहले-पहल इस युग का प्रादुर्भाव होने पर इन भाषाओं में कुछ अच्छे मौलिक साहित्य का सृजन हुआ पर बाद को अमीर की छिछोरी तथा स्वास्थ्यकर कल्पनात्मक रक्त के अभाव के कारण साहित्य में मन्दता आ गई। मुस्लिम शासकों के साथ ही फ़ारसी तथा अरबी साहित्य के साथ संस्पर्श कायम होने के कारण भारतीय साहित्य में एक स्फूर्ति-सी आ गई थी। किन्तु इन साहित्यों में स्वयं रसाल्पता आ जाने के कारण यह आदान-प्रदान का प्रवाह कायम न रह सका। साहित्य में कुछ विस्तार अवश्य हुआ पर उसमें न तो कोई नया कल्ला ही फूटा न कोई मौलिक परिवर्तन ही हुआ। गतानुगतिकता का ही दौरदौरा रहा। कुछ हलचल पैदा हुई, पर रक्त का स्पंदन नहीं। हमारे इस युग का साहित्य इस युग की राजनीति की तरह एक आबद्ध (stagnant) वस्तु थी। राष्ट्र की या जनता की आत्मा के साथ इस साहित्य की नाड़ी का सम्बन्ध नहीं था। वह तो दरबारों तथा उसके आस-पास के कुछ बड़े लोगों के विलास की वस्तु थी।

हमारे इस समय के साहित्यों की दरिद्रता इसी से स्पष्ट हो जायगी कि जिस समय भारतवर्ष में अंग्रेज आये उस समय हमारे साहित्यों में कोई कहने लायक गद्य ही नहीं था! कहना न होगा कि ऐसी अवस्था में जो कहानियाँ या उपाख्यान मौजूद थे वे पद्य के रूप में ही थे। स्वाभाविक रूप से वह एक stereotyped पुराने ढङ्ग की प्रस्तरीभूत चीज के रूप में थी जिसे हम आधुनिक अर्थ में कहानी या उपन्यास नहीं कह सकते। समस्त यूरोप में troubadour तथा trouvere (चारण) के युग का अवसान होकर सुन्दर गद्य-लेखकों का बोलबाला हो रहा था किन्तु बंगाल में अभी भारतचन्द्र और दाशु राय का ही युग था। दाशु ऊँचे दर्जे का या सिर पर चढ़ाया हुआ glorified भड़ैत-भाव था किन्तु भारतचन्द्र की

भाषा मयमुग की भाषा की अग्रदूती थी। उसे पढ़कर यह कहना कठिन न होता कि उसमें आगे चलकर रवीन्द्रनाथ या शरत्चन्द्र के भावों के वाहन के रूप में परिणत होने की संभावना निहित थी।

राजा राममोहन राय को ही हम आधुनिक बँगला गद्य के जनक मान सकते हैं। यद्यपि यह बात याद रहे कि बँगला की जो प्रथम गद्य पुस्तक मानी जाती है वह राममोहन की लिखी हुई नहीं बल्कि राम बसु का लिखा हुआ 'प्रतापादित्य-चरित' था। राजा राममोहन राय का जन्म कुछ लोगों के मत से १७७४ में हुआ कुछ लोगों के मत से १७८० में। प्रतापादित्य-चरित १८०१ में प्रकाशित हुआ था इस पुस्तक की पांडुलिपि को राममोहन राय ने शुद्ध तो किया था किन्तु उनकी लिखी कोई पुस्तक १८१५ के पहले प्रकाशित नहीं हो पाई। राजा राममोहन ने अपने गद्य का प्रयोग उपन्यास लिखने में नहीं किया बल्कि उसे अपने मतों के प्रचार का वाहन बनाया। उन्होंने कठोपनिषद् पथ्यप्रदान वेदान्त जैसी पुस्तकें लिखीं। नामों से ही पुस्तकों के विषय स्पष्ट हैं। राममोहन राय बँगला गद्य के जनक थे फिर भी श्री ईश्वरचन्द्र विद्यासागर को ही यह श्रय प्राप्त हुआ कि उन्होंने उसे पढ़ने योग्य बनाया। बँगला साहित्य में उनका स्थान बड़ा ही महत्त्वपूर्ण है। संस्कृत के प्रकाण्ड विद्वान् होते हुए भी विद्यासागर ने बँगला को सरल तथा सुललित बनाया। पाठ्य पुस्तकों में ही अक्सर लोगों का विद्यासागर से परिचय होता है और वह परिचय वहीं समाप्त होता है। इसलिये आमतौर से लोगों को यह धारणा है कि उनका गद्य दुर्बोध्य तथा संस्कृतबहुल है, पर यह बात गलत है। कई जगह बंकिम का गद्य उनसे कहीं दुरूह है।

विद्यासागर ने कोई भी महत्त्वपूर्ण मौलिक पुस्तक नहीं लिखी। उन्होंने संस्कृत अंग्रेजी आदि भाषाओं की पुस्तकों का बँगला में अनुवाद भर किया पर इसमें सन्देह नहीं कि उन्होंने बँगला गद्य को विस्तृततर भावों का वाहन बनाया। जो कुछ भी हो जब हमारे यहाँ गद्य का जन्म ही हो रहा था तब यूरोप में विक्टर ह्यूगो ऐसे शक्तिशाली उपन्यासकार

की कला का चमत्कार जगजाहिर हो चुका था। उस समय तक यूरोप में उपन्यास एक सामाजिक आवश्यकता के रूप में अनिवार्य हो चुका था। फिलीबेर ओदेबा ने अपने Romanciers et viveurs नामक ग्रंथ में लिखा है कि ज्यों-ज्यों उन्नीसवीं सदी के मध्यभाग की ओर बढ़ रहा था त्यों-त्यों फ्रांस में उपन्यासों की तरक्की दिन दूनी रात चौगुनी हो रही थी। 'स्त्रियों, वृद्ध से जर्जरितों, बीमारों तथा मुसाफिरों के निकट उपन्यास एक आवश्यक वस्तु हो चुकी थी। डाक्टर बीमारी के बाद पथ्य रूप में लोगों को उपन्यास सेवन का नुस्खा देने लगे थे।

फिर भी यहीं पर यह याद दिला देने की आवश्यकता है कि यूरोप के जिन उपन्यासकारों के संस्पर्श में बँगला साहित्य आया वे उसी श्रेणी के थे जिनको यूरोपीय भाषाओं में रोमांटिक कहते हैं। हिन्दी में इसका कोई प्रतिशब्द न होने के कारण हम इसे रोमांटिक कहेंगे। वाल्टर स्काट, विक्टर ह्यूगो, पाल द काक, अलेक्जेंडर डिमा, एकेनबॅडर, ड्यूमा आदि लेखक इसी रोमांटिक श्रेणी के उपन्यासकार थे। इन उपन्यासों में साधारण को त्याग कर असाधारण घटनाओं पर ही जोर डाला गया है। इन लोगों ने सर्वत्र भूत प्रेत पिशाच आदि को अपने उपन्यासों का मुख्य या गौण पात्र बनाकर अस्वाभाविकता की सृष्टि की है ऐसी बात नहीं पर वे अपने चरित्रों को यदि अस्वाभाविक रूप में नहीं तो कम से कम रङ्गीन चश्मे के अन्दर से देखते हैं इसमें सन्देह नहीं। फलस्वरूप वे पात्रों तथा घटनाओं को जिस रङ्ग में रखकर हमारे सम्मुख उपस्थित करते हैं वह उन पर खिलता तो खूब है पर वह उनका स्वाभाविक रङ्ग नहीं है। इस श्रेणी के लेखकों ने अधिकांश ऐतिहासिक घटनाओं तथा पुरुषों को लेकर ही अपनी प्रतिभा की आजमाइश की। बात यह है कि ऐसी घटनाओं तथा पुरुषों के इर्दगिर्द यों ही बहुत-सा रोमांस यानी रङ्गीन व्यास जमा है। ऐसी अवस्था में उनको उपलक्ष्य बनाकर उपन्यास निर्माण करने में लेखक मामूली कोशिश से ही अपना अभीष्ट रङ्गीन जगत् पाठकों की आँख के सामने लाकर उपस्थित कर सकता था पर रोमांटिक लेखकों ने हमेशा

इस सहज मार्ग को ही तरजीह दी हो ऐसा नहीं। कई बार उन्होंने ऐसा न करके अनैतिहासिक पात्रों को ही अपनाया। समुद्रयात्रा की विपत्तियों को केन्द्र बनाकर तथा जंगली मनुष्यखोर जातियों के बीच में पड़ने के विषय को लेकर बहुत से रोमांचकारी उपन्यास लिखे गये। इन उपन्यासों का समाज से कोई सम्बन्ध नहीं था ऐसा नहीं कहा जा सकता। इस प्रकार के उपन्यास यूरोप के उदीयमान पूँजीवादी वर्ग की बाजार के लिए दुनिया की खाक छानने की बात को प्रतिफलित करते हैं। आज भी केवल भारत में ही नहीं यूरोप में भी ऐसे उपन्यासकार हैं जो वस्तुवादी होने का दावा करते हैं पर हैं वे रोमांचिक। स्मरण रहे हम इनमें उन उपन्यासकारों को नहीं गिन रहे हैं जो उस श्रेणी के उपन्यासों को लिखते हैं जिन्हें जासूसी कहा जाता है। इसमें तो सन्देह नहीं कि जासूसी उपन्यासकार जमीन फोड़कर उद्भूत नहीं हुए हैं। सीधी गिनती में वे दूमा (Dumas) पाल द काक तथा स्काट के ही उत्तराधिकारी हैं। पर यहाँ तो मेरा मत-लब उन उपन्यासकारों से है, जो अपने कथानक को अपराधों के पास फट-कने भी नहीं देते फिर भी वे रोमांचिक ही हैं, वस्तुवादी तो उन्हें कदापि कहा ही नहीं जा सकता जैसे मेरी कारेली। जो कुछ भी हो यूरोप में क्लासिक युग का बहुत पहले ही अवसान होकर रोमांचिक युग का सूत्र-पात हो चुका था पर भारतवर्ष में अभी वही युग आया इसमें कोई आश्चर्य की बात नहीं। ऊपर जिन पुस्तकों के नाम गिनाये गये हैं उनके लेखकों का असली उद्देश्य पाश्चात्य सभ्यता से अभिभूत शिक्षित बङ्गाल की ज्यादतियों तथा उच्छृंखल-युवक समाज वाले नयेपन का परिहास करना था। 'उनमें समसामयिक जीवन के कुछ अत्यन्त सजीव चित्र मौजूद हैं जिनको यदि बटोरा जाय तो सामाजिक इतिहास के लिखने के लिए कुछ बहुत ही उत्कृष्ट मसाला मिल सकता है। सत्य के प्रति अनिवार्य श्रद्धा के साथ-साथ उनमें अतिशयोक्ति की ओर रुचि स्पष्ट है पर उनमें इसी व्यंग के साथ समानान्तर रेखा में नई संस्कृति को समझकर पुराने और नये की समन्वय चेष्टा भी स्पष्ट है। इस गंभीरता के वातावरण के कारण इन

उपन्यासों में यत्रतत्र हितोपदेश की भरमार है इसलिये इनमें दिलचस्पी कहीं-कहीं बहुत ही कम रह जाती है बल्कि इनको पढ़ने में कष्ट-सा मालूम होता है। हाँ इसी कारण ऐतिहासिक दृष्टि से उनका मूल्य बढ़ गया है।"[1]

प्यारीचाँद मित्र उर्फ टेकचाँद ठाकुर 'आलालेर घरेर दुलाल' के लेखक तथा काली प्रसन्न सिंह 'हुतोम प्यांचार नकशा' के लेखक थे। पूर्वोक्त पुस्तक की भाषा लोगों को नहीं जँची तथा उसका व्यंग भी भद्दा था किन्तु 'आलालेर घरेर दुलाल' की भाषा बहुत से लोगों को विद्यासागर के युग सिद्ध गद्य से अधिक पसन्द आई क्योंकि इसमें बोलचाल की भाषा अपनायी गई थी। इसी कारण कुछ लोगों ने उसकी बहुत तीव्र समालोचना भी की कि यह भाषा को बिगाड़ता है। लेखक के अनुसार इस पुस्तक में लड़कों का उचित तरीके से पालन न करने के दुष्परिणाम को दिखाने के साथ ही साथ वर्तमान शिक्षा-प्रणाली के गुणदोष तथा हिन्दू-समाज के रीति रिवाजों पर दृष्टि डाली गई थी। स्वयं बंकिमचन्द्र ने बँगला साहित्य में टेकचाँद के स्थान को माना है। इसी युग में दो और अच्छे गद्य-लेखक हुए एक भूदेव मुखोपाध्याय दूसरे मदनमोहन तर्कालंकार। केशवचन्द्र सेन ने भी इसी युग में बँगला साहित्य में हाथ डाला था भी बँगला के प्रमुख गद्यकारों में हैं। उन्होंने 'जीवन वेद' तथा 'प्रार्थना' लिखी पर वे कोई उपन्यासकार नहीं बल्कि धर्मप्रचारक थे। फिर भी इसमें सन्देह नहीं कि उन्होंने बँगला गद्य को सजीवता ओज तथा कांति प्रदान की। इन गद्यकारों के संस्कृत के क्लासिकों के अनुकरण तथा अनुवाद के युग के बाद किसी नये युग का प्रारम्भ नहीं हुआ था। इस साहित्य की चारित्रिक विशेषताओं का वर्णन पहले ही हो चुका है।

बंकिमचन्द्र के पहले भी बँगला में उपन्यास लिखे गये थे पर उन उपन्यासों को शायद किसी भी श्रेणी-विभाग में डालना मुश्किल है। न तो उनमें कोई चरित्रचित्रण था न मनोवैज्ञानिक विश्लेषण न स्वाभा

---

[1] डॉ० श्री कुमार बनर्जी का लेख History of Bengali Novel, अक्टूबर १९४८ कलकत्ता रिव्यू

निकला। 'नव-बाबू-विलास' (१८२५) 'आलालेर घरेर दुलाल' (१८५७) 'हुतोम प्यांचार नक्शा' (१८६२) आदि पुस्तकों को आज बँगाल में कोई भी नहीं पढ़ता, पर इसमें सन्देह नहीं कि चाहे ये कितनी भी असम रचनाएँ हों तो भी बंकिम रमेश की रचनाओं की अग्रगामिनी थीं। जिस भाषा का गद्य परिपक्वता प्राप्त कर चुका हो तथा जिसमें एक स्टैंडर्ड या मानदंड कायम हो चुका हो उसमें रचना करना तुलनात्मक रूप से आसान है पर उस समय बँगला में कोई गद्य नहीं था। उसमें गद्य भी बनाते जाना और साथ ही साथ लिखना वैसा ही कठिन प्रयास था जैसे किसी लेखक को कागज बनाकर तब उस पर लिखना पड़े बल्कि इससे भी कठिन था। इस भगीरथ प्रयास में बंकिम के पूर्व-युग के लेखकों की प्रतिभा का अधिकांश भाग यदि नष्ट हो गया तो संयुक्त साधना विफल हो गई, ऐसी बात नहीं बंकिम में आकर उन्हीं की रुकी हुई साधना सफलता के स्वर्ण-मुकुट से मण्डित हुई। केवल गद्य-निर्माण की दृष्टि से नहीं बँगला साहित्य को क्लासिक से रोमांटिक युग में ले जाने की दृष्टि से भी ये लेखक बंकिम के अग्रदूत थे। भाषा तथा भाव के क्षेत्र में दीन होते हुए भी ये उपन्यास किसी साहित्य के प्रारम्भिक उपन्यासों से निकृष्ट नहीं थे।

बँगला के प्रथम सफल उपन्यासकार बंकिमचन्द्र थे इसी हैसियत से उन्होंने अखिल भारतीय ख्याति प्राप्त की। वे मुख्यतः ऐतिहासिक उपन्यासकार ही समझे जाते हैं क्योंकि उनके अधिकांश उपन्यासों में कुछ न कुछ ऐतिहासिक व्यक्ति पात्र-पात्री रूप में हैं पर स्मरण रहे कि अपने उपन्यासों में केवल दो-चार ऐतिहासिक व्यक्तियों का पात्र बना कर खड़ा कर देने से ही कोई ऐतिहासिक उपन्यासकार नहीं हो सकता। उसके लिए सबसे आवश्यक बात है कि उस समय के वातावरण की सृष्टि की जाय चाहे एक भी पात्र इतिहासप्रसिद्ध व्यक्ति न हो। इस दृष्टि से जाँच की जाय तो मृणालिनी दुर्गेशनन्दिनी चन्द्रशेखर तथा कपालकुण्डला को ऐतिहासिक उपन्यास नहीं कहा जा सकता। राजसिंह करीब-करीब ऐतिहासिक उपन्यास हो गया है यद्यपि उसमें इतिहास के साथ काफी मन

लिखता। 'नव-बाबू-विलास' (१८२३) 'आलालेर घरेर दुलाल' (१८५७) 'हुतोम प्यांचार नकशा' (१८६२) आदि पुस्तकों को आज बंगाल में कोई भी नहीं पढ़ता पर इसमें सन्देह नहीं कि चाहे वे कितनी भी अक्षम रचनाएँ हों तो भी बंकिम रचेता की रचनाओं की अग्रगामिनी थी। जिस भाषा का गद्य परिपक्वता प्राप्त कर चुका हो तथा जिसमें एक स्टैंडर्ड या मानदंड कायम हो चुका हो उसमें रचना करना तुलनात्मक रूप से आसान है पर उस समय बंगला में कोई गद्य नहीं था। उसमें गद्य भी बनाते जाना और साथ ही साथ लिखना वैसा ही कठिन प्रयास था जैसे किसी लेखक का कागज बनाकर तब उस पर लिखना पड़े बल्कि इससे भी कठिन था। इस भगीरथ प्रयास में बंकिम से पूर्व-युग के लेखकों की प्रतिभा का अधिकांश भाग यदि नष्ट हो गया तो संयुक्त साधना विफल हो गई, ऐसी बात नहीं बंकिम में आकर उन्हीं की दबी हुई साधना सफलता के स्वर्ण-मुकुट से मण्डित हुई। केवल गद्य निर्माण की दृष्टि से नहीं बंगला साहित्य को क्लासिक से रोमांटिक युग में ले आने की दृष्टि से भी व लेखक बंकिम के अग्रदूत थे। भाषा तथा भाव के क्षेत्र में दीन होते हुए भी ये उपन्यास किसी साहित्य के प्रारम्भिक उपन्यासों से निकृष्ट नहीं थे।

बंगला के प्रथम सफल उपन्यासकार बंकिमचन्द्र थे इसी हैसियत से उन्होंने अखिल भारतीय ख्याति प्राप्त की। वे मुख्यतः ऐतिहासिक उपन्यासकार ही समझे जाते हैं क्योंकि उनके अधिकांश उपन्यासों में कुछ न कुछ ऐतिहासिक व्यक्ति पात्र-पात्री रूप में हैं, पर स्मरण रहे कि अपने उपन्यासों में केवल दो-चार ऐतिहासिक व्यक्तियों को पात्र बना कर खड़ा कर देने से ही कोई ऐतिहासिक उपन्यासकार नहीं हो सकता। उसके लिए सबसे आवश्यक बात है कि उस समय के वातावरण की सृष्टि की जाय चाहे एक भी पात्र इतिहासप्रसिद्ध व्यक्ति न हो। इस दृष्टि से जाँच की जाय तो मृणालिनी दुर्गेशनन्दिनी चन्द्रशेखर तथा सीताराम को ऐतिहासिक उपन्यास नहीं कहा जा सकता। राजसिंह करीब-करीब ऐतिहासिक उपन्यास हो गया है यद्यपि उसमें [illegible]

मानी की गई है। सर वाल्टर स्काट ने अपने उपन्यासों में घटनाओं के क्रम में बहुत गलती की है फिर भी वे ऐतिहासिक वातावरण पैदा करने की सामर्थ्य के कारण ऐतिहासिक उपन्यासकार माने गये हैं।

उपन्यासकार बंकिम से धर्मतात्त्विक बंकिम इतने बड़ गये कि बहुत से लोग तो जानते ही नहीं कि बंकिम ने धर्मतत्त्व पर भी अपनी लेखनी चलायी है पर उनकी अपनी दृष्टि में उन्होंने धर्मतत्त्व पर एक नवीन विश्लेषणात्मक पद्धति से जो कुछ लिखा है वह अधिक महत्त्वपूर्ण था। इसमें सन्देह नहीं कि उनके युग को देखते हुए उनके धर्मतात्त्विक मत भी क्रान्तिकारी नहीं तो प्रगतिशील अवश्य थे। उन्होंने समाज के रथ को गतानुगतिकता के कीचड़ से निकालकर बुद्धिवाद के ग्रैंडट्रंक रोड पर चढ़ाने की चेष्टा की यद्यपि वे स्वयं सोलहों आने बुद्धिवादी थे ऐसा कहना आज कठिन है। फिर भी वे प्रगतिशील थे इसमें सन्देह का अवकाश नहीं। उन्होंने लिखा था—'तीन चार हजार वर्ष पहले भारतवर्ष के लिए जो कायदे कानून बने थे आज उनको हरफ-बहरफ मानकर चलना सम्भव नहीं। यदि आज वे ऋषि स्वयं मौजूद होते तो कहते—नहीं ऐसा नहीं हो सकता यदि तुम हमारी विधि-व्यवस्थाओं को पूर्ण रूप से कायम रखकर चलो तो उससे हमारे धर्म के मर्म का तिरस्कारण ही होगा। हिन्दू धर्म का वह मर्मभाग अमर है हमेशा रहेगा और मनुष्यों का उससे कल्याण ही होगा क्योंकि मनुष्य-प्रकृति में ही उसकी नींव है। सभी धर्मों की विशेष विधियाँ सामयिक ही होती हैं। वे समय भेद के अनुसार परिहार्य तथा परिवर्तनीय हैं। इत्यादि।

बंकिमचन्द्र के धर्मतत्त्व की अवतारणा मैंने इसलिये की कि उनकी साहित्य-साधना धर्मानुशीलन से बिल्कुल भिन्न पर्याय की वस्तु नहीं थी यदि वे प्रत्यक्ष रूप से स्वजाति स्वदेश तथा स्वसमाज से अपने साहित्य की प्रेरणा प्राप्त करते थे तो परोक्ष रूप से मनुष्य के प्रकृष्ट तथा मनुष्यता के आदर्श की खोज से ही उन्हें प्रेरणा मिलती थी।[1] बंकिमचन्द्र साहित्य

१ हिंदीके आधुनिक बंगला-साहित्य—श्री मोहितलाल मजुमदार

में आदर्शवादी थे उन्होंने लिखा है— "काव्य का मुख्य उद्देश्य नीतिज्ञान नहीं है किन्तु नीतिज्ञान का जो उद्देश्य है वही काव्य का भी उद्देश्य है यानी चित्तशुद्धि। उन्होंने उत्तरचरित की समालोचना करते हुए और भी लिखा था—"जो लोग कुकाव्य का निर्माण करके दूसरों के चित्त को कलुषित करने की चेष्टा करते हैं वे चोरों की तरह मनुष्यजाति के शत्रु हैं और उनको भी चोरों के लिए विहित शारीरिक दंड दिया जाना चाहिए।

ऊपर के उद्धरणों से स्पष्ट है कि बँगला के प्रथम शिक्षित उपन्यासकार साहित्य में किस मत को लेकर चलने के पक्षपाती थे पर सौभाग्य से वे उपन्यास लिखते समय हमेशा अपने इस मत को स्मरण में न रख सके। जिसे वे कला समझते थे, उन्हीं सामाजिक शक्तियों ने उन्हें खिंचा दिया और उन्हें बहुत कुछ वास्तविकता से बाँध रखा। अवश्य ऐसा भी है कि अन्त तक चलकर उन्होंने खींचतानकर अपने आदर्श को निभा ही दिया। उपन्यासों की भलाई के हक में एक और भी अच्छी बात हुई, वह यह कि बंकिमचन्द्र के सामने उपन्यास के आदर्श के रूप में अंग्रेजी के रोमांटिक लेखकों की रचनाएँ थीं। बँगला के सुप्रसिद्ध आदर्शवादी कवि-समालोचक श्री मोहितलाल ने बंकिमचन्द्र के उपन्यासों की संक्षिप्त आलोचना इस प्रकार की है।

"उनके पहले उपन्यास 'दुर्गेशनन्दिनी' में साहित्यिक प्रेरणा के अतिरिक्त कुछ भी नहीं था। 'दुर्गेशनन्दिनी' बँगला का पहला रोमांस है जो अंग्रेजी रोमांसों के सुपरिचित आदर्श पर लिखा हुआ है। 'मृणालिनी' 'युगलाङ्गुरीय' 'राधारानी' भी इसी आदर्श पर रचित है। हाँ 'मृणालिनी' की कल्पना में देश प्रेम ने पहले-पहल प्रवेश किया है। उनके द्वितीय उपन्यास 'कपालकुण्डला' को एक उत्कृष्ट काव्य कहा जा सकता है। 'विषवृक्ष' 'चन्द्रशेखर' और 'कृष्णकान्तेर विल' समाज-समस्या और मनोवैज्ञानिक दृष्टि से लिखे गये थे। 'आनन्दमठ' और 'राजसिंह' में देश प्रेम की प्रधानता है 'देवी चौधुरानी' तथा 'सीताराम' में धर्मसमस्या प्रधान है 'रजनी' में निरा मनोविज्ञान तथा 'इन्दिरा' में वस्तुरचना का

ही आनन्द है। देखा गया कि ऐसे विशुद्ध उपन्यासों की संख्या बहुत कम है जिनमें समाज-नैतिक तथा धर्म-नैतिक कोई उद्देश्य नहीं है। ऐसी रचनाओं में 'कपालकुण्डला' सबसे सुन्दर कृति है। जिन उपन्यासों में स्वदेश समाज धर्म या नीति से प्रेरणा ली गई है उनमें जगह-जगह पर कल्पना की चरम स्फूर्ति हुई है चरित्र की महिमा तथा घटना-विन्यास की चतुरता के कारण वे नाटकीय सौन्दर्य से मण्डित हो गये हैं। समस्या की खींचा-तानी में बहुत-सी भयंकर त्रुटियाँ रहने पर भी बंकिम की जो कुछ सृजन शक्ति है उसने मानो इन्हीं समस्याओं के घातप्रतिघात में पड़कर पत्थर पर घिसे हुए इस्पात के फलों की तरह चिनगारियों की वर्षा की है।"

बंकिमचन्द्र ने यूरोप के रोमांटिक शैली के पौधे को भारत में लाकर स्थापित ही नहीं किया बल्कि उसको सम्पूर्ण रूप से यहाँ की आबोहवा का अभ्यस्त (acclimatise) करके यहीं की मिट्टी से रस ग्रहण कर पल्लवित-पुष्पित होना सिखलाया। इसमें तो सन्देह नहीं कि बंकिम यूरोपीय साहित्य के ऋणी हैं पर इस ऋण के परिमाण के सम्बन्ध में लोगों का ज्ञान अक्सर अतिरंजित है। एक विद्वान् लेखक श्रीकुमार बनर्जी का कथन है कि इस बात का कोई प्रमाण नहीं कि बंकिम जेन आस्टेन डिकेन्स थैकरे तथा जार्ज इलियट से परिचित थे। हाँ स्काट के साथ उनका परिचय निःसन्देह है। उनके एक उपन्यास में लार्ड लिटन की छाया भी है पर 'उनकी कला सम्पूर्ण रूप से मौलिक है। इन विदेशियों का अनुकरण-मात्र नहीं। मैंने जो उपमा इस पैरा के प्रारम्भ में दी है वह बिल्कुल सत्य है उन्होंने पाश्चात्यों से यह तो सीखा कि उपन्यास का स्वरूप तथा ढाँचा कैसा होना चाहिये पर इसके अलावा उनके उपन्यासों का मालमसाला सभी स्वदेशी है। बंकिम से पौराणिक-रूमानिक साहित्य युग का अवसान होकर बँगला साहित्य का सूत्रपात होता है। पहले ही बताया जा चुका कि यूरोप में बहुत पहले साहित्य की यह रोमांटिक धारा पूर्ण परिपक्वता को पहुँच चुकी थी।

रोमांटिक साहित्यकार साहित्य को art d amuser les oisifs यानी निठल्ले लोगों के मनोरंजन की सामग्री समझते थे इसलिए वास्त-

सिक जगत से उसका कोई प्रत्यक्ष सम्बन्ध नहीं था यानी वास्तविक जगत् से उसका उतना ही सम्बन्ध था जिसके बगैर उसके रस का परिपाक ही असम्भव होता। रोमांस और वस्तुवादी साहित्य के प्रभेद का स्पष्टीकरण करते हुए डाक्टर सुबोध सेन ने कवित्वपूर्ण शब्दों में कहा है— 'रोमांस सत्य को सुन्दर की सहायता से प्राप्त करता है और वस्तुवादी साहित्य सत्य के जरिये से सुन्दर का अनुसन्धान करता है।" रोमांटिक मेघी के उपन्यास रूपी पौधे के लिए जो मिट्टी उपयोग में आती थी वह मूलत देश की मिट्टी ही थी पर ऐसी मिट्टी थी जो गमले के अन्दर बन्द होने के कारण देश की मिट्टी से अब कोई सम्बन्ध नहीं रखती थी और वह गमले भी ऐसे कि जो रंगीन तथा उद्दाम कल्पना के तारों के सहारे शून्य में लटक रहे हों। बंकिम-साहित्य को हम इसी प्रकार एक शून्य में लटकते हुए टब में लगा हुआ विचित्र छटासमन्वित सुन्दर पौधा करके कल्पना कर सकते हैं इस टब में जो मिट्टी है वह भारतीय साहित्यिक परम्परा (literary tradition) से प्राप्त भाडोलन के अतिरिक्त अंग्रेजी साहित्य से लाए हुए अन्य बहुत तरह की खादों तथा उर्वराशक्ति वृद्धिकारी उपकरणों से युक्त है। बंगला के एक समालोचक रवीन्द्रनाथ और बंकिमचन्द्र की तुलना करते हुए यहाँ तक कह गये हैं— 'रवीन्द्रनाथ की तरह विशुद्ध भारतीय मन बंकिमचन्द्र को भी नहीं मिला था बल्कि इस दृष्टि से बंकिम यूरोप के ही मानसपुत्र हैं।"[1]

इस प्रकार अब तक बंगला उपन्यास के विकास में निम्नलिखित बातें हुई—

(१) अंग्रेजी साहित्य के संस्पर्श में आने के बाद ही बंगला में गद्य का निर्माण हुआ इसलिए गद्य उपन्यास यानी वास्तविक उपन्यास का निर्माण तभी होना शुरू हुआ।

(२) पहले-पहल जो उपन्यास-लेखक हुए उनको कुआँ खोदना और पानी पीना दोनों करना पड़ता था यानी साथ-साथ गद्य भी गढ़ते जाना

[1] दलिरे रंगनाथ मित्र—आदिनाथ मजुमदार

और उपन्यास भी लिखना पड़ता था इस प्रकार उनकी प्रतिभा का अधि काश भाग प्रयत्नोक्त प्रयास म ही क्षय हो जाता था।

(१) बंकिमचन्द्र बँगला के प्रथम सफल उपन्यासकार हैं उनका 'दुर्गेशनन्दिनी' बँगला का पहला रोमांस है। बंकिमचन्द्र ने यूरोप के १९ वीं सदी क उपन्यासकारों की रोमांटिक धारा को सफलतापूर्वक अपना कर उसमें चार चाँद लगा दिये। उन्होंने ही इतिहास के कंकाल म प्राण फूँककर एक साहित्यिक उपन्यास की रचना की।

डाक्टर सुकुमार सेन ने बंकिमचन्द्र के उपन्यासों को तीन वर्गों मे विभक्त किया है। 'राजसिंह' एक सुवृहत् ऐतिहासिक उपन्यास है 'कृष्णकान्तेर विल' 'विषवृक्ष' आदि उपन्यासों में सामाजिक और पारि वारिक जीवन का चित्र खींचा गया है 'दुर्गेशनन्दिनी' 'कपाल-कुण्डला' 'मृणालिनी' आदि म इतिहास है पारिवारिक जीवन का चित्र भी है पर ये फिर भी न तो ठीक-ठीक ऐतिहासिक उपन्यास ही हैं और न पारिवा रक जीवन की कहानी ही क्योंकि इनमें कल्पना का एक ऐसा ऐश्वर्य है जो पारिवारिक जीवन की वास्तविकता को लाँघ गया है साथ ही जिसने इतिहास के दावे को सम्पूर्ण रूप से स्वीकार नहीं किया है। कल्पना की यह समृद्धि न केवल हमारे गिनाये हुए तीसरी किस्म के उपन्यासों म परिलक्षित हुई है बल्कि बंकिम क सामाजिक और ऐतिहासिक उपन्यासों मे भी इसी समृद्धि का बोलबाला है। बंकिम के ऐतिहासिक उपन्यास में अतीत युग के युद्धविग्रह या सामाजिक जीवन का पुङ्खानुपुङ्ख और वास्त विक चित्र नहीं दिया गया है। उनका ऐतिहासिक उपन्यास वैवर के हेनरी ऐस्मांड श्रेणी के उपन्यास से सम्पूर्ण रूप से भिन्न है। उनकी कल्पना ने इतिहास को विचित्र वर्णमय बनाया है। बंकिम क पात्रों का प्रधान गुण यह नहीं है कि उनमें विभिन्न प्रवृत्तियों का समावेश है बल्कि एक प्रवृत्ति का उत्कर्ष है। केवल दो-एक पात्रों में ही उन्होंने साधारण मनुष्य का चित्र खींचा है। ऐसे साधारण मनुष्यों में पहले ही नगेन्द्रनाथ या गोविन्दलाल का स्मरण हो आयेगा। डाक्टर श्रीकुमार के अनुसार

बंकिम में पाप के प्रति स्वाभाविक वितृष्णा थी वर्तमान युग के वस्तुवादी उपन्यासकारों की तरह पाप का विश्लेषण करना उन्हें पसंद नहीं था। बंकिमचन्द्र ने अपने कई उपन्यासों में इतिहास का आश्रय लिया है फिर भी उन्होंने विशुद्ध ऐतिहासिक उपन्यास एक ही—'राजसिंह'—लिखा है। उनके अपने मतानुसार भी 'राजसिंह' ही उनका एकमात्र ऐतिहासिक उपन्यास है।[1] जहाँ तक काल्पनिक जगत में उड़ने की बात है बंकिमचन्द्र देवकीनन्दन खत्री की ही जाति के थे पर बंकिम तथा खत्री में फर्क यह था कि एक ने परिष्कृत स्वरूप को अपनाया दूसरा ऊलजलूल कल्पना-जगत् में विचरता रहा एक ने आधुनिक कला को अपनाकर कल्पना की उड़ान भरी दूसरा केवल घटनाओं में भटकता रहा। बंकिम का मनोविज्ञान से कोई सम्बन्ध नहीं था। उनके उपन्यासों में मानसिक द्वन्द्व और परिवर्तन का चित्र बहुत कम है। जहाँ मानसिक परिवर्तन भी है वहाँ वह आकस्मिक है अथवा उसको वर्णित परिस्थितियों में स्वाभाविक करके दिखा नहीं पाये।

हमने बंकिमचन्द्र को जरा विस्तारपूर्वक समझने की चेष्टा की क्योंकि उनको समझे बिना शरत-प्रतिभा को समझना असम्भव है। बंकिम के बाद बंगला साहित्य में रोमांस की एक बाढ़-सी आ गई इसमें रमेशचन्द्र आदि कई लेखक अब भी पढ़े जाते हैं। "शेक्सपियर के नाटक तथा स्काट के रोमांसों को पढ़कर बंगाल में (अर्थात् बंगाली अंग्रेजी शिक्षित मध्य वित्त तथा उच्च श्रेणी के लोगों में) 'नव रस की भूख जगी" तो उन्होंने अपने आस-पास मुँह फेरा बंकिम आदि की उत्पत्ति उसी से हुई। बंकिम रमेश आदि को पढ़कर उस भूख की कुछ तृप्ति हुई। इसमें तो कोई भी सन्देह नहीं कि यह पढ़ी लिखी मध्यम श्रेणी का साहित्य था फिर भी इन उपन्यासों ने भाषा को नवीन रूप प्रदान कर उसमें दाम बँधवाने में (crystallise) तथा बहुत-सी सुन्दर कल्पनाओं को जनप्रिय बनाने में सहायता दी।

१ शरतचन्द्र — डाक्टर सुबोध सेन

बँगला के दूसरे शक्तिशाली युगप्रवर्तक उपन्यासकार रवीन्द्रनाथ ने बंकिम-युग में ही अपनी दिग्विजय की यात्रा शुरू कर दी। इसलिये यह कोई आश्चर्य की बात नहीं कि 'राजर्षि' तथा 'बौठाकुराणीर हाट' में उन्होंने भी रोमांटिक साहित्यिक धारा को ही अपनाया है। रवीन्द्रनाथ केवल औपन्यासिक नहीं हैं, वे एक ही साथ कवि, नाटककार, गल्पलेखक, समालोचक, अभिनेता, चित्रकार, संगीतज्ञ आदि हैं। उनकी प्रतिभा बहु-मुखी है। रवीन्द्रनाथ प्राच्य और पाश्चात्य साहित्य, दर्शन, कला के मर्मज्ञ पंडित हैं, उनकी प्रतिभा ने बँगला भाषा को जो रूप दिया उसकी तुलना नहीं हो सकती। 'उन्होंने बँगला भाषा को सञ्जीव रस में निमज्जित कर जो रूप दिया उसका प्रभाव अजेय है, इस प्रकार भाषा ने जो सौष्ठव तथा नमनीयता प्राप्त की वह सब से सब तरह के साहित्य-निर्माण में कलाकार मात्र के लिए अपरिहार्य होने वाली थी।'[१]

रवीन्द्रनाथ के उपन्यासों में शीघ्र ही एक नवीन तान सुनाई पड़ने लगी। उनको वस्तुवादी कहना तो कठिन है, रोमांटिक भी नहीं कह सकते, पर इतना अवश्य है कि बङ्गाली मध्यवित्त श्रेणी में जिन विचारों के संघर्षों के कारण उथल-पुथल मची हुई थी, उनका परिचय उनमें है। रवीन्द्रनाथ संभ्रान्त ब्राह्म परिवार में पैदा हुए थे, उनकी शिक्षा-दीक्षा राजा राममोहन, केशवचन्द्र, देवेन्द्रनाथ ठाकुर आदि के उदार विचारों की छत्रछाया में हुई थी। गतानुगतिक सनातन समाज और प्रगतिशील ब्राह्म समाज में जो संघर्ष हो रहा था, उसका चित्र हम रवीन्द्रनाथ में पाते हैं, यहाँ तक तो वह वस्तुवादी हैं, पर बाकी सब अंशों में हम कवीन्द्र के उपन्यासों में वस्तु-वाद और आदर्शवाद में समन्वय की चेष्टा पाते हैं।

क्या रवीन्द्रनाथ सम्पूर्ण रूप से रोमांस से मुक्ति प्राप्त कर सके? इस प्रश्न का उत्तर डाक्टर सुबोध सेन निम्नलिखित रूप से देते हैं— उन्होंने भी एक नये ढङ्ग के रोमांस की सृष्टि की है और इस प्रकार के रोमांस की पूर्ण अभिव्यक्ति उनके अन्तिम वर्षों में लिखित उपन्यास 'चार अध्याय'

१ शरत्चन्द्र—डाक्टर सुबोध सेन

'शेषेर कविता', 'मालंच' 'चतुरंग', आदि में हुई है। इन चार मार्गों में दैनिक जीवन की कथा को काव्य के स्वप्न-लोक में उठाकर सफलता प्रदान की गई है। जिन नर-नारियों की बात इनमें लिखी गई है वे असाधारण नहीं हैं न उनके जीवनों में अलौकिक घटनाएँ ही सन्निविष्ट हुई हैं, पर इनकी अनुभूति इतनी सूक्ष्म और तीव्र है कल्पना इतनी रङ्गीन है, बुद्धि इतनी कमनीय है कि उनकी जीवन-यात्रा को वास्तविक जीवन की प्रतिच्छवि नहीं कहा जा सकता। इन सब उपन्यासों के कथानकों में वह परिपूर्णता नहीं है जिसे उपन्यास का अपरिहार्य अंग समझा जाता है। ये जैसे जीवन के कुछ कवित्वपूर्ण मुहूर्तों की समष्टिमात्र हैं इनमें उपन्यासों और काव्यों के प्रभेद को दूर कर देने की चेष्टा की गई है। इनमें मन्थरगति विश्लेषण नहीं है केवल कविकल्पना के जरिए से तीक्ष्ण अंतर्दृष्टि का परिचय प्राप्त होता है। इस प्रकार के उपन्यासों को विशुद्ध उपन्यास कहा जा सकता है या नहीं इस पर तरह-तरह का संदेह किया गया है।" डाक्टर श्रीकुमार जन भी इन उपन्यासों के सम्बंध में यह कहता है कि "इन उपन्यासों में विश्लेषण और संक्षिप्तता वालों के समन्वय को अच्छी तरह नहीं निबाहा गया।" पर यह तो रवीन्द्रनाथ के उन उपन्यासों की बात हुई जो भारत-साहित्य के बाद रचित हुए, इसलिए उनमें भारत साहित्य के बीच ढूंढना अनैतिहासिक तथा हास्यास्पद प्रयत्न होगा। इसलिये हम यहाँ रवीन्द्रनाथ के उन्हीं उपन्यासों का उल्लेख करेंगे जो प्राक्भारत युग में रचित हुए थे।

यहाँ पर रवीन्द्रनाथ के उपन्यास 'गोरा' को लिया जाय उसका नायक गौरमोहन बंगाली नैष्ठिक या कट्टर परिवार में पालित अंग्रेज का लड़का है। उसके माँ-बाप का पता न पाकर एक ब्राह्मण-दम्पति ने परित्यक्त शिशु गौरमोहन को पाल लिया। उसका पालन-पोषण एक ब्राह्मण बालक की ही भाँति होता है पर भीतर भीतर उसे उसके पालक पिता बचाकर चलते हैं। यह लड़का कट्टर सनातनी है और बड़े जोर से सनातनियों की ओर से ब्राह्म समाजियों से लोहा लेता है। एक दफे लोहा

सोलह वर्षों को पहुँच जाता है उस समय उसके पालक पिता एकाएक उसे बुलाकर उसका असली परिचय उसे बता देते हैं। बस धरररर धम् से वह अपने को सनातन धर्म के शिखर से गिरता हुआ पाता है। अरे वह एक आयरिश का बच्चा उसके लिए अब ब्रह्म समाज के अतिरिक्त और कहीं कोई जगह नहीं रहती। यही संक्षेप में कथा भाग का सार है। हाँ इसमें प्रेम भी आता है मित्रता भी आती है कवि की कल्पना की छटा भी है पर मुख्य समस्या यही है। उपन्यास के दौरान लम्बी-लम्बी बहसें हैं जिनमें धर्म तथा समाज के अनेक पहलुओं के बाल की खाल निकाली गई है। उपन्यास जमा भी खूब है पर रोमांस की ओर इसका झुकाव पग-पग पर स्पष्ट है। रवीन्द्रनाथ आदर्श और वस्तु के बीच में बराबर चमकते दृष्टिगोचर होते हैं।

'चोखेर बालि' या आँख की किरकिरी उपन्यास में रवीन्द्रनाथ बंकिम युग से बिल्कुल अपना छुटकारा कर चुके हैं। कहा गया है कि 'दुर्गेश नन्दिनी' के बाद किसी उपन्यास ने यदि उपन्यास-साहित्य में नवयुग का प्रवर्तन किया है तो वह 'आँख की किरकिरी' ही है। स्वयं शरत्चन्द्र ने रवीन्द्रजयन्ती के एक उत्सव के उपलक्ष्य में भाषण देते हुए यह कहा था कि वे साहित्य में गुरुभाव मानते हैं, इस सिलसिले में उन्होंने 'आँख की किरकिरी' का उल्लेख किया था। अवश्य इससे यह अनुमान करना गलत होगा कि उन्होंने 'आँख की किरकिरी' का अनुकरण मात्र किया सम्भव है कि वे अनुकरण से ही चले हों किन्तु वे उससे आगे बढ़ गये। रवि बाबू यहाँ केवल उस समय के सामाजिक नियमों से वर्जित बहुत-से विषयों को जैसे विधवा में प्रेमलिप्सा को स्वाभाविक बताकर रह गये वहाँ शरत् ने कहीं आगे बढ़कर समाज के सम्मुख प्रश्नों की झड़ी लगा दी। डाक्टर सेन की भाषा में शरत् प्रीतिहीन धर्म तथा क्षमाहीन समाज से पूछ बैठे हैं कि तुम से कुछ मानवीय कल्याण भी हुआ है? प्रश्न ऐसे ढंग से पूछा गया है कि उसका मतलब यही निकलता है कि कल्याण नहीं है। 'आँख की किरकिरी' में "विधवा की प्रणयाकांक्षा का चित्र है, किन्तु रवीन्द्र

नाथ ने यहाँ पर भी विनोदिनी को भावुक नहीं बनाये हैं। उन्होंने उसकी आकांक्षा को रमणी की सहजात स्वाभाविक आकांक्षा रूप में ग्रहण करके उसका विश्लेषण तथा वर्णन किया है। उन्होंने इस उद्दाम प्रवृत्ति का जयगान नहीं गाया है बल्कि यह उच्छृङ्खलता किस प्रकार के प्रलय की सृष्टि करती है, इसी का चित्र खींचा है पर चूँकि विनोदिनी विधवा है इस लिए उसका किसी पुरुष पर आसक्त होना अनुचित होगा ऐसी बद्धमूल धारणा लेकर रवीन्द्रनाथ उपन्यास लिखने के लिए प्रवृत्त नहीं हुए बल्कि वैसी अवस्था में उसका महेन्द्र या बिहारी के प्रति आसक्त होना ही उसके लिए स्वाभाविक था यही इस उपन्यास का प्रतिपाद्य है। किसी भी विषय में सम्पूर्ण तटस्थता की रक्षा करना कठिन हो जाता है और कला के लिए तटस्थता अनुकूल भी नहीं है। इसी कारण उपन्यास के अन्तिम अंश की ओर विनोदिनी का चरित्र अद्भुत हो गया है। ऐसा ज्ञात होता है जैसे लेखक ने एक ऐसे चरित्र की सृष्टि की है, जिसकी परिणति के सम्बन्ध में वे अपने मन को स्थिर नहीं कर पाये। फिर भी वे प्रचलित कुसंस्कारों से मुक्त होकर नर-नारी के चिर जीवन की चेष्टा करते हैं, यही खास बात है। इसीलिये 'आँख की किरकिरी' से बंगला उपन्यास में एक नवयुग की सूचना होती है।"[1] रवीन्द्रनाथ ने 'नौकाडूबी' में प्रचलित संस्कारों को माना है किन्तु 'आँख की किरकिरी' में वे नई धारा को लेकर चलते हैं।

यहाँ रवीन्द्रनाथ के उपन्यासों की विस्तृत आलोचना करने की न तो आवश्यकता ही है न अवसर ही है केवल "यदि हम उनके उपन्यासों को मैं जो बंगला कथा-साहित्य में उनकी सबसे सुन्दर तथा मौलिक सृष्टि है, तो हमें ज्ञात होगा कि बंकिम की भावुकता ने जिस वास्तविकता से मुँह मोड़कर रस की खोज की थी रवीन्द्रनाथ की आध्यात्मिकता ने उसी वास्तविकता को एक अपूर्व महिमा से मण्डित कर दिया है। जो कल्पना सम्पूर्ण रूप से व्यक्तिगत या subjective है उसी कल्पना के रंग में जो नितान्त साधारण तथा सुपरिचित है यहाँ तक कि तुच्छ और क्षुद्र है, वही

१ शरत्चन्द्र—सुबोध सेन, पृ० ९९–१

अपूर्व सुन्दर हो गया है। वास्तविकता के बीच से ही लोकोत्तर चमत्कार का विस्मय रस संचारित हुआ है। वास्तविकता के अतिपरिचय के आवरण को मुक्त कर वस्तु के अन्तर्निहित सौन्दर्य का आविष्कार कर देना ही उनकी कल्पना की मूल प्रवृत्ति है। यह कल्पना वस्तु को एकदम रूपान्तरित कर देती है पर प्रतिभासित होता है जैसे यही इसका वास्तविक रूप है। × × × यही रवीन्द्रनाथ की साहित्य-सृष्टि का रहस्य है। सोच कर देखा जाय तो ज्ञात हो जायगा कि यह idealism—यह आदर्शवाद कितना दुरूह कितना महान है जिसमें पृथ्वी की धूल-मिट्टी को सोने में परिवर्तित कर देना पड़ता है। अवश्य ही मनुष्य के साधारण सुख-दुःख तथा आशा-आकांक्षा को विश्वसृष्टि के रहस्य के अन्तर्भुक्त करके देखना कोई मामूली आदर्शवाद नहीं है।"[1]

रवीन्द्रनाथ के युग से काफी पहले बंकिमचन्द्र के प्रभाव के युग में ही तारकनाथ गंगोपाध्याय नामक एक लेखक ने 'स्वर्णलता' नामक एक उपन्यास लिखकर साहित्य में एक दूसरी ही धारा की विराट सम्भावना दिखाकर लोगों को चकित कर दिया था। 'स्वर्णलता' में बंगाली समाज के सुख-दुःख की हूबहू तस्वीर दी गई थी फलस्वरूप इस पुस्तक के संस्करण पर संस्करण निकले। बंकिम-युग में किसी भी पुस्तक को इतनी सफलता नहीं प्राप्त हुई। 'स्वर्णलता' की अद्भुत सफलता को देखकर बहुत से लेखकों ने इसका अनुकरण किया किन्तु उनको कोई सफलता नहीं मिली। यहाँ तक कि स्वयं तारकनाथ ने अन्य कई पुस्तकें लिखीं पर उनमें वे इस प्रकार सफल न हो सके उनकी प्रतिभा मानो एक बार चमककर के ही बुझ गई थी। बंकिम और रवीन्द्रनाथ की रचनाओं के बीच में 'स्वर्णलता' की रचना एक अद्भुत घटना है पर तारकनाथ की प्रतिभा एक बार चमक कर के ही बुझ जाने वाली प्रतिभा होने के कारण यह धारा अपनी निजी शिष्यमण्डली कायम न कर सकी।

रवीन्द्रनाथ किसी मानवीय घटना को पृथक करके देखने में असमर्थ

१ देखिये धीरेन्द्रनाथ मजुमदार—शरत्चन्द्र

थे। वे उसे हमेशा विश्वप्रकृति के साथ मिलाकर ही देखते थे, और उनके विश्वप्रकृति के देखने के ढंग में चूँकि अतिप्राकृतिक उद्देश्य तथा सूक्ष्मता शामिल थी इसलिये वे वास्तव को देख तो पाये, पर साथ ही साथ उनकी रचना में पग-पग पर वास्तविकता के परे की कल्पित वास्तविकता झलक गई। फलस्वरूप वे वस्तुवादी न हो पाये। रवीन्द्रनाथ बुराई देख नहीं पाये ऐसा नहीं पर उन्होंने बुराई के साथ-साथ या उसके ठीक पीछे भलाई को भी खड़ी पाया, नतीजा यह है कि वे बुराई को उस रूप में नहीं देख दिखा पाये जिस रूप में उसे भुक्तभोगी देखते हैं। इसलिए स्वभावतः उनकी अनुभूति और आमलोगों की अनुभूति में आकाश-पाताल का भेद पड़ गया। उनकी कल्पना की जादूगरी के कारण यह एक निराली चीज हुई, पर यह वस्तुवाद नहीं हुआ।

रवीन्द्रनाथ के ही मंडल में एक शक्तिशाली कहानीकार का आविर्भाव हुआ जो उनसे बिल्कुल विभिन्न रास्ते पर गये थे ये प्रभातकुमार। इनकी कहानियों में वास्तविकता की जो कल्पना है उसके साथ विश्वप्रकृति का कोई सम्बन्ध ढूँढ़ा नहीं गया था। उनकी शैली सहज सरल है, उसमें किसी की राह ढूँढ़ने या बताने की चेष्टा नहीं है। रवीन्द्रनाथ पराजित उपेक्षित, ऐहिक रूप से वंचित एक देश के दार्शनिक कवि तथा लेखक थे। रवीन्द्र मुख्यतः उस वर्ग के कवि थे जिसमें वास्तविकता को वास्तविकता के रूप में लेने का साहस नहीं रह गया तो प्रभातकुमार उस श्रेणी के दार्शनिक तथा लेखक हैं जो अधिक सोचना नहीं गवारा कर सकती यह श्रेणी या तो जो कुछ उसके पास है उसी के लिए भगवान की शुक्रगुजार है या उसकी परेशानी इतनी अधिक है कि कहानी में वह उससे दूर ही रहना चाहती है।

रवीन्द्रनाथ जिस समय अपनी छटा से साहित्य-गगन का दूर-दूर तक आलोकोद्भासित कर चुके थे, उसी समय एक कोने में जोरों से बिजली चमकी। एक नवीन रोशनी से आकाश में हलचल पैदा हो गई यही शरद्‌चन्द्र थे।[1]

---

१ आधुनिक बंगला साहित्य पृष्ठ २१४

# प्रारम्भिक जीवन

१८७६ ई० १५ सितम्बर को बंगाल के हुगली जिले के एक छोटे से गाँव देवानन्दपुर में शरत्चन्द्र का जन्म हुआ। उनके पिता मोतीलाल चट्टोपाध्याय गाँव के एक मामूली गृहस्थ थे उनकी माता श्रीमती भुवन मोहिनी एक मामूली महिला थी। देवानन्दपुर का वातावरण एक मामूली गाँव का वातावरण था। इस गाँव में यदि कोई विशेषता थी तो यही कि बंगाल के सुप्रसिद्ध कवि भारतचन्द्र ने यहाँ अपना कैशोर बिताया था। कहना न होगा कि यह कोई विशेषता नहीं है क्योंकि भारतचन्द्र ने यदि इस गाँव में अपनी वह उम्र व्यतीत की जब वे कवि नहीं थे तो इससे यहाँ के वातावरण में कुछ साहित्यिकता नहीं आ गई। हमें आश्चर्य है कि शरत्चन्द्र के भक्त लेखकों ने इस बात को इतना महत्त्व क्यों दिया। शरत्चन्द्र की प्रतिभा का उत्सस्थल हमें दूसरी ओर ढूँढ़ना पड़ेगा।

शरत्चन्द्र के पिता मोतीलाल साहित्यानुरागी थे शायद वे जितना साहित्यानुशीलन करते थे उससे कहीं बढ़कर कल्पना का घोड़ा दौड़ाने के शौकीन थे। उन्होंने चित्रकारी भी की उपन्यास भी लिखा पर कभी किसी रचना को सम्पूर्ण नहीं कर पाये। कुछ दूर तक ले जाकर वे अपनी रचना को मंझधार में छोड़कर आगे बढ़ जाते थे और दूसरे काम में लग जाते थे। वे जन्म भर साधना ही करते रहे सिद्धि का मुँह उन्होंने कभी नहीं देखा। सांसारिक रूप से वे नितान्त असफल व्यक्ति थे शरत् की माँ आमदनी कम होते हुए भी ज्यों-त्यों परिवार का काम काज चलाती रहीं। उनके मरने के बाद कल्पना-विलासी मोती बाबू को आटे-दाल का भाव मालूम हुआ फिर तो सारा परिवार ही तितर-बितर

हो गया।

मोती बाबू की नौ संतानें हुईं। पहली संतान एक कन्या थी अनिला देवी इसके बाद ही शरत् बाबू पैदा हुए। इसके बाद एक के बाद एक चार लड़के पैदा हुए, पर वे बचपन में ही मर गये। इसके बाद दो पुत्र तथा एक कन्या और हुई। मोती बाबू अपने बच्चों के प्रति या तो विशेष स्नेहशील थे या कल्पनाशील होने के कारण उन पर कोई शासन नहीं करते थे। फलस्वरूप बालक शरत् के जी में जो आता था वे वही करते थे शरत् बाबू ने स्वयं ही अपने बचपन के विषय में लिखा है—

"बचपन की बात याद है। गाँव में मछली का शिकार कर, डोंगियों को ढकेलकर तथा नाव खेकर दिन कटते थे। कभी-कभी लौटकुरी (यात्रा) के दल में जाकर शागिर्दी करते थे फिर उससे भी जी ऊब जाता था तो अँगोछा कंधे पर रखकर निकल पड़ते थे। यह निकल पड़ना विश्व कवि के काव्य की निरुद्देश यात्रा नहीं थी, हमारी यात्रा जरा दूसरे ढंग की थी। वह भी जब खतम हो जाती तो एक दिन फिर अपने फाट खाये हुए चरणों तथा निर्जीव देह को लेकर घर वापस होते थे। वहाँ जब आवभगत की बारी समाप्त हो जाती तो फिर पाठशाला में चालान किया जाता। वहाँ फिर एक बार आवभगत होने के बाद 'बोधोदय' तथा 'पद्यपाठ' से दिल लगाते। फिर एक दिन सब की-कराई प्रतिज्ञा भूल जाते थे दुष्ट सरस्वती कंधे पर सवार हो जाती थी। फलस्वरूप फिर शागिर्दी शुरू होती, फिर घर से गौ हो ग्यारह हो जाते फिर एक बार आवभगत की झड़ी लग जाती। इस प्रकार 'बोधोदय' तथा 'पद्यपाठ' पढ़ते-पढ़ते बचपन का एक अध्याय समाप्त हो गया।"

इस वर्णन में साहित्य प्रेम का तो कहीं पता नहीं है बल्कि उससे विमुखता ही सूचित होती है। यदि कोई लड़का ऐसा आचरण करे जैसा शरत् बाबू ने लड़कपन में किया, तो उसके साहित्यिक भविष्य के सम्बन्ध में आशान्वित न होकर हम तो उसके विषय में सब तरह से निराश

ही होंगे। पर यही शरत्चन्द्र में एक बात थी जो उनकी प्रतिभा के विकास के लिए बहुत ही सहायक थी वह थी उनकी पर्यवेक्षणशीलता। शरत्चन्द्र बाद को चलकर उस ढंग के उपन्यासकार नहीं होने वाले थे जो मेज के सामने लगी कुर्सी पर बैठकर समस्याओं तथा उलझनों की कल्पना करते हैं वे उन परिस्थितियों समस्याओं और उलझनों के बीच में से स्वयं गुजरने वाले थे। शरत्चन्द्र ने अपने या अपने अत्यन्त निकट के लोगों की जीवनी ही अपने उपन्यासों में लिखी है।

'देवदास' उपन्यास के पूर्वार्द्ध में शरत्चन्द्र ने अपनी ही जीवनी लिखी है। मुझे तो ज्ञात होता है कि देवदास नाम भी देवानन्दपुर गाँव से ही सम्बन्ध रखता है। जो कुछ भी हो शरत्चन्द्र की लिखी हुई उपरोक्त आत्मकथा से उन्हीं के लिखे हुए 'देवदास' के बचपन का वर्णन कितना मिलता है इसको पाठक देखें। 'देवदास' उपन्यास का जो आरम्भ होता है—

*'एक दिन बैसाख के दुपहर में न तो धूप का ही ओरछोर था न गर्मी की ही कोई सीमा थी। ऐसे समय मुखर्जी घराने का देवदास पाठशाला की कोठरी के एक कोने में फटी चटाई पर बैठकर स्लेट हाथ में लेकर आँख खोलकर फिर बन्दकर, पैर फैलाकर, जमुहाई लेकर, अंत तक एकदम अत्यन्त चिन्ताग्रस्त हो गया और एक ही मुहूर्त में वह इस नतीजे पर पहुँचा कि ऐसे परम रमणीय समय में खेतों में पतंग उड़ाने के बदले इस प्रकार पाठशाला में बन्द रहना कुछ नहीं है। उसके उपजाऊ दिमाग में एक तरकीब भी सूझ गई। स्लेट हाथ में लेकर वह उठ खड़ा हुआ।*

"पाठशाला में इस समय टिफिन की छुट्टी थी। लड़के तरह-तरह की आवाज करते हुए पास ही एक बटवृक्ष के नीचे गुल्लीडंडा खेल रहे थे। देवदास ने एक बार उनकी ओर देखा। टिफिन की छुट्टी देवदास को नहीं मिलती थी क्योंकि गोविन्द पंडित ने बहुत दफे देखा था कि एक बार पाठशाला के बाहर हो जाने के बाद वहाँ वापस आना देवदास नापसन्द

करता है। उसके पिता की भी मनाही थी। विविध कारणों से यह तय पाया था कि टिफिन के समय यह मुख्य काम भुलो के जिम्मे रहेगा।" इत्यादि।

यह गोविन्द पंडित शायद शरत् बाबू के शिक्षक पियारी पंडित थे बाद को यह पाठशाला बर्नापुकर स्कूल में परिवर्तित हो गई थी। इसी स्कूल में एक अद्भुत लड़की उनकी सहपाठिनी थी। यह लड़की उनके हर तरीके के काम में सहायिका थी। स्कूल में किसी लड़के से उनकी विशेष पटती नहीं थी पर यह लड़की उनके सम्भव-असम्भव हर तरीके के काम में साथ देती थी। इस लड़की को वे बहुत ही प्यार करते थे, पर साथ ही साथ जब क्रोध आता था तो उसे बेदर्दी के साथ मारते थे, पर यह लड़की ऐसी सुशीला थी कि कभी कहीं मार खाई बताकर अपने मित्र को पिटवाती नहीं थी। दोनों में झगड़ा भी आसानी से होता था और फिर मेल उससे भी आसानी से होता था। शरत्चन्द्र के उपन्यासों में यह लड़की बारबार आती है। ज्ञात होता है कि 'देवदास' की पार्वती या 'श्रीकांत' की राजलक्ष्मी यही लड़की थी। पता नहीं देवानन्दपुर के बाद भी इस लड़की से शरत्चन्द्र का कभी साबका पड़ा था नहीं। शरत्चन्द्र ने इस लड़की का असली नाम कभी किसी से नहीं बताया पर पार्वती तथा राजलक्ष्मी के चरित्रों की सजीवता ही इस बात का प्रमाण है कि 'देवदास' उपन्यास की पार्वती तथा 'श्रीकांत' की राजलक्ष्मी एकदम कपोल-कल्पित चरित्र नहीं है। शरत्-साहित्य के ये दो नारीचरित्र बंगला साहित्य की अमर सृष्टि हैं।

मोती बाबू कल्पनाशील तो थे ही साथ ही साथ नौकरी करने के मामले में जरा कच्चे पड़ते थे यद्यपि अंग्रेजी शासन में उत्पन्न मध्यवित्त श्रेणी का स्वर्ण-युग अभी तक समाप्त नहीं हुआ था। नौकरियों के बाजार में अभी तक अंग्रेजी-शिक्षितों की माँग काफी थी। मोती बाबू अंग्रेजी बंगला दोनों जानते थे। कई बार उन्होंने अनिच्छापूर्वक नौकरी कर भी ली। कुछ दिनों तक अच्छी तरह उसे करते भी रहे। फिर एक दिन एकाएक

सब छोड़छाड़कर घर बैठ जाते थे। कहना न होगा मध्यवित्त श्रेणी की लक्ष्मी (नौकरी) के प्रति उनकी इस प्रकार अल्प श्रद्धा के कारण लोग उन्हें आवारागर्द समझते थे और उनसे ऐसा ही व्यवहार करते थे। मोती बाबू इन बातों की परवाह न कर कविता नाटक कहानी उपन्यास लिखते या चित्र खींचते थे या अध्ययन में मग्न हो जाते थे। लोग जिसे काम-काज या धंधा कहते हैं उसके प्रति यह उदासीनता मोती बाबू से उनके पुत्रों में आई। शरत् बाबू की जीवनी तो एक अव्वल नम्बर आवारागर्द की जीवनी है ही उसकी तो हम विशद आलोचना करने ही जा रहे हैं पर शरत् बाबू के एक भाई प्रभासचन्द्र सन्यासी होकर आजीवन मारे-मारे फिरते रहे दूसरे एक भाई प्रकाशचन्द्र ने शरत् बाबू के कहने पर बड़ी कठिनता से शादी आदि करके घर रहना स्वीकार किया। शुरू के जीवन में वे भी आवारागर्द थे।

शरत्चन्द्र पढ़ने-लिखने से भागते थे पर मछली पकड़ने के लिए उनके दिल में अदम्य लालसा थी इस काम के लिए वे किसी भी जोखिम को तुच्छ समझते थे। उन्होंने सुन रखा था कि बसंतपुर में मछली पकड़ने का अच्छा सरंजाम मिलता है। बहुत दिनों से वे इसकी टोह में थे कि किसी तरह इस गाँव में पहुँचें पर मौका नहीं लग रहा था। एक दिन उन्होंने सुना कि उनका पड़ोसी नयन सरदार वहाँ गाय खरीदने जा रहा है, बस चुपके से वे उसे भी न बताकर उसके पीछे हो लिये। नयन सरदार प्रसिद्ध लठैत था वह अकेले ही चला। जब वह काफी दूर पहुँच गया तो उसे मालूम हुआ कि बालक शरत् उसके साथ है, किन्तु अब वह इतनी दूर आ चुका था कि पीछे लौटने का अवसर न था। मजबूर होकर उसे आठ नौ वर्ष के इस लड़के को अपना साथी बनाना पड़ा। गाय खरीदते देर हो गई, रास्ते में डकैतों ने रात को इन्हें घेर लिया पर नयन सरदार ने लाठी के जोर से अपनी तथा भावी उपन्यासकार की रक्षा की।

जीवित तितलियों को पकड़ने का भी उन्हें बड़ा शौक था। इसके साथ ही वे बागबानी के भी शौकीन थे। उनके पिता मोती बाबू को लड़के

की इन बातों पर कुछ विशेष आपत्ति न थी शायद लड़के के सब जौहरों का उनको पता भी नहीं लगता था पर जब उन्होंने शरत्चन्द्र को बिल्कुल ही विद्याविमुख पाया तो वे लड़कों को लेकर भागलपुर पहुँचे। इसके बाद शरत्चन्द्र के मुँह से ही उनकी जीवनी सुनी जाय—

"नए शहर में आया। केवल 'बोधोदय' की विद्या पर ही गुरुजनों ने छात्रवृत्ति श्रेणी में भर्ती कर दिया। उसमें 'सीतार वनवास' 'चारुपाठ' 'सद्भाव सद्गुरु' और 'प्रकांड व्याकरण' पढ़ना पड़ता था। यह कोई पढ़ जाना नहीं था मासिक या साप्ताहिक में समालोचना लिखना नहीं था बल्कि स्वयं पंडितजी के सामने खड़े होकर प्रतिदिन परीक्षा देनी थी। इसलिये यह बात निःसंकोच ही कही जा सकती है कि साहित्य के साथ मेरा प्रथम परिचय आँसुओं के साथ हुआ। फिर किसी तरह दुःख के वे दिन भी कट गये। उस समय मुझे मालूम ही नहीं था कि मनुष्य को दुःख पहुँचाने के अलावा भी साहित्य का कोई उद्देश्य हो सकता है।"

भागलपुर में आकर शरतचन्द्र जिस श्रेणी में भर्ती हुए, उसके भी उपयुक्त विद्या उनमें नहीं थी। बुद्धिमान शरत्चन्द्र ने इस बात का जल्दी ही पता पा लिया। उनकी तरह अभिमानी बालक भला इस बात को कब बर्दाश्त करने वाला था इसलिये उन्होंने पढ़ना शुरू कर दिया और जल्दी ही 'अच्छे लड़के' गिने जाने लगे। इन दिनों उनका ख्याल शारीरिक उन्नति अखाड़ा आदि की ओर गया। इस युग में चाहे जो कुछ भी हो पर उस जमाने में मध्यवित्त श्रेणी के भद्रजनों में यह भी गुंडई न शामिल था, इसलिये शरत्चन्द्र ने छिपकर ही इस ओर ध्यान दिया था। पड़ोस में एक मुहड़ा मकान था उसी के आँगन में शरत्चन्द्र ने अपनी शिष्यमंडली के साथ रातोंरात एक अखाड़ा खड़ा कर दिया। एक पैरालेल बार की कमी पड़ती थी सो लड़के इसे कहाँ से खरीदते इसलिए शरत्चन्द्र ने तय किया कि बाँस का पैरालेल बार बनाया जाय। तदनुसार बाँस का पैरालेल बार बनाकर छिपे-छिपे कसरत की जाने लगी।

भागलपुर में मामा के मकान पर एक पुस्तक थी 'संसार-कोष'।

कथा भी मालूमती का पिटारा था। लेखक ने शायद ही कोई विषय ऐसा हो जिस पर अपनी मुस्तनद राय जाहिर न की हो। जहाँ लेखक को कुछ मालूम न था वहाँ उन्होंने कल्पना से काम लिया था। बालक शरत्चन्द्र को इतना क्या मालूम था वे तो संसार-कोष की हरेक बात को वेदवाक्य ही समझते थे। आखिर जब छापे के हरफ में है तो क्या झूठ होगा ! शरत्चन्द्र तब इस बात की कल्पना ही नहीं कर सकते थे। किसी विपत्ति से बचने के लिए उसमें एक मंत्र दिया हुआ था शरत्चन्द्र ने स्वयं इस मंत्र को सीखकर अपने साथियों को भी सिखलाया। वह मंत्र यों था—

ओ३म् ह्रीं धु धु रक्ष रक्ष स्वाहा—

शरत्चन्द्र के 'श्रीकांत' नामक उपन्यास में मन्त्र सीखने के पागलपन का बारबार वर्णन आता है। उस वर्णन की सजीवता तथा मर्मग्राहिता का कारण इस घटना को जानने के बाद भलीभाँति समझ में आ जाता है।

'श्रीकांत' में है कि साँपों की जड़ीबूटी जानने के लिए ही श्रीकांत तथा इन्द्रनाथ साहूजी के यहाँ बड़ी विपत्तियों का सामना करके भी जाया करते थे तथा उससे साँपों को वश में करने का मन्त्र और पत्थर लेने के लोभ में भेंट पर भेंट चढ़ाते थे। शरत्चन्द्र स्वयं इसके पीछे बहुत दिनों तक दीवाने रहे। उसी संसार-कोष में लिखा था कि यह तो एक आँखों की देखी हुई बात है कि यदि बैल की जड़ हाथ में रखकर किसी भी साँप को पकड़ा जाय तो वह चाहे जितना ही विषैला हो फौरन ही फन उतारकर चुप हो जायगा। फिर क्या था शरत्चन्द्र ने बैल की जड़ निकाली पर संसार-कोष की बात की सत्यता की जाँच के लिए साँप कहाँ मिलता। अब शरत्चन्द्र और उनके साथी आस-पास त्यागकर साँप की तलाश में पड़ गये पर जो साँप अनायास ही मिल जाते थे उस दिन काफूर हो गये थे। अन्त में एक साँप के बच्चे का पता लगा। शरत्चन्द्र मारे खुशी के फूले न समाए, वे अपनी बैल की जड़ लेकर पहुँचे। लड़कों के अत्याचार से तथा भागने का रास्ता न पाकर वह साँप जो कि असली काला नाग था खड़ा हो गया। यही तो मौका था। शरत्चन्द्र ने आगे बढ़कर बैल की

जड़ उसके सामने कर दी पर अरे यह क्या साँप ने निस्तेज होकर गिर पड़ने की बजाय संसार-कोष की असत्यता का प्रमाण देते हुए उसी जड़ को कई बार डस लिया। इस प्रकार शरत्चन्द्र को सर्पजगत् पर आधिपत्य प्राप्त करने की अभिलाषा त्याग देनी पड़ी। इसी बीच छोकरों में से एक ने लाठी लाकर सनातन रीति से साँप का संहार किया।

शरत्चन्द्र खेल खोजकर शरारत करने के अभ्यस्त होने पर भी कभी कभी इस प्रकार गायब हो जाते थे कि उनके अन्य भी सहचर उनका अतापता नहीं पाते थे। यदि कोई पूछता कि तुम कहाँ गये थे तो इसके उत्तर में वे कहते थे—तपोवन में पर वह तपोवन कहाँ था इसका पता वे किसी को नहीं देते थे। एक बार उनके खेल-कूद के एक साथी श्री सुरेन्द्रनाथ गङ्गोपाध्याय ने (जो उनके दूर के मामा भी लगते थे पर उम्र में कम थे) बड़ी मुश्किलों से उनके इस तपोवन में साथ जाने की अनुमति प्राप्त की। वे लिखते हैं—

"घोष घराने के टूटे मकान के उत्तर में गङ्गा के ऐन पास ही एक कमरे के नीचे कुछ नीम और करौंदे के पेड़ों ने थोड़ी-सी जगह को बिल्कुल अँधेरा कर रखा था। लताओं ने इस जगह को ऐसा घेरकर रखा था कि किसी आदमी के लिए उसमें घुसना कठिन था। शरत्चन्द्र बड़ी सावधानी से एक जगह की लताओं को हटाकर उसके भीतर गये। भीतर थोड़ी सी साफ-सुथरी जगह थी। हरी-हरी लताओं के अन्दर से छनकर सूर्यकिरण उसके अन्दर आती थी वह रोशनी ऐसी मीठी थी कि देखकर तबियत प्रसन्न हो जाती थी और चित्त शान्त हो जाता था। पास ही एक बड़ा-सा पत्थर था। उस पर अच्छी तरह पलथी मारकर बैठते हुए शरत्चन्द्र ने साथी को सप्रेम बुलाया—आ"

साथी डरते-डरते सम्भ्रम से साथ पास जा बैठा। नीचे खरस्रोता गङ्गा बह रही थी। दूर पर गङ्गा के उस पार का दृश्य साफ-साफ दिखाई पड़ता था। मन्द-मन्द वायु शरीर में एक कोमल स्पर्श देकर बह जाती थी। साथी ने मुग्ध होकर कहा—यह स्थान तो बड़ा सुन्दर है।

शरत्चन्द्र यों ही बड़े शरारती थे तिस पर भागलपुर की ट्रेनिंग। अब शरत्चन्द्र अपने आगे किसी को कुछ समझते ही नहीं थे और अब दुधारा छुरा लेकर फिरते थे। इस छुरे के कारण तथा अन्य कारणों से गाँव के सब शरारती लड़के शरत्चन्द्र के अनुगामी हो गये। शरत्चन्द्र के इस गिरोह के लिए दूसरे के पोखरों से मछली तथा बागों से फल चुराना बायें हाथ का खेल था। यह लोग अपने खाने भर का चुराकर ही सन्तुष्ट नहीं होते थे बल्कि जिनको वे गरीब तथा जरूरतमंद समझते थे उनके घर भी पहुँचा आते थे। 'श्रीकान्त' उपन्यास में शरत्चन्द्र ने इन्द्रनाथ तथा श्रीकान्त के एक साथ बड़ी विपत्तियों का सामना करते हुए मछली चुराने के सजीव वर्णन से जो पन्ने के बाद पन्ने रंग डाले हैं वह किसी अलस काल्पनिक का कल्पना विलास नहीं है। आसपास के गाँव वाले शरत्चन्द्र तथा उनके गिरोह से इतना परेशान हो गये थे कि उन्हें रँगे हाथों पकड़कर रगड़ डालना चाहते थे पर गाँव वाले यदि डाल डाल थे तो वे पात-पात थे इसलिये बच गये नहीं तो किसी बोरस्टल जेल में उनकी प्रतिभा को जिन्दा दफ्ना दिया जाता।

बहुत से गरीब जिनको जरूरत थी शरत्चन्द्र के पास आते थे और उनकी लूट के माल से किसी तरह तन धारण करके रहते थे। शरत्चन्द्र की दस्युता यद्यपि फल और मछलियों तक ही सीमित थी पर इसका पैमाना छोटा न था। इन सब कामों में सदानन्द नाम का एक लड़का उनका लेफ्टिनेन्ट बना। शरत बाबू ने 'शुभदा' नामक उपन्यास में इसका चित्रित किया है। जब सदानन्द के घरवालों को ज्ञात हुआ कि वह शरत्चन्द्र के साथ उठता-बैठता है तो उस पर कड़ी निगरानी रखी जाने लगी और उस पर घरवालों की यह आज्ञा जारी हुई कि वह शरत्चन्द्र के साथ कभी न मिले। एक बार निगरानी से बचकर दोनों मित्र मिले तो उन्होंने जल्दी से तय कर लिया कि भविष्य में कैसे मुलाकात हुआ करेगी। यह तय हुआ कि सदानन्द के मकान से लगे हुए आम के पेड़ से सीढ़ी लगाकर वे रोज रात के समय सदानन्द के मकान की छत पर पहुँचेंगे।

वहाँ शतरंज लगा-लगाया रखा रहेगा फिर दोनों मित्र चुपचाप खेलेंगे। इसके बाद दोनों अपनी नैश यात्राओं में निकलेंगे फिर दोनों अपने-अपने घर लौटेंगे। वे ऐसा ही करते थे और घर लौटकर अच्छे लड़के की भाँति सोते थे।

देवानन्दपुर में लौटकर अबकी बार वे जिन लोगों के सम्पर्क में आये उनमें से केवल सदानन्द को ही उन्होंने अपनी रचनाओं में स्थान दिया हो ऐसा नहीं है। 'विलासी' कथा का मृत्युञ्जय इसी गाँव का रहने वाला समाज से निकाला हुआ एक अभागा था। मृत्युञ्जय का अपराध बस इतना ही था कि वह एक कथित नीच जाति की लड़की के साथ प्रेम में पड़ने के बाद उसे उपपत्नी के रूप में न रखकर उसके साथ ही रहने लगा, और उसे पत्नी की मर्यादा देने की चेष्टा की। इसी पर समाज के ठेकेदारों ने उसे समाज से निकाल दिया। जब उसने इस पर भी प्रायश्चित करके उस लड़की को त्यागने की बजाय समाज को ही त्याग दिया तो समाज ने जबरदस्ती उसकी स्त्री को अपमानित करके उसे अपमानित किया फिर भी उसने समाज के सामने घुटने नहीं टेके। अन्त में बड़ी करुण परिस्थितियों में उस बेचारे की मृत्यु हुई। लड़की ने आत्महत्या कर ली।

मृत्युञ्जय की मृत्यु से फलस्वरूप समाज की निष्ठुरता पर इतने क्रुद्ध हो गये हैं कि कहानी के अन्तिम पैराग्राफों में वे इस बात की प्रतीक्षा नहीं करते कि पाठक कहानी से अपना उपसंहार आप निकाल ले बल्कि वे स्वयं ही आवेश में आकर लिखते हैं—

"मुझे मालूम होता है कि जिस देश के नर-नारियों में परस्पर हृदय जीत कर विवाह करने की प्रथा नहीं है बल्कि ऐसा करना निन्दा का विषय है जिस देश की नर-नारियाँ आशा करने का सौभाग्य तथा आकांक्षा करने के अपार आनन्द से हमेशा के लिए वंचित हैं जिनको जीवन में न तो कभी जय का मद और न पराजय की व्यथा भोगनी पड़ती है जो भूल करने के दुःख तथा भूल न करने के आत्मप्रसाद दोनों में से किसी

बसा को भी नहीं पाजते जिसके प्राचीन तथा अभिजात समाज ने देश वासियों को सब तरह के हंगामों से बड़ी सावधानी से अलग रखकर उनको आजीवन निरा बच्चा ही बनाये रखा है जहाँ विवाह केवल एक ठका है चाहे वैदिकमंत्रों के द्वारा उसका दस्तावेज कितना ही पक्का किया गया हो वहाँ के लोगों के लिए मृत्युञ्जय के संग्राम को समझना टेढ़ी खीर है। विलासी को जिन लोगों ने बुरा-भला कहा था मैं जानता हूँ वे सभी साधु गृहस्थ और साध्वी गृहिणियाँ थीं अक्षय सतीलोक उन्हें मिलेगा यह भी मैं जानता हूँ पर सेवा सपेरे की लड़की जब उस समागत व्यक्ति मृत्युञ्जय को तिल-तिल कर जीत रही थी उसके उस गौरव के एक कण का भी अनुभव करना तो दूर रहा शायद इन लोगों ने कभी आँख से देखा भी नहीं है।

'पंडित मशाई' उपन्यास का मुख्य वैष्णव भी देवानन्दपुर का रहने वाला था। 'श्रीकान्त' में जिस 'गजाव रोड़े' बाग का जिकर है कहा जाता है वह अब भी देवानन्दपुर में मौजूद है। देवानन्दपुर के रघुनाथ गोस्वामी के अखाड़े को ही 'श्रीकान्त' में श्रीकृष्णपुर का अखाड़ा करके दिखलाया गया है।

मोतीबाबू बीच में तो देवानन्दपुर चले आये थे पर जब वहाँ चला नहीं तो वे फिर भागलपुर पहुँचे। शरत्चन्द्र उन दिनों स्कूल की निम्न श्रेणी में पढ़ते थे। भागलपुर में आकर वे फिर स्कूल में भर्ती हुए और १८८४ यानी १८ साल की उम्र में एन्ट्रेंस पास हुए।

एन्ट्रेंस पास करने के जमाने में ही उन्होंने साहित्य-चर्चा शुरू की और 'बासा' (घर) नाम से एक उपन्यास लिख डाला पर यह रचना उनको पसन्द के मुताबिक न होने के कारण उन्होंने उसको फाड़ कर फेंक दिया। उनके पिता मोतीबाबू तो किसी रचना को लिखते ही लिखते बीच में निराश होकर छोड़ देते थे किन्तु पुत्र ने रचना समाप्त तो कर ली। यही रीतियत थी। इस प्रकार उन्होंने अपनी कई रचनाओं को फाड़ डाला था बहुत से लोग जो समझते हैं कि शरत्चन्द्र ने एकाएक परिपूर्ण

प्रतिभा का अधिकारी होकर साहित्य-क्षेत्र में पदार्पण किया है कितनी पुख्ती पर है यह इसी बात से प्रमाणित है। मर्मों के सम्बन्ध में उनका आदर्श उच्च था तभी वे अपनी अपुष्ट रचनाओं को जनता के समक्ष लाना नहीं चाहते थे। यह नीरव साधना वर्षों तक चलती रही।

एण्ट्रेंस पास करने के बाद शरत्चन्द्र भागलपुर के तेजनारायण जुबिली कालेज में भर्ती हुए। वे रवीन्द्र साहित्य के साथ बंकिम डिकेन्स मिसेज हेनरी वुड आदि के उपन्यास पढ़ने लगे। उन्होंने हेनरी वुड के प्रसिद्ध उपन्यास 'ईस्टलीन' के आधार पर 'अभिमान' नाम का एक उपन्यास लिखा था साथ ही उन्होंने मेरी कारेली के 'माइटी ऐटम' पुस्तक का बंगला अनुवाद किया था पर इनको उन्होंने कभी छपने न दिया। अब तो इन सब पुस्तकों का कोई अस्तित्व भी नहीं रहा। शरत्चन्द्र ने अब लिखने पढ़ने की ओर ध्यान दिया था पर इसका अर्थ यह नहीं कि उन्होंने अपना आवारगी जीवन छोड़ दिया था। राजू अब भी मौजूद था अब तो इन मित्रमण्डलों का रात-रातभर पता नहीं लगता था न मालूम कहाँ वे रात्रि व्यतीत करते थे। घर वालों ने समझाया यह बुरी बात है पर वे माने नहीं। घर वालों ने इससे अधिक समझा कर जोर डालना उचित नहीं समझा क्योंकि ऐसा करने पर शायद वे घर छोड़कर भाग निकलते। फिर पढ़ने-लिखने में वे अच्छे हो ही गये थे इसलिए घर वाले अधिक छेड़छाड़ करना ठीक नहीं समझते थे।

उनके लड़कपन के साथी श्री सुरेन्द्रनाथ गङ्गोपाध्याय ने लिखा है—कालेज के प्रथम वर्ष में विज्ञान की परीक्षा से पहले की रात में शरत्चन्द्र ने हम लोगों से कहा आज रात को कोई मेरे पास पढ़ने मत आना जिसको जो पूछना हो कल आकर पूछे। हम लोग तो चले गये वे पढ़ने लगे। हम दूसरे दिन सबेरे गए तो वे नाराज होकर कहने लगे—हमने तो तुम लोगों से अभी कहा था कि कोई न आना, मैं आज न पढ़ाऊँगा फिर तुम लोग क्यों आये। हम लोगों ने जब बताया कि सबेरा कब का हो चुका है तब उन्होंने आँखें खोलीं तो उन्हें पता लगा कि रात बीत

कला को भी नहीं मानते जिनके प्राचीन तथा पवित्र समाज ने देश वासियों को सब तरह के हंगामों से बड़ी सावधानी से अलग रखकर उनको आजीवन निरा अच्छा ही बनाये रखा है जहाँ विवाह केवल एक ठेका है चाहे वैदिक मंत्रों के द्वारा उसका दस्तावेज कितना ही पक्का किया गया हो वहाँ के लोगों के लिए मृत्युञ्जय के संग्राम को समझना टेढ़ी खीर है। बिलासी को जिन लोगों ने बुरा-भला कहा था, मैं जानता हूँ वे सभी साधु गृहस्थ और साध्वी गृहिणियाँ थीं अक्षय सतीलोक उन्हें मिलेगा यह भी मैं जानता हूँ पर सेवा सपेरे की लड़की जब उस अभ्यागत व्यक्ति मृत्युञ्जय को तिल-तिल कर जीत रही थी उसके उस गौरव के एक कण का भी अनुभव करना तो दूर रहा शायद इन लोगों ने कभी आँख से देखा भी नहीं है।"

'पंडित मशाई' उपन्यास का कुन्ज वष्णव भी देवानन्दपुर का रहने वाला था। 'श्रीकान्त' में जिस 'गलाय दोई' बाग का जिकर है कहा जाता है वह अब भी देवानन्दपुर में मौजूद है। देवानन्दपुर के रघुनाथ गोस्वामी के अखाड़े को ही 'श्रीकान्त' में श्रीकृष्णपुर का अखाड़ा करके दिखलाया गया है।

मोतीबाबू क्रोध में तो देवानन्दपुर चले आये थे पर जब वहाँ चला नहीं तो वे फिर भागलपुर पहुँचे। शरत्चन्द्र उन दिनों स्कूल की निम्न श्रेणी में पढ़ते थे। भागलपुर में आकर वे फिर स्कूल में भर्ती हुए और १८९४ यानी १८ साल की उम्र में एन्ट्रेंस पास हुए।

एन्ट्रेंस पास करने के जमाने में ही उन्होंने साहित्य-चर्चा शुरू की और 'बासा' (घर) नाम से एक उपन्यास लिख डाला पर यह रचना उनकी पसन्द के मुताबिक न होने के कारण उन्होंने उसको फाड़ कर फेंक दिया। उनके पिता मोतीबाबू तो किसी रचना को लिखते ही लिखते बीच में निराश होकर छोड़ देते थे किन्तु पुत्र ने रचना समाप्त तो कर दी। यही तरक्की थी। इस प्रकार उन्होंने अपनी कई रचनाओं को फाड़ डाला था बहुत से लोग जो समझते हैं कि शरत्चन्द्र ने एकाएक परिपूर्ण

प्रतिभा का अधिकारी होकर साहित्य-क्षेत्र में पदार्पण किया है कितनी गहरी पर है यह इसी बात से प्रमाणित है। लेखों के सम्बन्ध में उनका आदर्श उच्च था तभी वे अपनी अपुष्ट रचनाओं को जनता के समक्ष लाना नहीं चाहते थे। यह नीरव साधना वर्षों तक चलती रही।

एन्ट्रेंस पास करने के बाद शरत्चन्द्र भागलपुर के तेजनारायण जुबिली कालेज में भर्ती हुए। वे रवीन्द्र साहित्य के साथ थैकरे, डिकेन्स, मिसेज हेनरी वुड आदि के उपन्यास पढ़ने लगे। उन्होंने हेनरी वुड के प्रसिद्ध उपन्यास ईस्टलीन के आधार पर 'अभिमान' नाम का एक उपन्यास लिखा था साथ ही उन्होंने मेरी कारेली के 'माईटी ऐटम' पुस्तक का बँगला अनुवाद किया था पर इनको उन्होंने कभी छपने न दिया। अब तो इन सब पुस्तकों का कोई अस्तित्व भी नहीं रहा। शरत्चन्द्र ने अब लिखने पढ़ने की ओर ध्यान दिया था पर इसका अर्थ यह नहीं कि उन्होंने अपना शरारती जीवन छोड़ दिया था। राजू अब भी मौजूद था अब तो इन मित्रयुगलों का रात रातभर पता नहीं लगता था न मालूम कहाँ वे रात्रि व्यतीत करते थे। घर वालों ने समझाया यह बुरी बात है पर वे माने नहीं। घर वालों ने इससे अधिक समझा कर जोर डालना उचित नहीं समझा क्योंकि ऐसा करने पर शायद वे घर छोड़कर भाग निकलते। फिर पढ़ने लिखने में वे अच्छे हो ही गये थे इसलिए घर वाले अधिक छेड़छाड़ करना ठीक नहीं समझते थे।

उनके लड़कपन के साथी श्री सुरेन्द्रनाथ गंगोपाध्याय ने लिखा है—कालेज के प्रथम वर्ष में विज्ञान की परीक्षा से पहले की रात में शरत्चन्द्र ने हम लोगों से कहा आज रात को कोई मेरे पास पढ़ने मत आना जिसको जो पूछना हो कल आकर पूछे। हम लोग तो घर बैठे के पढ़ने लगे। हम दूसरे दिन सवेरे गये तो वे नाराज होकर कहने लगे—हमने तो तुम लोगों से अभी कहा था कि कोई न आना मैं आज न पढ़ाऊँगा फिर तुम लोग क्यों आये। हम लोगों ने जब बताया कि सवेरा कब का हो चुका है तब उन्होंने आँखें खोलीं तो उन्हें पता लगा कि रात बीत

चुकी है। इस प्रकार शरत्चन्द्र युग के पूरे पक्के थे और युग के सामने दिन-रात एक कर देते थे।

शरत्चन्द्र ने स्वयं ही अपने विषय में लिखा है—"जिस परिवार में मैं पनपा वहाँ काव्य-उपन्यास पढ़ना असच्चरित्रता का प्रतीक तथा संगीत अस्पृश्य था। वहाँ सभी लोग परीक्षा पास करके वकील बनने में ही अपनी इतिकर्तव्यता समझते थे पर अकस्मात् वहाँ भी एक भ्रान्ति-सी हो गई। हमारे एक रिश्तेदार विदेश में रहकर कालेज में पढ़ते थे वे घर में आये तो देखा गया कि वे संगीत में अनुराग रखते हैं और काव्य में भी उनकी दिलचस्पी है। एक दिन उन्होंने घर भर की औरतों को इकट्ठी कर रवीन्द्रनाथ लिखित 'प्रकृतिर प्रतिशोध' सुनाया। किसने कितना समझा पता नहीं पर जो पढ़ रहे थे उनके साथ मेरी आँखों में भी आँसू आ गये फिर भी दुर्बलता न जाहिर हो जाय इसलिये मैं उठकर जल्दी से बाहर चला गया। फिर रवीन्द्र काव्य के साथ दुबारा परिचय हुआ तो उसका पहला यथार्थ परिचय मिला। अब ऐसा हुआ कि इस परिवार के वकील बनने के वातावरण में भी बना पया और मैं लौट्यू पुराने गाँव के मकान में। पर अब की बार 'बोधोदय' नहीं पिताजी की टूटी हुई अलमारी खोलकर मैंने 'हरिदास की गुप्त बातें' तथा 'भवानी पाठक' निकाला। गुरुजनों को दोष नहीं दे सकता ये पुस्तकें स्कूल की पाठ्य पुस्तकें तो थीं नहीं इसलिये बुरे लड़कों के योग्य अपाठ्य पुस्तकें थीं। अतः उनको पढ़ने के लिए मुझे चोरी का आश्रय लेना पड़ा। मैं पढ़ता साथी सुनते। अब पढ़ता नहीं हूँ लिखता हूँ उन्हें कौन पढ़ता है, पता नहीं।

"मास्टर साहब ने स्नेहवश एक दिन मुझसे इतना इशारा किया कि एक स्कूल में अधिक दिन पढ़ने से विद्या अधिक नहीं आती। अतएव फिर शहर लौटा। इसके बाद फिर स्कूल बदलने की जरूरत न हुई। अब मुझे बंकिम ग्रंथावली का पता लगा। उपन्यास-साहित्य में इसके आगे भी कुछ हो सकता है, यह मैं उस जमाने में सोच ही नहीं सकता था।

इनको मैंने इतनी बार पढ़ा कि पुस्तकें जैसे कंठस्थ हो गईं। शायद यह मेरा एक दोष है। मैंने उनके अन्ध अनुकरण की भी चेष्टा की। रचना की दृष्टि से देखा जाय तो वे एकदम व्यर्थ हुए थे पर यदि साधना की दृष्टि से देखा जाय तो उनका संचय मन में अब भी अनुभव करता हूँ।

"इसके बाद 'बंगदर्शन' पत्रिका के नव पर्याय का युग आया। रवीन्द्रनाथ की 'आँख की किरकिरी' (चोखेर बालि) उस समय उसमें धारावाहिक रूप से प्रकाशित हो रही थी। भाषा तथा अभिव्यक्ति की नवीन रोशनी आँखों में आकर जैसे चुभ गई। उस दिन की गम्भीर तथा सुतीक्ष्ण अनुभूति की यह स्मृति मैं कभी नहीं भूलूँगा। किसी बात को ऐसे कहा जा सकता है दूसरे की कल्पना की तसवीर में पाठक अपने मन को ऐसे देख पाता है, इसके पहले मैंने कभी स्वप्न में भी नहीं सोचा था। इतने दिनों के बाद मुझे केवल साहित्य का ही नहीं अपने मन का भी एक परिचय मिला। बहुत पढ़ने पर ही बहुत हासिल होता है यह बात नहीं। इन कुछ पन्नों के जरिये से जिन्होंने इतनी बड़ी सम्पदा मेरे हाथ में पहुँचा दी उनको कृतज्ञता प्रकट करूँ तो कैसे करूँ?

"इसके बाद साहित्य के साथ मेरा बिछोह हुआ मैं भूल ही गया कि कभी मैंने एक पंक्ति भी लिखी है। बहुत दिनों तक प्रवास में ही कटता रहा इस बीच में कवि को केन्द्र बनाकर किस भाँति बंगला साहित्य द्रुतता के साथ उन्नति करने लगा मैंने इसका कुछ पता भी नहीं पाया। कवि के साथ न तो मुझे कभी घनिष्ठता का ही सौभाग्य हुआ न उनके पास बैठकर मैंने कभी साहित्य की शिक्षा ही पाई, मैं एकदम विच्छिन्न था। पर यह हुआ बाहरी सत्य भीतरी सत्य इसके बिलकुल ही विपरीत था। उस विदेश में मेरे साथ कवि की कुछ पुस्तकें काव्य तथा कथा साहित्य था। मन में उनके प्रति थी परम श्रद्धा तथा विश्वास। उस दौरान मैंने घूम-फिरकर उन्हीं कुछ पुस्तकों को बार-बार पढ़ा। उनमें छन्द कौन-सा है अक्षर कितने हैं पार्ट क्या है उसकी परिभाषा क्या है गठन में कोई त्रुटि है कि नहीं इन सब बड़ी-बड़ी बातों को मैंने कभी

सोचा भी नहीं, यह सब मेरे निकट बाहुल्यमात्र था। केवल सुदृढ़ प्रत्यय के तौर पर मेरे मन में यह था कि इससे पूर्णतर सृष्टि कोई नहीं हो सकती, क्या काव्य क्या कथा-साहित्य में। यही मेरी पूँजी थी।

'एक दिन जब एकाएक साहित्य-सेवा की पुकार आई, तब मैं यौवन पार कर प्रौढ़ता के इलाके में कदम रख चुका था। देह थकी हुई तथा उद्यम सीमित था, सीखने की उम्र बीत चुकी थी। मैं प्रवास में रहता था, सब से विच्छिन्न तथा सब के लिए अपरिचित, फिर भी मेरे मन में भय नहीं आया।

'मेरा बचपन तथा यौवन कठोर गरीबी में बीते थे। पैसों की कमी के कारण ही मुझे शिक्षालाभ का सौभाग्य न हुआ। मैंने अपने पिता के निकट अस्थिर स्वभाव तथा गम्भीर साहित्यानुराग के अतिरिक्त उत्तराधिकार-सूत्र में कुछ नहीं पाया। पिता से पाये हुए प्रथम गुण के कारण मैं थोड़ी ही उम्र में सारे भारत की परिक्रमा कर आया था और पिता से पाये हुए द्वितीय गुण के कारण मैंने जीवन भर स्वप्न ही देखा। मेरे पिता का पांडित्य अगाध था। कहानी, उपन्यास, नाटक, कविता-साहित्य के हरेक विभाग में उन्होंने हाथ डाला था, पर इनमें से किसी को उन्होंने समाप्त नहीं किया। उनकी रचनाएँ अब मेरे पास नहीं हैं, कब कहाँ कैसे खो गईं, यह भी याद नहीं, पर यह याद है कि उनकी असमाप्त रचनाओं को पढ़ते-पढ़ते मेरे घंटों कट जाते थे। वे इन्हें समाप्त क्यों नहीं कर गये, इस बात पर मुझे बड़ा अफसोस रहता था। असमाप्त अंश क्या हो सकते हैं, यह सोचकर मैं रातें बिना सोए काट देता था। कदाचित् इसी कारण मैंने सत्रह साल की उम्र में कहानी लिखना शुरू किया। पर कुछ दिनों बाद यह कह कर कहानी लिखना छोड़ दिया था कि यह आलसियों का काम है। उसके बाद कई साल निकल गए, मैंने कभी एक भी पंक्ति लिखी थी, यह भूल गया।

"अठारह साल की उम्र के बाद एक दिन मैंने लिखना शुरू किया। इसका कारण दैवी दुर्घटना की तरह ही आकस्मिक था। मेरे कुछ पुराने

मित्र एक छोटा-सा मासिक पत्र निकालना चाहते थे पर प्रतिष्ठित लेखकों में से किसी ने इस सामान्य पत्रिका में लिखना स्वीकार नहीं किया। मजबूरी से कुछ मित्रों ने मुझे स्मरण किया। बड़ी कोशिश के बाद वे मुझसे लेख भेजने का वादा करा पाये। यह १९१३ की बात है मैं नौकरानी था। किसी प्रकार उनके हाथों से छुटकारा पाने के लिए मैंने लेख देना स्वीकार किया था। मेरा उद्देश्य यह था कि एक बार रंगून पहुँच जाऊँ तो फिर समझ लूँगा पर चिट्ठी के बाद चिट्ठी तथा तार के बाद तार पाकर मुझे फिर सचमुच ही कलम पकड़नी पड़ी। मैंने उनकी नव प्रकाशित 'यमुना' के लिए एक छोटी कहानी भेजी। यह कहानी प्रकाशित होते ही बंगला के पाठक-समाज में उसकी कद्र हुई। मैं भी एक ही दिन में प्रसिद्ध हो गया। फिर तो मैं लेखक ही गया और तब से बराबर लिख रहा हूँ।"

शरत्चन्द्र की शिक्षा यों खतम हुई कि जब एफ० ए० की परीक्षा का समय आया तो फीस के २०) रुपये न जुटने के कारण उन्हें पढ़ना लिखना छोड़ देना पड़ा। इसका फल यह हुआ कि वे फिर बुरी तरह कुसंगति में पड़ गये। पर उनमें साहित्यचर्चा की जो प्यास उत्पन्न हो चुकी थी उसका उसका निवृत्ति कैसे होती। वे भीतर ही भीतर साहित्यानुशीलन करने लगे। वे कविता के बहुत प्रेमी थे पर उनकी प्रतिभा कविता के अनुकूल न होकर लेखों की तरह गद्यानुकूल थी इसी कारण वे गद्य ही लिखा करते थे। पर एक-एक पंक्ति तथा शब्द को उसी भाँति साधना करते थे जैसे कवि करते हैं। जब तक एक भी शब्द उनकी रुचि के अनुसार स्थान में रह जाता था और जब तक वे उसे हटा कर दूसरा मौजूं शब्द नहीं बैठा लेते थे तब तक उन्हें चैन नहीं पड़ती थी। यह बात नहीं कि कविता लिखने की उन्होंने चेष्टा नहीं की 'पुष्पवने लग्गे आगुन' नाम से उन्होंने एक अनुकान्त कविता शुरू भी की थी पर बीच में ही 'हमसे यह नहीं होने का' कहकर छोड़ दिया। शायद वे किसी भी कविता को कभी पूरी नहीं कर पाये पर बार-बार असफल

सोचा भी नहीं यह सब मेरे निकट बाहुल्यमात्र था। केवल सुदृढ़ प्रत्यय के तौर पर मेरे मन में यह था कि इससे पूर्णतर सृष्टि कोई नहीं हो सकती 'क्या काव्य क्या कथा-साहित्य में। यही मेरी पूँजी थी।

'एक दिन जब एकाएक साहित्य-सेवा की पुकार आई, तब मैं यौवन पार कर प्रौढ़ता के इलाके में कदम रख चुका था। देह थकी हुई तथा उद्यम सीमित था सीखने की उम्र बीत चुकी थी। मैं प्रवास में रहता था सब से विच्छिन्न तथा सब के लिए अपरिचित फिर भी मेरे मन में भय नहीं आया।

'मेरा बचपन तथा यौवन कठोर गरीबी में बीते थे। पैसों की कमी के कारण ही मुझे शिक्षालाभ का सौभाग्य न हुआ। मैंने अपने पिता के *निकट अस्थिर स्वभाव तथा गम्भीर साहित्यानुराग के अतिरिक्त* उत्तराधिकार-सूत्र में कुछ नहीं पाया। पिता से पाये हुए प्रथम गुण के कारण मैं थोड़ी ही उम्र में सारे भारत की परिक्रमा कर आया था और पिता से पाये हुए द्वितीय गुण के कारण मैंने जीवन भर स्वप्न ही देखा। मेरे पिता का पांडित्य अगाध था। कहानी उपन्यास नाटक कविता-साहित्य के हरेक विभाग में उन्होंने हाथ डाला था पर इनमें से किसी को उन्होंने समाप्त नहीं किया। उनकी रचनाएँ अब मेरे पास नहीं है कब कहाँ कैसे खो गईं यह भी याद नहीं पर यह याद है कि उनकी असमाप्त रचनाओं को पढ़ते-पढ़ते मेरे घंटों कट जाते थे। वे इन्हें समाप्त क्यों नहीं कर गये इस बात पर मुझे बड़ा अफसोस रहता था। असमाप्त अंश क्या हो सकते हैं यह सोचकर मैं रातें बिना सोए काट देता था। कदाचित् इसी कारण मैंने सत्रह साल की उम्र में कहानी लिखना शुरू किया। पर कुछ दिनों बाद यह कह कर कहानी लिखना छोड़ दिया था कि यह आलसियों का काम है। उसके बाद कई साल निकल गए, मैंने कभी एक भी पंक्ति लिखी थी यह भूल गया।

''अठारह साल की उम्र के बाद एक दिन मैंने लिखना शुरू किया। इसका कारण दैवी दुर्घटना की तरह ही आकस्मिक था। मेरे कुछ पुराने

मित्र एक छोटा-सा मासिक पत्र निकालना चाहते थे पर प्रतिष्ठित लेखकों में से किसी ने इस सामान्य पत्रिका में लिखना स्वीकार नहीं किया। मजबूरी से कुछ मित्रों ने मुझे स्मरण किया। बड़ी कोशिश के बाद वे मुझसे लेख भेजने का वादा करा पाये। यह १९१३ की बात है मैं नीमराजी था। किसी प्रकार उनके हाथों से छुटकारा पाने के लिए मैंने नाम देना स्वीकार किया था। मेरा उद्देश्य यह था कि एक दफे रंगून पहुँच जाऊँ तो फिर समझ लूँगा पर चिट्ठी के बाद चिट्ठी तथा तार के बाद तार पाकर मुझे फिर सचमुच ही कलम पकड़नी पड़ी। मैंने उनकी नव प्रकाशित 'यमुना' के लिए एक छोटी कहानी भेजी। यह कहानी प्रकाशित होते ही बंगला के पाठक-समाज में रुचिकर हुई। मैं भी एक ही दिन में प्रसिद्ध हो गया। फिर तो मैं फँस ही गया और तब से बराबर लिख रहा हूँ।"

शरत्चन्द्र की शिक्षा यों खतम हुई कि जब एफ़० ए० की परीक्षा का समय आया तो फीस के २०) रुपये न जुटने के कारण उन्हें पढ़ना लिखना छोड़ देना पड़ा। इसका फल यह हुआ कि वे फिर बुरी तरह कुसंगति में पड़ गये। पर उनमें साहित्यचर्चा की जो प्यास उत्पन्न हो चुकी थी भला उससे निवृत्ति कैसे होती। वे भीतर ही भीतर साहित्यानुशीलन करने लगे। वे कविता के बहुत प्रेमी थे पर उनकी प्रतिभा कविता के अनुकूल न होकर [illegible] की तरह गद्यानुकूल थी इसी कारण वे गद्य ही लिखा करते थे। पर एक-एक पंक्ति तथा शब्द की उसी भाँति साधना करते थे जैसे कवि करते हैं। जब तक एक भी शब्द उनकी रुचि के अनुसार ठीक न बैठ जाता था और जब तक वे उसे हटा कर दूसरा मौजूं शब्द नहीं बैठा लेते थे तब तक उन्हें चैन नहीं पड़ती थी। यह बात नहीं कि कविता लिखने की उन्होंने चेष्टा नहीं की 'फुलवन मधुर फागुन' नाम से उन्होंने एक अतुकान्त कविता शुरू की थी पर बीच में ही 'इससे यह नहीं होने का' कहकर छोड़ दिया। शायद वे किसी भी कविता को कभी पूरी नहीं कर पाये पर बार-बार प्रयत्न

होने पर भी उन्होंने कई बार कवि बनने की चेष्टा की। रवीन्द्रनाथ के युग में पैदा होकर तथा उन्हीं की भाषा में लेखनी धारणकर कवि बनने की यह चेष्टा खूब समझ में आती है। आज भी बंगला के अनेक कहानी लेखक तथा उपन्यासकार कुछ न कुछ कविता लिखने की चेष्टा करते हैं यद्यपि उनमें से अधिकांश की प्रतिभा सम्पूर्ण रूप से गद्य की ही प्रतिभा है।

अनातोले फ्रांस ने भी पहल-पहल कविता लिखना शुरू किया था पर शरत् बाबू की तरह उनकी सब कविताएँ असम्पूर्ण ही नहीं रह गईं बल्कि उन्होंने तो एक कविता-संग्रह भी प्रकाशित किया था पर इसके बाद वे गद्य की ओर ही झुके और आमरण गद्य ही लिखते रहे। शरत्चन्द्र की कोई कविता या कविता-खण्ड कभी प्रकाशित नहीं हुआ पर कविता लिखने के लिए उन्होंने जो साधना की थी वह उनके उपन्यासों की भाषा में स्पष्ट है। कहीं-कहीं तो उनकी भाषा उद्दीप्त होकर कवितामयी हो गई है।

शरत्चन्द्र के नेतृत्व में भागलपुर में एक साहित्यिक गोष्ठी कायम हो गई थी। इनमें सर्वश्री सुरेन्द्र गङ्गोपाध्याय गिरीन्द्रनाथ गङ्गोपाध्याय निरुपमा देवी विभूतिभूषण भट्ट योगेशचन्द्र मजूमदार आदि थे। इस से सभी ने बाद में बंगला साहित्य में ख्याति प्राप्त की। इस गोष्ठी के सभापति शरत् बाबू थे। कविता तथा कहानी लिखना ही इस गोष्ठी का एकमात्र कार्यक्रम था। हाँ कवीन्द्र रवीन्द्र के काव्य की आलोचना करना भी इस गोष्ठी के सदस्यों का प्रिय कार्य था। सभापति विषय दे देते थे सदस्यों को सात दिन के अन्दर अपनी रचनाएँ सभापति के सामने पेश करनी पड़ती थीं। सभापति सबको नम्बर देते थे। इतनी उम्र में ही वे इस प्रकार नम्बर देते थे और यह सब होनहार नौजवान उनकी पेश-वाई को मान लेते थे इसी से यह बात स्पष्ट है कि उसी उम्र में वे इतने साहित्यिक उत्कर्ष को पहुँच चुके थे कि लोग बिना चींचपड़ के उनका नम्बर देना स्वीकार कर लेते थे।

इसी ज़माने में कुछ कट्टरपंथियों से शरत्चन्द्र का संघर्ष हुआ। शरत्

चन्द्र को इस उम्र में ही जीवन के बहुत तरह के ऊँच-नीच का अनुभव हो चुका था। साहित्य से भी उनका परिचय गम्भीर तथा विस्तृत हो चुका था पर अभी शरत्चन्द्र बनने के लिए एक बात की कसर थी वह यह कि वे अभी समाज के निष्ठुर मूढ़ युक्ति-विरुद्ध आचरण तथा गति से कम परिचित थे। वह परिचय इन्हें अब मिलने वाला था। भागलपुर के बंगालियों में उन दिनों दो दल थे। एक तो बिलकुल कट्टर तथा पोंगापन्थी था इसके नेता शरत्चन्द्र के मामा श्री केदारनाथ गङ्गोपाध्याय थे दूसरा सुधारक दल था इसके नेता श्री शिवचन्द्र बन्द्योपाध्याय थे। शिवचन्द्र विलायत हो आये थे वहाँ से लौटने पर वकालत में उन्हें बड़ी सफलता मिली थी। ब्रिटिश सरकार ने उन्हें राजा की उपाधि भी दी थी। विलायत जाने के कारण शिवचन्द्र समाज से निकाल भी दिये गये थे। कई बार उन्होंने प्रायश्चित्त आदि करके समाज में शामिल होना चाहा, इस पर भी जब कट्टरपंथी नहीं माने तो उन्होंने कट्टरपंथियों को बिलकुल अँगूठा दिखा दिया और अपने नेतृत्व में सुधारकों को संगठित किया।

गंगोपाध्याय मामों के मकान के पास ही शिवचन्द्र का मकान था। शिवचन्द्र की एक तो आर्थिक हालत अच्छी थी दूसरे उनके यहाँ कोई छुआछूत का विचार न होने के कारण नौजवान लोग वहीं जमते थे। फिर वहाँ कसरत करने के साधन थे साथ ही वहाँ एक थियेटर पार्टी भी मौजूद थी। शरत्चन्द्र को पारिवारिक दृष्टि से तो गंगोपाध्यायों का साथ देना चाहिये था क्योंकि वे पोंगापंथियों के नेता केदार बाबू के परिवार के ही अन्तर्भुक्त थे पर यह बात शरत्चन्द्र को शिवचन्द्र के यहाँ इकट्ठे नौजवानों से अधिक दिन तक दूर न रख सकी। वे पहले तो छिपकर जाने लगे पर जब बात फैल गई तो खुलेआम जाने लगे।

शरत्चन्द्र अपने गुणों के कारण जल्दी ही इस दल के एक मुख्य व्यक्ति हो गए। उनके मित्र राजू भी इस दल में खूब चमके। इन लोगों के अभिनय की इतनी प्रशंसा हुई कि भागलपुर के बंगालियों के बाहर भी इसकी धूम हो गई। इस बात से विरोधी दल वाले बहुत घबरा गये। वे इस अभि

थियेटर के पीछे हाथ धोकर पड़ गए, बुरे भले सब तरीके से इसका निराकरण किया और तभी साँस ली जब इस दल को तोड़ दिया। जिन घरों के लड़के इन अभिनयों में भाग लेते थे वे सभी समाजच्युत किये गये। पाठक स्मरण रखें कि यह कोई पचीस पचास की बात नहीं बल्कि भागलपुर में रहने वाले उच्च शिक्षाभिमानी बंगालियों का आचरण था। उन्नीसवीं शताब्दी अब खतम हो रही थी। शरत्चन्द्र को भी समाज निकाला दिया गया। गंगोपाध्यायों के यहाँ बड़े समारोह के साथ जगद्धात्री पूजा होती थी। इस अवसर पर भागलपुर के सारे प्रवासी बंगाली एकत्र होते। यदि नहीं आते थे तो केवल शिवचन्द्र और ऐसे ही कुछ लोग। शरत्चन्द्र हर साल ऐसे अवसर पर व्यस्त होकर अतिथियों की सेवा करते थे पर अब की बार शरत्चन्द्र को देखकर निमन्त्रित अभ्यागत आगबबूला हो गये और उन लोगों ने कहा कि यदि शरत्चन्द्र ने खाना परोसने में हाथ बँटाया तो हम यहाँ पानी भी न पीकर उठ जायेंगे। इसका नतीजा यह हुआ कि शरत्चन्द्र अपने ही मामा के परिवार में अछूत की तरह दुत्कार कर निकाल दिये गये। रामचन्द्र ने धर्म की रक्षा के लिए सीता को बिना अपराध ही त्याग दिया था फिर उसी धर्म के ठेकेदार शरत्चन्द्र को अछूत क्यों न समझते। इस घटना से शरत्चन्द्र के भावुक हृदय को बड़ी ठेस पहुँची और वे सब छोड़छाड़कर घर से चले गये। इस समय वे एफ० ए० के द्वितीय वर्ष के छात्र थे। छः महीने बाद वे प्राइवेट इम्तहान देने के लिए भागलपुर लौटे पर जैसा कि हम पहले ही लिख चुके हैं २ ) रु फीस न जुटा पाने के कारण वे परीक्षा में न बैठ सके। २ ) रु वे इसी कारण नहीं जुटा पाये कि उनके अभिभावक के लोग उनके विरुद्ध थे। इस प्रकार छात्र जीवन की तो यहीं समाप्ति हुई।

१८९५ के नवम्बर में शरत्चन्द्र मातृहीन हो गये। पिता की गिरी आर्थिक हालत को देखकर शरत् बाबू ने बनैली इस्टेट के श्री शिवशंकर साहु के यहाँ नौकरी कर ली। यहीं इनको शिकार का चस्का लग गया तथा वे गोली चलाने में धुरन्धर हो गये। उड़ती चिड़ियों को भी वे मार लेते

थे। अपने उपन्यास 'श्रीकान्त' में उन्होंने शिवशंकर साहु को कुमार साहब के नाम से चित्रित किया पर साहुजी का नाम एक लेखक ने महादेव साहु लिखा है साथ ही कहा है कि शरत्चन्द्र साहुजी के नियमित नौकर नहीं थे बल्कि मुसाहिब के तौर पर थे। इस वर्णन के अनुसार शरत्चन्द्र और महादेव साहु की भेंट अचानक हुई थी। संगीत की पारदर्शिता के कारण साहुजी बारबार उन्हें बुलाते थे इसलिये धीरे-धीरे शरत्चन्द्र ने उनके यहाँ अपना स्थान बना लिया था।[1] इन दोनों में से कौन-सा वर्णन सत्य है पता नहीं पर यदि 'श्रीकान्त' उपन्यास की गवाही ली जाय तो वह द्वितीय बात के हक में ठहरेगी।

शरत्चन्द्र के पिता को तरह-तरह के पत्थरों के संग्रह करने का एक मर्ज-सा था, उनके इस शौक के कारण एक पूरा बक्स तरह-तरह के पत्थरों से भरा था। शरत्चन्द्र के निकट इनकी कोई कद्र नहीं थी उन्होंने पिता की अनुपस्थिति में इन पत्थरों को उठाकर एक धनी मित्र को दे दिया। जब मोतीलाल को इस बात का पता लगा तो वे बहुत बिगड़े शरत्-चन्द्र को इस बात से इतनी ग्लानि हुई कि वे फिर एक बार घर छोड़ कर निकल गये।

अब की बार उन्होंने वैराग्य ग्रहण कर लिया और मारे-मारे फिरते रहे। श्रीकान्त में संन्यासी जीवन के तजर्बे का बड़ा रोचक वर्णन है। हम उनमें से कुछ ही बातों का वर्णन करेंगे। श्रीकान्त (शरत् बाबू?) ने भटकते-भटकते एक दिन देखा कि एक आम के बाग से धुआँ निकल रहा है। वे लिखते हैं—"मुझे ज्यादातर मालूम था इसलिये धुआँ देखकर आग का होना मैंने निश्चित समझा सच बात तो यह है कि मैंने आग के हेतु का भी अनुमान कर लिया इसलिये जल्दी ही उस तरफ बढ़ा तो देखता क्या हूँ कि यह तो संन्यासी का अच्छा खासा आश्रम है। प्रकाण्ड धूनी के ऊपर लोटे में चाय का पानी चढ़ा हुआ था। बाबाजी आधी आँख मूँदे हुए सामने ही विराजमान थे और उन्हीं के आस-पास गाँजा पीने

[1] श्री मणीन्द्रनाथ राय लिखित 'शरत्-प्रतिभा' पृ० १७

साथ यह शरत् बाबू के जीवन की ही घटना है।

इस बार शरत्चन्द्र की अवारागर्दी का यह जीवन कई वर्षों तक चला। संन्यासी-जीवन के आखिरी दिनों में वे मुजफ्फरपुर में थे वहीं १९०१ में उनको अकस्मात् अपने पिता की मृत्यु की खबर मिली बस वे साइकल पर वहाँ से भागलपुर पहुँचे। यहीं रहते समय उन्होंने 'ब्रह्मदैत्य' नाम से एक उपन्यास लिखा था पर जिनके पास रख गये थे उन्होंने इसकी पांडुलिपि को खो दी। साहित्य का परम दुर्भाग्य था और क्या कहा जाय ?

इस पितृवियोग जैसी भयंकर विपत्ति के समय भी मामा-कुल की विरक्तता के कारण उनको पिता का श्राद्ध आदि करने के लिए एक कौड़ी की सहायता नहीं मिली। अतएव उन्हें अपनी एकमात्र जायदाद साइकल बेचकर किसी तरह यह सब काम करना पड़ा। अब उनके सामने बड़ा कठिन प्रश्न आया छोटे भाई-बहनों का भार उन्हीं पर पड़ा। इस गुरुभार से उनका अवारागर्द मन विद्रोह कर उठा पर साथ ही प्रेम तथा कर्तव्यबोध ने उन्हें विवश किया। वे फिर नौकर होने को तैयार हो गये। इसलिये वे कलकत्ता जाने को तैयार हुए, पर भाई-बहनों को कहाँ छोड़ते? खंजरपुर के जिस मकान में मोतीबाबू रहते थे उसकी मालकिन उनकी छोटी बहिन को बहुत चाहती थी इसलिये वह तो वहीं रही। आसनसोल में एक रिश्तेदार ने एक भाई को अपने पास रखकर तार का काम सिखलाना स्वीकार किया। जलपाईगुड़ी के एक रिश्तेदार ने छोटे भाई को अपने पास रखना स्वीकार किया। कलकत्ते के एक वकील रिश्तेदार के पास शरत् बाबू स्वयं रहकर नौकरी की तलाश करने लगे पर इसके लिए उन्हें वकील साहब के पास आये हुए हिन्दी कागजात का अनुवाद करना पड़ता था तथा रोज जाकर तरकारी खरीदनी पड़ती थी। इस प्रकार मोतीबाबू के मरते ही शरत् परिवार तितरबितर हो गया। कहना न होगा कि अवारागर्दी में अभ्यस्त शरत् बाबू को इस प्रकार वकील साहब का नौकर बनकर रहना पसन्द न आ सकता था। ऐसी निराशाजनक

तथा नीरस परिस्थिति में भी वे कहानी लिखते रहे।

## रोटी की तलाश में बर्मा

जिस वर्ष उनके पिता की मृत्यु हुई थी उसी साल वे कलकत्ता में नौकरी न पाने से निराश होकर फिर से भागलपुर जीवन में लौट आने का स्वप्न देखने लगे। इन दिनों एक घटना हुई जो शरत्चन्द्र की प्रतिभा की परिचायक है तथा यह जाहिर करती है कि उसी जमाने में उनके आस-पास वाले उनके कहानी-लेखन का लोहा मानने लगे थे पर उस जमाने में बंगला में इतनी मासिक पत्रिकाएँ तथा प्रकाशक नहीं थे, आमतौर कहानी लिखने की कोई आर्थिक सम्भावना नहीं समझी जाती थी इसलिये कहानी लिखना बैठे से बेगार भली के अनुसार बेकार श्रेणी की बात समझी जाती थी। उनके कुछ रिश्तेदारों को (जो उन्हीं के समवयस्क या उनसे कम उम्र थे) यह धुन सवार हुई कि एक हारमोनियम खरीदा जाय पर पैसे के नाम पर सब के पास ईश्वर का नाम था। एकाएक इन लोगों के दिमाग में यह ख्याल आया कि वे शरत्चन्द्र से एक कहानी लिखवाएँ, फिर उसे कुन्तलीन की प्रतियोगिता में भेज कर पुरस्कार प्राप्त करें और उससे एक हारमोनियम खरीदें। शरत्चन्द्र की अपनी समझ में अभी उनकी रचना प्रकाशन के योग्य नहीं हुई थी फिर भी मन ही मन इतनी उच्चाकांक्षा थी कि वे अपने नाम से प्रतियोगिता में शामिल होने में हिचक रहे थे। अन्त तक उन्हें अनुरोध रखने के लिए कहानी लिखनी पड़ी पर इस कहानी को जिसका नाम 'मन्दिर' था उन्होंने श्री सुरेन्द्रनाथ गंगोपाध्याय के नाम से भेजा। प्रतियोगिता में यही कहानी प्रथम आई। यही 'मन्दिर' उनके इस युग की अन्तिम रचना है।

इस पहली सार्वजनिक सफलता से भी उनके आस-पास के लोगों में से किसी की आँख नहीं खुली और उनके परिचित तथा रिश्तेदारों में से किसी के दिमाग में यह बात नहीं आई कि यह एक प्रतिभावान व्यक्ति है इसे अन्न-चिन्ता से दूर रखा जाय जिससे कि यह चमककर साहित्य की

सामना कर सके। वे फिर भी वकील साहब के यहाँ नीरस हिन्दी दस्तावेजों का अनुवाद करते रहे तथा सरकारी अर्जी लिखते रहे। अन्त में वे इस जीवन से उकता गये और एक दिन डेक पर रंगून के लिए रवाना हो गये। डेक का भाड़ा देने के बाद उनके पास दो रुपये बचे।

इसके बाद के युग को बहुत से लेखकों ने शरत्चन्द्र के जीवन का अन्धकारमय युग कहकर स्मरण किया क्योंकि इस बीच में अन्न-चिन्ता ने ही उनका सारा ध्यान बँटा दिया पर नतीजे को देखते हुए हमें तो ऐसा मालूम होता है कि इस प्रकार रंगून जाना उनके साहित्य के हक में अच्छा ही हुआ। यदि वे इस प्रकार रंगून जाने पर मजबूर न होते तथा वहाँ बेकारी में भटकते रहते तो हम उनके सर्वश्रेष्ठ उपन्यासों के सर्वश्रेष्ठ दृश्यों से वंचित हो जाते। 'चरित्रहीन' तथा 'श्रीकांत' में रंगून-यात्रा के सजीव दृश्य तो हैं ही साथ ही मनुष्य जीवन की बहुत-सी गुत्थियों पर भी रोशनी डाली गई है। शरत्चन्द्र को तकलीफ हुई, कष्टों ने दुःखों ने अभावों ने उन्हें झिंझोड़ डाला पर इससे उनके साहित्य को लाभ ही पहुँचा उनमें विचित्रता आई, पैनापन आया, काट पैदा हुई, चोट की सामर्थ्य उत्पन्न हुई।

शरत्चन्द्र इस पहली यात्रा के बाद कई बार रंगून आए-गए, हर बार वे डेकयात्री की तरह आते-जाते रहे। इन यात्राओं का मनोज्ञ वर्णन 'चरित्रहीन' तथा 'श्रीकांत' में है। शरत्चन्द्र को मामूली डेकयात्री के सब कष्ट उठाने पड़े य यहाँ तक कि उन्हें क्वारन्टीन में रहना पड़ा पर इस कष्ट-सागर में से उन्होंने जिन रत्नों का उद्धार कर साहित्य को अर्पित किया है वह उक्त दोनों पुस्तकों को पढ़ने वाले जानते हैं। हम इन पुस्तकों की आलोचना करते समय इन बातों की आलोचना करेंगे।

रंगून पहुँचकर शरत् बाबू अपने मौसा अघोरनाथ चट्टोपाध्याय के घर में टिके। वे धनी तथा विद्वान् व्यक्ति थे। उन्होंने शरत् बाबू को देखते ही कहा—अरे तुम नौकरी की फिक्र मत करो पहले यहाँ जरा ढंग से रहो तो फिर मैं तुम्हें किसी दफ्तर में साथ ले जाऊँगा और वहाँ बैठा-

कर ही वापस आऊँगा।—इसमें कोई सन्देह नहीं था कि वे ऐसा ही करते पर इस प्रतिज्ञा को पूरी करने के पहले ही वे मर गये। उनके मरने पर पता चला कि उनके ऐश्वर्य के ढोल के अन्दर पोल थी फलस्वरूप उनकी मौसी भारत लौट आई। मौसी छिपकर ही ऐसा कर सकी क्योंकि अघोर बाबू जिनके कर्जदार थे वे जहाज-घाट पर पहरा रखने लगे। अब शरत्चन्द्र कुछ तो यायावर्ती के प्रेम के कारण और कुछ इस कारण कि अघोर बाबू के महाजन उनको न परेशान करें बर्मा के उत्तर में भाग गये और वहाँ बौद्ध भिक्षु के वेश में यायावर्ती का सुख उठाते रहे।

१६०६ तक उन्हें फिर नौकरी करने की सूझी और उन्होंने 'एक्जामिनर आफ पब्लिक वर्क्स एण्ड एकाउन्ट्स' विभाग में ३०) रु० मासिक पर नौकरी कर ली। वे मणीन्द्रकुमार मित्र नामक एक अध्ययनशील युवक के साथ रहते थे। कहा जाता है इनके साथ शरत् बाबू ने पाश्चात्य दर्शन का अध्ययन किया। समय अच्छा बीत रहा था पर अकस्मात् रंगून में ताऊन का प्रकोप हुआ। उनके साथी तो रंगून से भागकर किसी गाँव में रहने लगे पर वे छोटे नौकर थे वे कैसे जा सकते थे? अतएव वे अपने दफ्तर के बाबुओं के मेस (mess) में आकर रहने लगे। यहाँ इनको बमचन्द्र दे नामक एक साथी मिला। वे हुजरत बड़ी ही अजीब प्रकृति के थे। एक तरफ तो वे बड़े विद्वान् थे और उनके लेख अंग्रेजी मासिक पत्रों में छपते थे दूसरी ओर वे पक्के शराबी तथा दुश्चरित्र थे। शरत्चन्द्र ने इनकी विद्या से आकृष्ट होकर इनके साथ घनिष्ठता स्थापित की थी पर इनके साथ वे भी शराब पीने-पीने लगे। इस विषय में सभी सहमत हैं कि शरत्चन्द्र ने इन दिनों बहुत ही उच्छृंखल जीवन बिताया। इसी जमाने के बाद ही शरत्चन्द्र ने 'चरित्रहीन' लिखा था उसमें नायिका का स्थान मेस की एक नौकरानी को दिया गया है तथा मेस-जीवन का विशद वर्णन है। इस उपन्यास का अन्यतम नायक सतीश है जो मेस में रहता है और एक चरित्रहीन का जीवन बिताता है। पता नहीं इस उपन्यास को लिखने में शरत्चन्द्र ने अपने जीवन के इस अंश का कितना भाग लिया।

बंगचन्द्र के बाद को ताऊन में मरे। जिस समय बंगचन्द्र के ताऊन से पीड़ित होकर मृत्युशय्या पर पड़े थे उस समय शरत् बाबू ने खाना पीना छोड़कर उनकी बड़ी सेवा की। 'श्रीकांत' में एक व्यक्ति ताऊन से पीड़ित होकर श्रीकांत की ही गोद में सिर रखकर मरता है स्पष्ट है कि यह दृश्य उन्होंने अपने जीवन से ही लिया था। बंगचन्द्र की मृत्यु से शरत्बाबू को इतना शोक हुआ कि उन्होंने संगीत की चर्चा भी छोड़ दी।

इसी के बाद अत्यन्त रोमांटिक ढङ्ग से एक लड़की से उनकी शादी हुई। शरत्चन्द्र जिस मकान मे रहते थे उसके नीचे की मंजिल में एक बंगाली मिस्त्री रहता था। जाति से यह मिस्त्री ब्राह्मण था पर उसके यहाँ जो संगी-साथी संध्या समय जमा होते थे वे रंगून भर के छंटे हुए बंगाली लफंगे थे। यह लोग बड़ी रात तक गांजा शराब आदि पीते तथा हुल्लड़ मचाते। मिस्त्री की एक विवाहयोग्य कन्या थी इसके अलावा उसके और कोई न था। इस बेचारी लड़की को इन लफंगों का यह सा वह सा हुक्म मानना पड़ता था। घर का सब काम-काज भी वही सँभालती थी फिर भी जब-तब उसका बाप चाय-पान से बहाने पर उसे पीट डालता था।

शरत्चन्द्र सन्ध्या के बाद घर से निकल जाते थे अक्सर अधिक रात गए ही लौटते थे। एक दिन वे ऐसे ही लौटे तो अपने कमरे के किवाड़े को भीतर से बन्द पाया। न मालूम किसने भीतर से किवाड़ों को बन्द कर रखा था। वे जभी जोर-जोर से किवाड़ों पर धक्का मारने और चिल्लाने पर जब उसके अन्दर से किसी दुबले के बदले रोती-बिलखती तथा थर-थर काँपती हुई मिस्त्री की लड़की निकली तो उन्हें बड़ा आश्चर्य हुआ। वजह पूछने पर लड़की ने बताया कि मिस्त्री ने पचके शराबी घोषाल बुड्ढ से उसकी शादी तय कर दी है और इसकी बाबत कुछ रुपये भी पेशगी ले लिये हैं। आज नशे के आवेश में घोषाल बुड्ढ उसे अपनी पत्नी कहकर उससे लिपटने पर तैयार हुआ तो उसने डर के मारे इस कमरे में घुसकर उसे भीतर से बन्द करके आत्मरक्षा की। लड़की शरत्चन्द्र के पैरों पर गिर पड़ी और रोने लगी। शरत्चन्द्र ने कहा—आज तुम यहीं सोओ

कल सवेरे इसकी जो कुछ भी हो उचित व्यवस्था ही की जायगी—यह कहकर वे उसे पीव घर से रात भर के लिए निकल गये।

दूसरे दिन जब शरत्‌बाबू मिस्त्री से कहने गये कि भाई यह घर तुम्हारी बेटी के लायक नहीं तो उसने कहा—मुझे इससे अच्छा नहीं मिलता तुम्हें इतना दर्द है तो तुम ही इससे शादी कर लो न'

अब शरत्‌चन्द्र कायल हो गये और इसी ब्राह्मण मिस्त्री की लड़की से उनकी शादी हुई। वे इस विवाह से सुखी भी हुए और एक पुत्र भी हुआ। रंगून में जब फिर प्लेग आया तो शरत्‌चन्द्र की यह स्त्री पुत्र के साथ उसकी शिकार हो गई। इस प्रकार शरत्‌चन्द्र फिर एक बार अवाराशर्द हो गए। उन्होंने बाद को एक और शादी की थी। यह शादी हिरण्मयी देवी नाम की एक गरीब ब्राह्मण महिला के साथ बंगाल में ही हुई थी पर यह बात बहुत ही कम लोग जानते थे इसलिए अक्सर शरत् बाबू को अविवाहित ही समझते थे। कोई-कोई तो बाद को सभा आदि में उन्हें जितेन्द्रिय और ब्रह्मचारी आदि कहते थे तब वे मुस्करा कर रह जाते थे।

शरत् बाबू अक्सर अपनी साल दो साल में कलकत्ता ही जाते थे। कभी नौकरी से तो माह की छुट्टी लेकर जाते तो कभी छ माह की। इधर उनकी नौकरी में बराबर तरक्की होती रही। पहली और दूसरी शादी के बीच वे किसी समय एक उच्चकुलीन ब्राह्मण के होटल में टिके रहे। इस होटल का नाम था ठाकुरेर होटल था। वहाँ मिस्त्री मेमी के साथ खाना खाते थे। इस ठाकुर के इस होटल को शरत् बाबू ने 'श्रीकांत' में स्मरण किया है।

शरत् बाबू के एक मित्र ने लिखा है कि दिन का तो कोई शुमार नहीं रात को वे छः-सात दफे उठकर तम्बाकू भर भरकर पीते थे। 'चरित्रहीन' का सतीश तथा 'श्रीकांत' में स्वयं श्रीकांत इसी प्रकार तम्बाकू के गुलाम हैं। बर्मा में रहते समय शरत् बाबू पर होम्योपैथी का भूत अक्सर सवार हो जाता था। कहते हैं वे दवाइयों का पूरा बक्स रखते थे और लोगों की चिकित्सा करते थे। उनके भक्तों ने लिखा है कि उनकी

चिकित्सा से बहुत से लोग बड़ी जलट व्याधियों से मुक्त होकर उनको दुआ देते चले जाते थे। 'बामुनेर मेये' के प्रियनाथ चरित्र में शरत् बाबू ने शौकीन होम्योपैथों का अच्छा मज़ाक उड़ाया है। प्रियनाथ बाबू तो इस पर मरते थे कि लोग उनसे चिकित्सा करायें। इसके अतिरिक्त उनके लिए जीवन में कुछ स्पृहणीय नहीं था। 'चरित्रहीन' का सतीश तो होम्योपैथी के कालेज का छात्र ही था यानी वह इसी बहाने कलकत्ते में रहकर मनमाना उच्छृंखल जीवन बिताता था।

शरत्चन्द्र बर्मा में रहते समय बंगालियों के स्वभाव के अनुसार केवल बंगालियों से ही नहीं मिलते थे बल्कि बर्मावासियों के यहाँ भी उनका आना-जाना रहता था। शरत्चन्द्र की एक प्रसिद्ध कहानी का नाम 'छवि' (तसवीर) है इस कहानी का नायक एक बर्मी चित्रकार बा थिन है। यह बा थिन शरत्चन्द्र की कल्पना से उत्पन्न नहीं बल्कि वास्तविक जीवन में सशरीर और बा थिन के ही नाम से मौजूद थे। इस बा थिन से शरत्चन्द्र की बड़ी मित्रता थी। शरत् बाबू श्री सतीशचन्द्र दास को अपने साथ बा थिन के घर ले गये थे यह वास्तविक बा थिन भी चित्रकार था। सतीश बाबू ने शरत् बाबू को उन्हीं के परिवार के एक सदस्य की तरह बातचीत करते तथा आगे-पीछे पाया। सतीश बाबू ने इतना तो लिख मारा पर कहानी के साथ और किन-किन बातों में वास्तविक बा थिन का सामंजस्य है यह नहीं लिखा। ऐसे जीवनी-लेखकों को इन छोटों से क्या मतलब उन्हें तो केवल दुनिया का यह दिखलाना था कि वे शरत् बाबू को जानते थे। अस्तु।

शरत्चन्द्र बर्मा में कई जगह रहे। एक मकान में रहते समय पड़ोस में रहने वाले एक परिवार से उनका घनिष्ठ परिचय हुआ। इस परिवार में केवल दो व्यक्ति थे एक मिस्त्री और उसकी बहू। एक बार मिस्त्री की स्त्री भयंकर बीमारी में पड़ी तो शरत् बाबू की चिकित्सा तथा कोशिश से वह बच गई। इस समय से ये दोनों शरत् बाबू को पिता के समान मानने लगे। शरत् बाबू भी इन्हें बेटे तथा बहू की तरह मानते

थे। शरत् बाबू यही समझते थे कि वे विवाहित पति-पत्नी हैं पर एक दिन जब वे अपने मकान में लड़ रहे थे तो शरत् बाबू ने सब सुन लिया और वे असली बात जान गये। थोड़ी ही देर में मिस्त्री ने शरत् बाबू को जैसे गवाह मानकर कहा—'देखिए बाबा ठाकुर, मैंने इसकी इतनी अधिक सेवा करके इसे आराम दिया और यह दिन-रात हमारे साथ झाँय-झाँय लगाये रहती है। यदि ऐसा ही करना था तो तुमने हमारे साथ 'कंठीबदल' क्यों किया।'' यहाँ बता दिया जाय कि वैष्णवों में 'कण्ठीबन्ध' एक तरह की सगाई है, इसे शादी की मर्यादा प्राप्त नहीं।

मिस्त्री की स्त्री यों शरत् बाबू के सम्मुख कुछ अधिक नहीं बोलती थी पर जब मिस्त्री ने इस प्रकार उसके रहस्य का भंडाफोड़ कर दिया तो वह भी तिलमिला गई और तेज होकर बोली—बाबा ठाकुर के सामने तुम तो दूध के धुले भले मानुस बन रहे हो पर भलेमानुस बनकर मेरा सर्वनाश किसने किया? अब ऐसा बन रहे हो जैसे सारा दोष मेरा ही है? कम मौसी नहीं होती तो मुझे मार ही बैठते। भला मैं क्यों मार खाऊँगी! फिर बात-बात में कहते हैं निकल जा। असली बात तो यह है कि इनकी ब्याही आई है, वही खबर पाकर ये बेताब हो रहे हैं कि कब उससे मिलूँ और फिर मज़ा करूँ। जहाँ जाना हो जाओ, मैं नहीं रहूँगी—कहकर वह रोने लगी।

उस समय तो सब ठप हो गया पर मिस्त्री जो कारखाना जाने के नाम से निकला तो फिर नहीं लौटा। जिस बात से वह डरती थी वही हुई। बहुत दिन बर्मा में रहने के बाद वह स्त्री काशी चली गई। गिरीन्द्र बाबू का अनुमान है कि इसी स्त्री को लेकर 'विराज-बहू' लिखा गया।

रंगून के प्रवासी बंगाली साहित्य-चर्चा करने बर्मा नहीं आते। सच बात तो यह है कि रुपया कमाने के अलावा इन लोगों का कोई काम नहीं होता था फिर भी यहाँ एक क्लब था 'बंगाल सोशल'। वहाँ कभी कभी साहित्यिक आलोचना भी होती थी पर शरत् बाबू हमेशा यह कहकर कि वे इन सब बातों को समझ नहीं पाते अलग ही रहते थे।

चिकित्सा से बहुत से लोग बड़ी उत्कट व्याधियों से मुक्त होकर उनको दुआ देते चले जाते थे। 'बामुनेर मेये' के प्रियनाथ चरित्र में शरत् बाबू ने शौकीन होम्योपैथों का अच्छा मजाक उड़ाया है। प्रियनाथ बाबू तो इस पर मरते थे कि लोग उनसे चिकित्सा करायें। इसके अतिरिक्त उनके लिए जीवन में कुछ स्पृहणीय नहीं था। 'चरित्रहीन' का सतीश तो होम्योपैथी के कालेज का छात्र ही था यानी वह इसी बहाने कलकत्ते में रहकर मनमाना उच्छृंखल जीवन बिताता था।

शरत्चन्द्र बर्मा में रहते समय बंगालियों के स्वभाव के अनुसार केवल बंगालियों से ही नहीं मिलते थे बल्कि बर्मावासियों के यहाँ भी उनका आना-जाना रहता था। शरत्चन्द्र की एक प्रसिद्ध कहानी का नाम 'छवि' (तसवीर) है इस कहानी का नायक एक बर्मी चित्रकार बा थिन है। यह बा थिन शरत्चन्द्र की कल्पना से उत्पन्न नहीं बल्कि वास्तविक जीवन में सशरीर और बा थिन के ही नाम से मौजूद थे। इस बा थिन से शरत्चन्द्र की बड़ी मित्रता थी। शरत् बाबू श्री सतीशचन्द्र दास को अपने साथ बा थिन के घर ले गये थे यह वास्तविक बा थिन भी चित्रकार था। सतीश बाबू ने शरत् बाबू को उन्हीं के परिवार के एक सदस्य की तरह बातचीत करते तथा खाते-पीते पाया। सतीश बाबू ने इतना तो लिख मारा पर कहानी के साथ और भिन्न-भिन्न बातों में वास्तविक बा थिन का सामंजस्य है यह नहीं लिखा। ऐसे जीवनी-लेखकों को इन बातों से क्या मतलब उन्हें तो केवल दुनिया को यह दिखलाना था कि वे शरत् बाबू को जानते थे। अस्तु।

शरत्चन्द्र बर्मा में कई जगह रहे। एक मकान में रहते समय पड़ोस में रहने वाले एक परिवार से उनका घनिष्ठ परिचय हुआ। इस परिवार में केवल दो व्यक्ति थे एक मिस्त्री और उसकी बहू। एक बार मिस्त्री की स्त्री भयंकर बीमारी में पड़ी तो शरत् बाबू की चिकित्सा तथा कोशिश से वह बच गई। उस समय से ये दोनों शरत् बाबू को पिता के समान मानने लगे। शरत् बाबू भी इन्हें बेटे तथा बहू की तरह मानते

थे। शरत् बाबू नहीं समझते थे कि वे विवाहित पति-पत्नी हैं पर एक दिन जब वे अपने मकान में लड़ रहे थे तो शरत् बाबू ने सब सुन लिया और वे असली बात जान गये। थोड़ी ही देर में मिस्त्री ने शरत् बाबू को जैसे गवाह मानकर कहा—"देखिये बाबा ठाकुर मैंने इसकी इतनी अथक सेवा करके इसे आराम दिया और यह दिन-रात हमारे साथ झाँय लगाये रहती है। यदि ऐसा ही करना था तो तुमने हमारे साथ 'कंठीबदल' क्यों किया।" यहीं बता दिया जाय कि वैष्णवों में 'कंठीबदल' एक तरह की सगाई है इस शादी की मर्यादा प्राप्त नहीं।

मिस्त्री की स्त्री यों शरत् बाबू के सम्मुख कुछ अधिक नहीं बोलती थी पर जब मिस्त्री ने इस प्रकार उसके रहस्य का भंडाफोड़ कर दिया तो वह भी तिलमिला गई और तंग होकर बोली—बाबा ठाकुर के सामने तुम तो दूध के धुले भले मानुस बन रहे हो पर भलेमानुस बनकर मेरा सत्यानाश किसने किया? अब ऐसा बन रहे हो जैसे सारा दोष मेरा ही है? कम सीधी नहीं होती तो मुझे मार ही बैठते भला मैं क्यों मार खाऊँगी! फिर बात-बात में कहते हैं निकल जा। असली बात तो यह है कि इनकी ब्याही आई है वही खबर पाकर ये बेताब हो रहे हैं कि कब उससे मिलूँ और फिर मस्त बनूँ। जहाँ जाना हो जाओ मैं नहीं रहूँगी—कहकर वह रोने लगी।

इस समय तो सब ठप हो गया पर मिस्त्री जो कारखाना जाने के नाम से निकला तो फिर नहीं लौटा। जिस बात से वह डरती थी वही हुई। बहुत दिन बर्मा में रहने के बाद यह स्त्री काशी चली गई। सतीश बाबू का अनुमान है कि इसी स्त्री को लेकर 'विराज-बहू' लिखा गया।

रंगून के प्रवासी बंगाली साहित्य-चर्चा करने बर्मा नहीं आते। सच बात तो यह है कि रुपया कमाने के अलावा इन लोगों का कोई काम नहीं होता था फिर भी यहाँ एक क्लब था 'बेंगाल सोशल'। यहाँ कभी कभी साहित्यिक आलोचना भी होती थी पर शरत् बाबू हमेशा यह कहकर कि वे इन सब बातों को समझ नहीं पाते अलग ही रहते थे।

एक बार इस क्लब में स्त्री-चरित्र के मनोविज्ञान पर बातचीत हो रही थी तो शरत् बाबू ने ताव में आकर कह दिया कि यह ऐसा नहीं वैसा है और उसके प्रमाण में बहुत से यूरोपीय लेखकों को उद्धृत किया। लोग सुनकर दंग हो गये और कहा कि क्लब के आगामी अधिवेशन के लिए वे इस विषय पर कुछ लाएँ। वे राजी तो हो गए, पर उन पर वज्र टूट पड़ा। वे सभा के सामने आते घबड़ाते थे। अगले अधिवेशन का दिन आया तो शरत् बाबू नदारद। सभा के उद्योक्ता उनके घर गये तो वहाँ भी बड़ी मुश्किलों से उनका लेख 'नारीर इतिहास' मिला। इस लेख को पढ़ने में दो घंटे लगे। जब यह लेख समाप्त हुआ तो लोग धन्य-धन्य कहने लगे। दुःख का विषय है कि यह लेख बाद को घर में आग लगने से नष्ट हो गया। साथ ही और भी रचनाएँ तथा उनके अंकित चित्र भी इस अग्निकाण्ड में स्वाहा हो गये।

शरत्चन्द्र बर्मा में कोई चौदह साल के लगभग रहे।

यों तो भागलपुर में ही उन्होंने लिखना शुरू किया था पर बर्मा की भूमि में ही उनका तीसरा ज्ञाननेत्र खुला और वे शरत्चन्द्र हुए। अब लोग इस विषय में एकमत हैं कि शरत् बाबू का पहला उपन्यास 'शुभदा' है जो मृत्यु के बाद प्रकाशित हुआ है। शरत् बाबू जब तक जीवित रहे, उन्होंने इसे प्रकाशित नहीं होने दिया पर अनुसन्धानकारियों की ज्ञान-पिपासा दुर्दम्य होती है वह लेखक की कला का पर्दा उठाकर ही सन्तुष्ट नहीं होती बल्कि उसकी तह में भी पहुँचना चाहती है। प्रकृति भी गौरव-साधना करती है कली के अन्दर पुष्प बढ़ता है जब वह देखने योग्य हो जाता है प्रकृति उसे खोलकर रख देती है किन्तु मनुष्य बड़ा ही कौतूहली है! वह गर्भ से निकालकर भ्रूण को देखता है कोरक से निकालकर पुष्प को देखता है उसी प्रकार जब शरत् बाबू न रहे तो 'शुभदा' प्रकाशित हुआ। यह १८९८ के २० जून से २२ सितम्बर तक लिखा गया था। इस उपन्यास में शरत् बाबू की कला अपरिपक्व अवस्था में पाठक के सम्मुख आती है। शुभदा नायिका का नाम है। शरत् बाबू

म एक सती-साध्वी की तरह चित्रित किया है। बाद को हम 'चरित्रहीन' में सुरबाला के रूप में एक स्वीकृत सती को तथा 'श्रीकान्त' में अभया दीदी के रूप में एक अस्वीकृत सती को शरत्-साहित्य में पाते हैं। इन चरित्रों से इन उपन्यासों की कथा पुष्ट ही हुई है आहत नहीं हुई पर सुभदा के कट्टरपन से उपन्यास का नाश ही हुआ है। फिर भी सुभदा के चरित्र में एक प्रवृत्ति का अस्तित्व स्पष्ट है। उपन्यास का कथानक शिथिल और घटना-परम्परा सुग्रथित नहीं है पर इन अपूर्णताओं के बीच में भी हम शरत्चन्द्र की प्रतिभा के 'चीकने पात' देख पाते हैं। नारी-जीवन के चित्रकार मूक नारी को भाषा-दान करने वाले शरत्चन्द्र का हम यहीं से पा जाते हैं। उनके बाद के उपन्यासों में हम वेश्याओं का जो तिरस्कारहीन बल्कि सहानुभूतिपूर्ण चित्रण पाते हैं उसका श्रीगणेश यहीं हो चुका है। कात्यायनी का चित्रण वे पूरी सहानुभूति से तो नहीं पर ऊपरी तटस्थता से करते हैं। 'सब जानना सब कुछ क्षमा करना है' इस फ्रेन्च कहावत के अनुसार वे कात्यायनी का चित्रण करते हैं। वे उसे अमानुषी राक्षसी के रूप में नहीं बल्कि समाज की चक्की के बीच पिसती हुई एक अभागी स्त्री के रूप में पेश करते हैं। कात्यायनी राक्षसी तो है ही नहीं वह पीड़ित लोगों के साथ सचमुच सहानुभूति करती है केवल यही नहीं उन्हें आर्थिक सहायता भी देती है। बाद को किरणमयी और कमल के मुँह से जो बौद्धिक मन्तव्य हम सुनते-सुनते एक साथ ही कला और बौद्धिकता का आनन्द पाता है सुभदा में भी उसका पुट है। शरत् बाबू के विकास की यह पहली कड़ी हमारे हाथ लगते ही से यह स्पष्ट हो जाता है कि शरत् बाबू का क्रमविकास कैसे हुआ। भ्रूण रूप में हम सुभदा में सारे शरत्-साहित्य को पाते हैं कम से कम उनकी महत्त्वपूर्ण प्रवृत्तियों को तो पाते ही हैं। मध्यवित्त श्रेणी की नारी के दुखदर्दों के चित्रकार शरत् बाबू प्रारम्भ से ही ऐसे रहे, यह द्रष्टव्य है। सुभदा की समालोचना करते समय यह स्मरण रहे कि यह पुस्तक १८९८ में लिखी गई थी।

## सोलहों आना साहित्यिक जीवन

शरत्चन्द्र जिस समय बर्मा गये थे उस समय वे अपनी रचनायें (जिनको उन्होंने तब तक लिखा था) एक मित्र के पास रख गए। उस मित्र के पास कुछ साहित्यिक आया-जाया करते थे जिनमें उस जमाने की प्रसिद्ध पत्रिका 'भारती' से सम्बद्ध श्री सौरीन्द्रमोहन मुखोपाध्याय भी थे। इन रचनाओं में शरत् बाबू का सुप्रसिद्ध उपन्यास 'बड़दिदि' (बड़ी दीदी) भी था। शरत् बाबू को बिना बताये हुए ही तथा उनकी अनुमति बिना प्राप्त किये ही सौरीन्द्र बाबू ने इस उपन्यास को धारावाहिक रूप से प्रकाशित करना शुरू कर दिया। यहाँ तक कि जब प्रकाशित होना शुरू हो गया तब भी शरत् बाबू को न तो कोई सूचना ही दी गई न पत्रिका की कोई प्रति ही भेजी गई।

सन् १३१४ के बैशाख में (१९०७) 'भारती' में 'बड़ी दीदी' की पहली किस्त निकली तभी लोग उसे पढ़कर आश्चर्य में पड़ गए। लिखने की परिपाटी इतनी सुन्दर थी, कहानी इतनी गठी हुई थी और भाषा इतनी मनोज्ञ थी कि लोग हैरान हो गये कि यह लेखक कौन है। पहली किस्त में किसी का नाम नहीं निकला था। साहित्यमर्मज्ञों ने इसको पढ़कर यही तय किया कि हो न हो नाम छिपाकर रवीन्द्रनाथ ने ही इसे लिखा होगा। उन दिनों मजुमदार लाइब्रेरी से कवीन्द्र रवीन्द्रनाथ के सम्पादकत्व में 'बङ्गदर्शन' नव पर्याय निकल रहा था। मजुमदार लाइब्रेरी के मालिक श्री शैलेश मजुमदार ने रवीन्द्रनाथ से शिकायत करते हुए कहा कि आपने इतनी उत्कृष्ट रचना हमारी पत्रिका में न देकर 'भारती' को क्यों दी? रवीन्द्रनाथ ने इस पर बड़ा आश्चर्य प्रकट किया क्योंकि अपनी जान में तो उन्होंने 'भारती' को कोई लेख नहीं दिया था। उन्होंने 'भारती' से उस अंश को पढ़ा, रचना वास्तव में बड़ी सुन्दर थी, उन्होंने उसकी प्रशंसा की पर श्री मजुमदार को साफ बता दिया कि वे इसके लेखक नहीं। अन्त में चलकर 'भारती' में लेखक का नाम शरत्चन्द्र

चट्टोपाध्याय प्रकाशित हुआ था।

इसके साढ़े पाँच साल बाद शरत्चन्द्र को इस उपन्यास के धारावाहिक रूप में प्रकाशित होने का पता मिला। इस बीच शरत्चन्द्र की साधना बराबर जारी तो रही पर वह एक भूत की तरह ही रही। जगत को उनकी विपुल शक्ति का कुछ पता न मिला था। श्री सौरीन्द्र मोहन ने इस सम्बन्ध में लिखा है

"१३१६ साल (बंगला सन्) की पूजा अर्थात् दशहरे के समय शरत्चन्द्र अकस्मात् आ धमके और कहा—मुझे जरा 'बड़ी दीदी' कहानी पढ़ने दो।

मुझे अच्छी तरह याद है उस दिन कालीपूजा थी। दिन के दस बजे थे हमारे घर के बाहर के कमरे में शरत्चन्द्र, उपेन्द्रनाथ तथा मैं था। बँधी हुई भारती में से मैं 'बड़ी दीदी' पढ़ने लगा। शरत्चन्द्र लेटकर सुनने लगे। बीच-बीच में उठ बैठते थे। मेरे हाथों को दबाकर वह कहते—पढ़ते रहो।

उनकी आँखों में आँसू आ गया भरा हुआ था। शरत्चन्द्र ने मुग्ध विस्मयभरित दृष्टि से कहा—यह मेरी रचना है? इसे मैंने लिखा है?

मानो उनको विश्वास ही नहीं होता था। हम लोगों ने उनको कहा—लिखना छोड़कर तुमने कितना बड़ा अपराध किया है जानते हो।

शरत्चन्द्र उदासीन होकर बड़ी देर तक बैठे रहे फिर बोले—अच्छा लिखोगे लिखना छोड़कर मैंने अच्छा नहीं किया रचना अच्छी है मेरा ही हृदय छिन गया था—उन्होंने रुककर कहा—भी समय कितना है बहुतों को देना पड़ता है। शरीर भी ठीक नहीं है।

उन्होंने यह भी कहा—यदि मैं और अधिक दिन रंगून रहा तो मुझे तपेदिक हो जायगा।

मैंने कहा—बहरहाल तीन महीने की छुट्टी लेकर चले आओ तो समय तुम्हें मिले इसकी हम लोग व्यवस्था करेंगे।

शरत्चन्द्र ने कहा—देखूँगा।

इसके कोई तीन महीने बाद वे फिर कलकत्ता आये। 'यमुना' के सम्पादक फणीन्द्रनाथ पाल ने मुझ से कहा कि वे 'यमुना' को अपने जीवन का सर्वस्व बनाना चाहते हैं और इसके लिए मेरा सहयोग चाहिये।

शरत्चन्द्र के आने पर मैंने उनसे कहा—साहब 'यमुना' के लिए तुम्हें लिखना पड़ेगा।

शरत्चन्द्र ने कहा—'चरित्रहीन' उपन्यास लिख रहा हूँ पढ़कर देखना चलेगा कि नहीं—उपन्यास का कोई एक तृतीयांश उन्होंने मुझे दिया। मैंने पढ़ा। शरत्चन्द्र ने कहा—नायिका किरणमयी है वह तो अभी तुम्हारे सामने आई ही नहीं बड़ी भारी पुस्तक होगी।

यह तय पाया कि 'चरित्रहीन' यमुना में छपेगा। उन्होंने अनिला देवी उपनाम से 'नारीर मूल्य' मुझ देकर कहा—मेरा असली नाम बिना प्रकाशित किये ही इसे छापो।

ऐसा ही किया गया। फिर उन्होंने एक कहानी दी 'रामेर सुमति' फिर बैसाख की 'यमुना' के लिए एक कहानी दी 'पथनिर्देश'।"

सौरीन्द्र बाबू के दिये हुए इस विवरण में जरा सी त्रुटि रह गई वह यह कि 'चरित्रहीन' उपन्यास की पाण्डुलिपि दूसरी जगह से लौटाई जाकर 'यमुना' में छपने के लिये आई। उन दिनों बँगला के सुप्रसिद्ध नाटककार श्री द्विजेन्द्रलाल राय के संपादकत्व में 'भारतवर्ष' बड़े ठाट से निकल रहा था। इसके प्रकाशक भली से लेखा सी अच्छे भाते थे। इस प्रकाशन के उद्योक्ताओं में प्रमथनाथ भट्टाचार्य नामक एक व्यक्ति थे उन्होंने 'भारतवर्ष' प्रकाशन के काम में दिलचस्पी लेते ही मुजफ्फरपुर के अपने पुराने मित्र शरत बाबू को स्मरण किया। साथ ही द्विजेन्द्रलाल ने जब 'यमुना' में 'रामेर सुमति' शीर्षक कहानी पढ़ी तो उन्होंने प्रमथ से कहा—तुम इनकी रचनाओं को 'भारतवर्ष' के लिए पाने की चेष्टा करो ये भविष्य में बँगला साहित्य में एक नये युग की सूचना करेंगे।

प्रमथ बाबू पहले से ही शरत् बाबू की तलाश में थे जब द्विजेन्द्र बाबू

ने भी कहा तो उन्होंने शरत् बाबू को पत्र लिखवा कर रंगून से 'चरित्रहीन' की भारी पांडुलिपि मँगवा ली। द्विजेन्द्रलाल उन दिनों काव्य में व्यभिचार के विरुद्ध आन्दोलन कर रहे थे इसलिये एक ऐसे उपन्यास को जिसका नाम ही चरित्रहीन हो और जिसमें शुरू से ही एक मेस की नौकरानी नायिका के रूप में सामने आई हो उन्होंने अपने सम्पादन में 'भारतवर्ष' में प्रकाशित करने से इनकार कर दिया। कहना न होगा ऐसा कर द्विजेन्द्रलाल ने भले ही अपनी कथित सुनीतिपरायणता को अच्छा में पुष्पांजलि दी हो पर अपनी साहित्यमर्मज्ञता पर हमेशा के लिए एक अमिट धब्बा लगाया। हम आगे 'चरित्रहीन' की विस्तृत आलोचना करेंगे पर द्विजेन्द्रलाल ने जिस मेस की नौकरानी को देखकर मुँह बिचका लिया वह केवल नाम से ही सावित्री नहीं सचमुच सावित्री थी। कथित भले घरों में उससे अच्छी निष्पाप स्त्री कहाँ मिलती है? चरित्रहीन के अनुसार भी वह अच्छे कुल की सुशीला सुशिक्षिता लड़की थी फिर भी यदि द्विजेन्द्र बाबू ने उसे केवल इस कारण किसी उपन्यास में प्रमुख भाग लेने के अयोग्य समझा कि उसने दुर्दशा में पड़कर नौकरानी का काम करके साधु उपाय से पेट पाला था तो यह उनका अहमकपन था ऐसा कहने में मुझे कोई हिचकिचाहट नहीं है। द्विजेन्द्रलाल ने ऐसा नीतिवाद के कारण कितना और वर्गबोध (Class consciousness) के कारण कितना किया यह विचारणीय है। उच्च तथा मध्यवित्त श्रेणी की शान्ति के ठेकेदारों को यह अवश्य ही नागवार है कि एक ऐसी श्रेणी की जिसको वे निम्न श्रेणी समझते हैं लड़की उनके उपन्यासों में भी एक नौकरानी के सिवा अधिक व अधिक गम्भीर के अलावा किसी और रूप में आये। शोषण या शोषण में सहायता के कारण प्राप्त धन के ताव में वे दूसरों को नैतिक रूप से भी अपने से छोटा समझते हैं। अस्तु।

इस प्रकार शरत् बाबू का 'चरित्रहीन' 'भारतवर्ष' द्वारा ठुकराया जाकर 'यमुना' में गया था। बहुतों के मत से यही इनकी सर्वश्रेष्ठ रचना है और इसी की यह दुर्गति हुई। फिर द्विजेन्द्र बाबू जैसे साहित्यमर्मज्ञ के

हाथों ऐसा होना और भी आश्चर्यजनक है। जब चरित्रहीन उपन्यास प्रकाशित हुआ तो शरत् बाबू पर बहुत गालियाँ पड़ीं पर इसी गाली की बौछार से वे प्रसिद्ध हो गये। 'भारतवर्ष' वालों ने इस प्रकार 'चरित्रहीन' लौटा तो दिया पर उसकी प्रतिभा के लोहे ने शीघ्र ही उन्हें मजबूर किया और वे अब की बार फिर शरत् बाबू के किवाड़ खटखटाने पहुँचे तो उन्हें एक छोटा उपन्यास 'विराज-बहू' मिला। शरत् बाबू को रुपयों की जरूरत थी उन्होंने 'विराज-बहू' उपन्यास तथा 'रामेर सुमति' 'बिन्दुर छेले' और 'पथनिर्देश' इन तीनों कहानियों को पुस्तक रूप में प्रकाशित करने का कापीराइट नाममात्र मूल्य १००) रुपये में 'भारतवर्ष' प्रकाशक के हाथ बेच दिया। गुरुदास चट्टोपाध्याय एण्ड सन्स ने (जिन्होंने इनको खरीदा) मरन् बाद की इन्हीं पुस्तकों के जरिये ऐसे कितने १००) बनाए होंगे पर शरत् बाबू को १ ) ही मिले। प्रकाशक और लेखक का सम्बन्ध पूँजीपति और मजदूर का ही सम्बन्ध है, इस उदाहरण से यही बात पुष्ट होती है।

शरत्चन्द्र ने 'यमुना' में बहुत दिनों तक बड़ी दिलचस्पी ली। हेमेन्द्र कुमार राय का कहना है कि यह वैसी ही बात है कि एक झरना जब तक पत्थर से बन्द पड़ा रहा पड़ा रहा पर ज्यों ही उसका मुँह खोल दिया गया वह बहा फिर क्यों किसी की सुनता। उस जमाने में उन्होंने रंगून से जो पत्र लिखे उनको पढ़ने से ज्ञात होता है कि सम्पादक से कहीं बढ़कर उन्हीं को 'यमुना' की चिन्ता सताती थी। वे अकेले ही लिखकर नन्हीं-सी 'यमुना' के सारे पन्ने रंग देना चाहते थे। कहा जाता है एकाध बार उन्होंने ऐसा किया भी अर्थात् कविता के अलावा उन्होंने 'यमुना' की सारी भरती स्वयं ही भर दी। कई बार उन्होंने गुमनाम समालोचना भी लिखी। हेमेन्द्र बाबू के अनुसार 'नारीर लेखा' तथा 'कानकाटा' उन्हीं का लिखा हुआ था। इन समालोचनाओं की सूक्ष्म चोट ने उन दिनों धूम मचा दी थी। 'रामेर सुमति' के अतिरिक्त 'बिन्दुर छेले' तथा 'पथनिर्देश' भी 'यमुना' में ही प्रकाशित हुए थे। इसके अतिरिक्त 'परिणीता' 'चन्द्रनाथ' तथा 'चरित्रहीन' भी यमुना में ही निकले। 'चरित्रहीन' को एम० सी सरकार ने

पहली बार पुस्तक रूप में प्रकाशित किया। इस साढ़े तीन रुपये की पुस्तक की पहले ही दिन चार सौ कापियाँ बिक गईं, बाद को उनकी पुस्तक 'पथेर दाबी' एक ही दिन में इससे अधिक बिकी।

इसके बाद तो शरत्चन्द्र का जीवन एक सफल साहित्यिक का जीवन है। वे साहित्य के छोटे से तालाब की छोटी मछली नहीं रह गए अब उनको विचरण के लिए विराट सागर के विपुल विस्तार की जरूरत पड़ी इसलिए यमुना का छिछला पानी उन्हें बाँधकर न रख सका और वे स्वच्छन्द होकर विश्वसाहित्य के महासागर में विहार करने लगे।

रंगून में शरत् बाबू का स्वास्थ्य गिर रहा था डाक्टरों ने कहा रंगून छोड़ दीजिये।

जब शरत् बाबू बर्मा में क्लर्क थे तो उनका जीवन कैसा था और दफ्तर में उनको किस प्रकार दुख मिलता था, उसका कुछ विवरण रंगून से लिखे हुए ३१-५-१९१३ ई० के एक पत्र में इस प्रकार मिलता है। उन्होंने उस पत्र में लिखा था— 'पहले मैं अपनी नौकरी की बात बताऊँ। हमारे बड़े साहब न्यूनाथ नामक एक बंगाली हैं। गोरा उपन्यास में रवीन्द्रनाथ ने कहलाया है 'मैं माधव चटर्जी हूँ नील साहबों का गुमाश्ता'। इससे अधिक बताने की आवश्यकता नहीं है। न्यूनाथ भी ठीक उसी तरह हैं। इन्होंने अभी हाल ही एक साल में १० क्लर्कों को डिसमिस किया। अपराध यह था कि एक ने चिट्ठी डिस्पैच करने में तीन दिन देर कर दी और एक के पास १२ दिन पुरानी एक चिट्ठी निकली। इसके मारे डिप्टी एकाउन्टेन्ट जनरल मिस्टर फॉस्टर और श्रीनिवास अय्यर, असिस्टेंट एकाउन्टेन्ट जनरल सुन्दरम् और मैक्सेट एक ही महीने के अन्दर मेडिकल सार्टिफिकेट देकर भाग खड़े हुए। हम लोगों में से हर एक का काम लगभग दुगना कर दिया गया है और हम पी० डब्ल्यू० डी० वालों को अपने आफिस में ले जाया गया है। हम लोगों के आफिस में रहने के घंटे साढ़े दस से साढ़े छ हैं। बहुत कठिन श्रम करना पड़ता है। यह नियम बना है कि यदि किसी दिन किसी को चेतावनी मिले तो उसे छ महीने तक दस

रुपये के हिसाब से कम तनख्वाह मिलेगी। कहो कैसी सुन्दर नौकरी है। इस पर भी इन्होंने प्रान्तीय सरकार को यह लिखा है कि दफ्तर के क्लर्क घूस देकर मेडिकल सार्टिफिकेट पेश करते हैं जिससे दफ्तर को बहुत हानि पहुँचती है इसलिए दफ्तर से पत्र पाए बिना सिविल सर्जन किसी को मेडिकल सार्टिफिकेट न दें। इस प्रकार हम लोगों का एम० सी० देने का रास्ता भी बन्द हो गया है। कहा जाता है कि एम० सी० देने पर भी सर्विस बुक पर यह लिख रखता है कि झूठा एम० सी० देकर छुट्टी पर चला गया। बर्मा है तभी न इतना जुल्म चल रहा है।

तीन चार दिन पहले की बात बताता हूँ। एकाएक मुझे चेतावनी मिली। काम इतना अधिक है कि छोटे-मोटे काम को मैं देख नहीं पाता और जो गलती हुई वह सब आडिटर भौमिक बाबू और पेरियारस्वामी के कारण हुई। अवश्य मैंने सारा दोष अपने ऊपर ले लिया। मैंने एक्सप्लेनेशन में लिखा है कि मेरी ओवरसाइट है साथ ही मैंने त्यागपत्र भी लिख रखा। मैं समझ गया कि दस रुपये तनख्वाह घटी। पर इस अपमान को सहन करके जो नौकरी करे सो करे, मैं तो करने का नहीं। इसलिए मैंने त्याग पत्र लिखा। जो कुछ भी हो पता नहीं क्यों म्युनार्ड दयापूर्वक चुप मार गया। दुर्भाग्य कहो या सौभाग्य कहो मैंने फिर त्यागपत्र नहीं दिया। पर अब शरीर भी काम नहीं देता।

लिखना-पढ़ना भी असम्भव हो गया है। इतने दिनों का नौकर हूँ। ऐसी भयंकर दुर्दशा में कभी नहीं पड़ा। उस दिन आवेश में आकर संकोच छोड़कर मैंने मिनवी को लिखा कि कलकत्ता में कोई नौकरी दिला दो तो मैं त्यागपत्र देकर चला आऊँ। अभी उनके उत्तर का समय नहीं आया पर यह भी समझ में आ गया है कि यह साहब (कुत्ता) यदि नहीं गया और इसके जल्दी जाने की कोई आशा भी नहीं है तो मुझे तो यहाँ से जाना ही पड़ेगा। शायद दूसरे दफ्तरों के लिए अप्लीकेशन भी फारवर्ड नहीं करता। मैंने बहुत-बहुत पाजी आदमी देखे पर ऐसा तो कहीं सुना भी नहीं गया।

इन्हीं बातों से दुःखी होकर इन्होंने उसी साल एक अन्य पत्र में लिखा—

कहीं चालीस-पचास रुपये की एक नौकरी दिला दो तो काम दे। मुझे सरकारी नौकरी का जरा भी मोह नहीं है। इस साले दफ्तर से तो सड़क पर कुली का काम करना भी अच्छा है। इच्छा होती है कि नौकरी से रोटी चले और साहित्य-सेवा से कुछ पैसे मिलें तो पुस्तकें खरीदें। मेरी बहुत-सी पुस्तकें जल जाने के बाद यही आकांक्षा प्रबल हो गई है।"

१७-७-१३ ई० को रंगून से एक दूसरे पत्र में उन्होंने लिखा—'तुम मेरी नौकरी की चेष्टा कर रहे हो यह जानकर मुझे खुशी हुई। बात यह है कि साहित्य-चर्चा से पेट नहीं भरता। इसके अलावा मान लो कि एक महीना कुछ नहीं मिल पाया तो मुसीबत बनेगी। इसलिए इतने संशय युक्त मार्ग में पग डालने की इच्छा नहीं होती। जो कुछ भी हो। दुर्गापूजा के बाद दो एक महीने की छुट्टी लेकर तुम लोगों से भेंट कर जाऊँगा। उसी समय फणिजी से भी मिलूँगा। पर वहां नौकरी मेरे बस की नहीं है। सुनता हूँ कि हड्डी तोड़ परिश्रम करना पड़ता है और वेतन भी कम है। कौन इतने कम वेतन के लिए हड्डी तोड़ परिश्रम करे और साहित्य-चर्चा भी बन्द हो जाए। यह तो मैं नहीं कर सकता।

६-८-१३ को उन्होंने लिखा—"तिस पर इस महीने दफ्तर का काम इतना अधिक पड़ गया है कि रात को सात बजे से पहले घर नहीं लौट पाता इसके बाद लिखना-पढ़ना चलता है जिससे दिमाग के अन्दर से कुछ निकालना लगभग असम्भव हो जाता है पर मेरा माथा बहुत सख्त है इसलिए चोट खाने पर भी ठोंकने-ठाकने पर कुछ निकल ही आता है। फिर आजकल मुसीबत यह है कि यहाँ लोग बीमार हैं इसलिए बाजार भी खुद जाना पड़ता है। न जाने पर वे कहते हैं कि खाने नहीं दिया जायगा। लोग तो दिन रात जपतप पूजा में मस्त हैं कुछ पढ़ना-लिखना आता है पर काम नहीं आता। एक दिन मैंने कहा था कि मैं बैठे-बैठे बोलता हूँ और तुम लिखते जाओ मान भी लिया था पर कुछ काम नहीं बना। जैसे 'घर' लिखने के लिए पूछते हैं कि अनुस्वार को बिन्दी किस जगह

जाएगी' लकीर के ऊपर या नीचे ? नतीजा यह है कि सब मुझे ही लिखना पड़ता है। रात में जरा पिनक भी ज्यादा चढ़ जाती है इसलिए लिख नहीं पाता। इसी कारण इतना कम लिख पाता हूं।

१८-८-११ को एक पत्र में उन्होंने एक मजेदार आपबीती का वर्णन किया है। उन्होंने लिखा—इस बीच में मैं एक भारी विपत्ति में पड़ गया। एक दांत तीन-चार साल से हिलता था, दस-बारह दिन से उसमें दर्द उठ रहा था। थोड़ी-थोड़ी हिलती थी। इसलिए हिलाने पर कुछ आराम मिलता था। उन्होंने सलाह दी कि जोर से हिलाओ भीतर खराबी का खून हो तो निकल जाएगा। तब उस तरह उसे एक घंटे तक अच्छी तरह हिलाता रहा। रात के बारह बज चुके थे। पर जब सवेरे उठता हूं तो देखता हूं कि मुंह नहीं खोला जाता और जो पीड़ा उठ रही है उसका क्या कहना। वह दिन और रात कैसे गुजरी यह तो भगवान ही जानते हैं। अगले दिन डेन्टिस्ट के यहां गया तो उसने कहा—दांत उखाड़ना पड़ेगा।

वह भी साथ में थे बोले—अरे बाप रे, एक दांत उखाड़ा कि सब दांत दो दिन में भड़भड़ाकर गिर पड़ेंगे। साथ ही उन्होंने वैज्ञानिक व्याख्या करके यह भी समझा दिया कि दांत से दांत लगे हुए हैं। इसलिए यदि एक भी उखाड़ा गया तो बस ईश्वर ही मालिक है। काफी उधेड़-बुन के बाद मैं चला आया। फिर बुखार चढ़ा। समझ ही गये होंगे कि क्या मामला हुआ फिर सहन नहीं हुआ और अगले दिन दांत उखड़वा लिया। पर दन्दान साज महोदय की भी बलिहारी है। पहले उसने हिलते हुए दांत की बगल के एक अच्छे दांत को पकड़कर करीब-करीब उसे आधा उखाड़ डाला मैं जितना ही कहता रहा कि अरे साहब वह यह नहीं है उतना ही वह यह कहता रहा कि धैर्य रखो अभी काम होता है। तब मैंने हाथ से संडसी हटा कर अपने दांत की रक्षा की। इसके बाद हिलता हुआ दांत उखाड़ा गया। दांत तो उखड़ा पर खून नहीं रुकता था। डेन्टिस्ट ने कहा— 'भई आपके

१ बंगला में अनुस्वार में एक बिन्दी और उसके नीचे एक वैसी छोटी लकीर होती है इसी का जिक्र है

दाँत बहुत खराब है।

"अब इसकी बात सुनिए। खास मुझे दाँत उखाड़ना ही नहीं आता अब दून गिरा तो दाँत को कोसता है। जो कुछ भी हो, इसी प्रकार एक घंटे तक खून गिरने के बाद मैं घर भगा आया और फिर बुखार चढ़ा। आज भी उठ नहीं पाया। आठ-दस दिन से पढ़ना-लिखना बस्तर सब बन्द है। नहीं तो तुम लोगों के लिए रचना भेज देता।

इन्हीं दिनों वे नौकरी छोड़कर कलकत्ते में किसी साहित्यिक नौकरी की बात तो सोच ही रहे थे पर साथ ही रचनाओं के कापीराइट बेचने की बात भी सोचते थे पर इस सम्बन्ध में उनके विचार अभी इससे आगे नहीं बढ़े थे कि रचनाओं से रोटी चलेगी। उन्होंने उक्त पत्र में यह लिखा था कि कापीराइट बेचने पर यदि रुपये मिलें तो हर्बर्ट स्पेंसर की पुस्तकें खरीदूं।

दो सितम्बर के एक पत्र से मालूम होता है कि वे पढ़ने लिखने में कोई नियम नहीं रख पाते थे। लिख रहे हैं—'बुखार बना ही सा रहता है। डाक्टरी दवा चल रही है। पढ़ना एकदम बन्द कर रखा है क्योंकि इस विषय में मैं कोई संयम नहीं रख पाता। नशे की तरह सिर पर सवार हो जाता है। एक बार शुरू कर दूं तो रात के तीन चार बज जाते हैं।"

इसी पत्र में लिखा है कि 'नारीर मूल्य' और 'चरित्रहीन' समाप्त हो गया है। 'नारी का मूल्य' के अतिरिक्त वे और दस पुस्तकें 'मूल्य ग्रन्थ माला' में लिखना चाहते थे जिनमें 'वेश्या का मूल्य' और 'नशा का मूल्य' भी होता।

वे बराबर कापीराइट बेचने की बात सोचते रहे। ७-१२ १५ को उन्होंने मंगल प्रकाशन को एक पत्र लिखा—"मैं आपसे एक और बात पूछना चाहता हूँ, यदि अच्छी तरह सोचकर इस प्रश्न का उत्तर दें तो बड़ी कृपा हो। अब की बार जब पत्र लिखें तो इस बात का उत्तर अवश्य दें। मेरी पुस्तक कितनी क्या बिकती है इसका आज तक मुझे पता नहीं है। अच्छा यह बताइए कि मेरी [redacted] पुस्तकें (उपन्यास) जिनका औसत मूल्य सवा

रुपये हैं यदि बाजार में हों तो बाकी सब खर्च निकाल कर प्रकाशक यदि मुझे माहवार बीस रुपया दे तो क्या उसके लिए दुस्साहस की बात होगी ? क्या इससे भविष्य में उसे हानि रहेगी ?

१९१६ तक इस सम्बन्ध में शरत् बाबू की परिस्थिति बदल चुकी थी। इन दिनों उन्हें प्रकाशक गुरुदास चटर्जी ने १०० रुपया महीना देने का वादा किया और यह कहा कि शरत्चन्द्र नौकरी से बर्मा छोड़ दें। इनमें से ५० ) भारतवर्ष पत्रिका के लेखक की हैसियत से और ५०) रुपए पुस्तकों पर अग्रिम रायल्टी के हिसाब से देना स्वीकार किया था। कुल मिलाकर तीन सौ रुपये देने थे। यद्यपि शरत् बाबू अभी मध्याह्न सूर्य के रूप में साहित्य-गगन में दमके नहीं थे फिर भी वे काफी प्रसिद्ध हो चले थे इतने पर भी वे रंगून छोड़ने के लिए १०० रुपए पाकर किस प्रकार डरते थे यह उनके एक पत्र से ज्ञात होता है। वे लिखते हैं— "आपने मुझे जो दान दिया है वह यथेष्ट है यदि एक साल के अन्दर न मर जाऊँ तो उसे चुका कर ही रहूँगा हाँ जो कृतज्ञता का कर्ज है उससे मैं कभी उऋण नहीं हो सकता। जो कुछ बचा था वह दो महीने की बीमारी में खर्च हो चुका बल्कि कुछ कर्ज भी चढ़ चुका है। अपनी जरूरत और भय के कारण मैं आपकी दया पर जुल्म कर रहा हूँ ऐसा मालूम पड़ रहा है। इसलिए यदि आप समझें कि इतना देना उचित नहीं है तो जितना देते बने भेज दें मैं उसी को कृतज्ञता के साथ ग्रहण करूँगा।"

# सफल साहित्यकार

१९१९ तक साहित्य-जगत् में शरत्चन्द्र की स्थिति बहुत मजबूत हो चुकी थी। उन्होंने ११.८.१९ को हरिदास चट्टोपाध्याय को लिखा— 'उस रोज रात को मेरी ग्रन्थमाला प्रकाशित करने की जो कल्पना सामने आई थी उसे मैंने छोड़ दिया क्योंकि मैंने सोचकर देखा ऐसा करना नीचता रहेगी। जिसके लिए वसुमती के मालिक सतीश बाबू एक साल से मेरे पीछे दौड़ रहे हैं वह भ्रम हो न हो पर उन्हें न देकर दूसरे को ग्रन्थमाला का अधिकार देना घृणित नीचता होगी और जिसे मैं नीचता समझूंगा उसे नहीं करूँगा। सतीश बाबू आज सबेरे भी आए थे मैं राजी नहीं हुआ। पर वे अपने पिता की मृत्यु के बाद इस तरह फँस गए हैं कि सुनने पर बड़ा दुख होता है। आपके मामले में मेरा एक तरह से बस जाता है आज यहीं तक सोच सकता हूँ।

'सतीश बाबू का कहना है कि तीन साल में २५।३० हजार रुपए दे सकते हैं शायद असम्भव हो या सम्भव हो यदि ऐसा हो तो मेरा पछाँह आने का कोई उपाय निकले। उधर आने के लिए मन चंचल हो रहा है। आगामी बृहस्पतिवार या शुक्रवार को कुछ न कुछ अन्तिम फैसला कर डालूँगा। लगातार लिखने पर भी रोटी के लिए मुहताज रहना अच्छा नहीं है और यह भी समझता हूँ कि ये लोग जो रुपए देंगे वह वर्तमान अवस्था में जिन्दगी भर थोड़े ही मिलेगा। शायद सस्ता संस्करण निकालने से आपको कुछ हानि पहुँचे या न पहुँचे क्योंकि सस्ता संस्करण वे ही खरीदते हैं जो कभी पुस्तक नहीं खरीदते।

१४ जून १९४० को उन्होंने अपने प्रकाशक को लिखा—मेरा कलकत्ते का मकान लगभग बन चुका इस समय आप मुझे पाँच हजार रुपये दें तो

चिन्ता दूर हो। जो तीन पुस्तकें मैं समाप्त करने की आशा कर रहा हूँ उनसे एक साल में ही यह कर्ज चुकता हो जायगा। मकान का तखमीना १४ हजार का था। जिन लोगों से बातचीत की उनसे यह तय था कि आधे रुपये इस साल देंगे और बाकी आधा अगले साल देंगे। पर खटना बस से खर्च बढ़ गया और ५ हजार रुपये ज्यादा लग गये नहीं तो रुपयों की जरूरत न होती। कर्ज बिना लिए भी भुगतान कर देता। यहाँ गाँव के मकान पर भी १६, १७ हजार खर्च कर चुका। कलकत्ते के मकान पर भी ३ हजार खर्च हो चुके।"

बाद में शिवपुर में वे एक छोटा-सा मकान भाड़े पर लेकर रहने लगे। छोटे भाई प्रकाशचन्द्र को लाकर उन्होंने अपने पास रक्खा। इस बीच उनके दूसरे भाई प्रभासचन्द्र ने संन्यास का अवलम्बन कर स्वामी वेदानन्द का नाम ग्रहण किया था और अब वृन्दावन के रामकृष्ण आश्रम में सेवाकार्य के इनचार्ज थे। जब कभी वे कलकत्ता आते तो शरत्चन्द्र के यहाँ रहते। उनकी बड़ी बहिन अनिला देवी भी बीच-बीच में अपने पति के साथ यहाँ आकर रहती थीं।

इसके बाद उनके जीवन में कोई बड़ा परिवर्तन नहीं हुआ। वे बराबर पुस्तक पर पुस्तक प्रकाशित करते रहे। आर्थिक रूप से वे सम्पन्न रहे। हेमेन्द्रकुमार ने लिखा है कि वे ही पहले बंगाली साहित्यिक हैं जिन्होंने केवल कलम के बल पर कलकत्ते में बड़ा मकान तथा निजी मोटर कर लिया। शरत्चन्द्र की प्रतिभा उच्चकोटि की थी साथ ही उसमें प्रचलन शक्ति भी गजब की थी। वे एक ही साथ कई पत्रिकाओं में अपना धारावाहिक उपन्यास चलाते थे।

उपन्यास के क्षेत्र में उनके सर्वप्रथम प्रयास 'बासा' या 'कारावास' का कोई पता ही नहीं। सच बात तो यह है कि शरत् बाबू ने ही उसे नष्ट कर डाला था। ईस्टलिन के अनुकरण में लिखे हुए 'अभिमान' नामक उपन्यास के सम्बन्ध में यह समझा जाता है कि वह शायद ही किसी के पास हो। पर किसके पास है कौन जाने। Mighty atom का अनुसरण कर

उन्होंने 'पाषाण' लिखा था वह उनके मामा सुरेन्द्रनाथ गङ्गोपाध्याय ने खो डाला। इस महाशय ने स्वयं साहित्यिक होते हुए ऐसी गलती ही नहीं अपराध कैसे किया यह समझ में नहीं आता। इसके अतिरिक्त उन्होंने 'बागान' (बाग) नाम देकर तीन खंडों में अपनी रचनाओं का एक संग्रह तैयार किया था इसके प्रथम खंड में 'बोझा' 'काशीनाथ' 'अनुपमार प्रेम' द्वितीय खंड में 'कोरेल ग्राम' 'बड़दीदी' 'चन्द्रनाथ' तथा तृतीय खंड में 'हरिचरण' 'देवदास' और 'बाल्यस्मृति' थी। इनमें से सभी बाद को प्रकाशित हुए। कुछ दिन के उपरान्त उन्होंने 'शुभदा' नाम से एक उपन्यास लिखा पर इस उपन्यास में जिन लोगों का जिक्र था वे जीवित थे इस लिये शरत् बाबू ने अपनी मृत्यु तक इसे प्रकाशित नहीं होने दिया। उनकी मृत्यु के बाद ही 'शुभदा' छपकर प्रकाशित हो सका। 'ब्रह्मदैत्य' नाम से जो उपन्यास उन्होंने लिखा था वह महादेव साहु के ही यहाँ रह गया। इसके अतिरिक्त कुछ लेखक उनकी इस युग की रचनाओं में (जो खो गईं) 'बासा' 'शिशु' 'छायार प्रेम' 'आमुन ठाकुर' आदि पुस्तकों का नाम लेते हैं।

ऊपर दिये गये विवरण से स्पष्ट है कि प्रारम्भिक साहित्यिक जीवन में उन्होंने कुछ अनुवाद या छायानुवाद किये थे पर इनमें से एक भी पाठकों के हाथ में न पहुँच सका। बाद को यदि कोई अनुवाद के विषय में उनसे कहता तो वे कह देते थे—"अनुवाद करना और व्यर्थ परिश्रम करना एक ही बात है यह सब मुझे अच्छा नहीं लगता।"

'बड़ी दीदी' के प्रकाशन के बाद शरत्चन्द्र कैसे छः वर्ष तक चुप रहे, तथा कैसे फिर वे साहित्य में आये और क्या-क्या लेकर आये यह पहले ही बतलाया जा चुका है। बाद में एक के बाद एक 'पंडित मशाई', 'बैकुंठेर विल' मेजदीदी 'दर्पचूर्ण' 'पल्ली-समाज' 'श्रीकान्त', 'अरक्षणीया', 'निष्कृति', 'मामलार फल' 'गृहदाह' 'देना पावना' 'नवविधान' 'हरिलक्ष्मी' 'एकादशी बैरागी' 'विलासी' 'अभागीर स्वर्ग' 'अनुराधा' 'सती ओ परेश' 'शेष प्रश्न' प्रकाशित हुए। इनमें से अधिकांश 'भारतवर्ष' में निकले। 'पल्लीसमाज' को पहले शरत् बाबू ने जैसे लिखा था पुस्तकाकार छपने के पहले उन्होंने

उसका अन्त एकदम बदलकर उसे दूसरा रूप दे दिया था। कहा जाता है शरत् बाबू ने पहले 'श्रीकान्त' और 'चरित्रहीन' को एक ही पुस्तक के अन्तर्गत किया था पर बाद को दो पृथक पुस्तकें बना दीं। इन दो पुस्तकों को यदि मिलाकर पढ़ा जाय तो इसमें कोई संदेह नहीं कि दोनों रचनाओं के कुछ पात्र हेरफेर के साथ एक ही व्यक्ति लगते हैं। श्रीकान्त तथा दिवाकर की बर्मा-यात्रा की घटनाएँ बहुत कुछ एक हैं। 'श्रीकान्त' का नन्द मिस्त्री और उसकी स्त्री टगर के साथ 'चरित्रहीन' के मकान मालिक तथा मकान मालकिन का बहुत ही सादृश्य है। 'श्रीकान्त' की राजलक्ष्मी का श्रीकान्त के प्रति उसी प्रकार का प्रेम है तथा उस प्रेम का इतिहास उसी तरह है जैसे उपेन्द्र के प्रति किरणमयी के प्रेम का है। अवश्य उपसंहार में प्रभेद है। हम इस विषय में बाद को और आलोचना करेंगे। अस्तु।

देशबन्धु चितरंजन दास के सम्पादन में 'नारायण' पत्र निकलता था। इसमें शरत् बाबू की 'स्वामी' नामक कहानी प्रकाशित हुई। इस कहानी पर क्या पुरस्कार दिया जाय यह स्वयं न निर्णय कर देशबन्धु ने शरत्चन्द्र को एक हस्ताक्षर किया हुआ चेक दे दिया और कहा जो रकम आप उचित समझें बैठा लें। शरत्चन्द्र ने १ ) का चेक बैठा कर चेक भुनाने भेजा। इस समय शरत् बाबू बंगला साहित्य में दूसरे महारथी व्यक्ति तथा उपन्यास में प्रथम माने जा चुके थे अतएव यह १ ) का चेक उनके लिए संयम ही था।

'बंगवाणी' पत्रिका में उनका 'पथेर दाबी' नामक उपन्यास क्रमशः प्रकाशित हुआ था। इसके अतिरिक्त 'महेश' 'सती' आदि कहानियां भी प्रकाशित हुई थीं। 'पथेर दाबी' उपन्यास के प्रकाशन का इतिहास मनोरंजक है। 'बंगवाणी' तरुण बंगाल के मुखपत्र के रूप में निकली थी। इसके संपादक श्री रमाप्रसाद मुकर्जी स्वभावतः चाहते थे कि तरुणों के प्रिय उपन्यासकार शरत् बाबू का कोई उपन्यास उसमें धारावाहिक रूप से निकले। शरत् बाबू के यहाँ दौड़ते-दौड़ते उनकी मोटर की टायर घिस गई पर अपने उद्देश्य से वे उतने ही दूर थे। ऐसे समय

उन्होंने एक दिन देखा कि शरत् बाबू के लिखने की मेज पर 'पथेर दावी' के कुछ अध्यायों की पाण्डुलिपि रक्खी है। वे इस पर खुशी से उछल पड़े पर शरत् बाबू ने कहा—इतने खुश न हो जाओ इसको प्रकाशित करने में तुम्हारे लिए खतरा है सोच लो—इस पर वे डरने की बजाय और भी खुश हुए कि 'बंगवाणी' के लिए ऐसी ही चीज तो चाहिए। दो साल तक 'बंगवाणी' में यह बृहत् उपन्यास छपता रहा। अन्त में यह जब सम्पूर्ण हुआ तो शरत् बाबू ने वादे के अनुसार इसे सुधीर सरकार को दिया पर वे डरे। सुधीर बाबू ने शरत् बाबू को १०००) रुपया पेशगी इस वादे पर दिया था कि ज्यों ही वह पुस्तक 'बंगवाणी' में समाप्त हो जाय त्यों ही वह छपने के लिए उनकी कम्पनी को सौंपी जाय। इसीलिये शरत् बाबू ने पुस्तक उनको दी। सुधीर बाबू की मति छछूंदर की हुई। अन्त में उन्होंने शरत् बाबू से कहा कि कानून की दृष्टि से पुस्तक का जो-जो अंश आपत्तिजनक ठहर सकता है उसे निकालकर वे इसको छापना चाहते हैं। इस पर शरत् बाबू ने सब कागज उनसे छीन ली और कहा कि १०००) रुपयों का हिसाब कर दिया जायगा। शरत् बाबू ने अपनी पुस्तक का एक भी अर्धविराम चिह्न कम नहीं करना चाहा। उनके सभी प्रकाशकों ने इस पुस्तक को प्रकाशित करने से इंकार किया। अंत में सर आशुतोष के दो पुत्र 'बंगवाणी' संपादक रमाप्रसाद मुखोपाध्याय तथा उमाप्रसाद ने अपने खर्चे पर तथा खतरा सहकर इसको प्रकाशित करना स्वीकार किया।

अब मुश्किल यह हुई कि कोई प्रेस इस पुस्तक को छापने पर राजी न हुआ। तब काटन प्रेस ने इसको छापा। पहले संस्करण में १००० प्रतियाँ छपीं दाम तीन रुपए रख गये पर एक महीने में ही संस्करण खतम हो गया। दूसरे संस्करण में ५००० छपीं पर वे भी तीन महीने में खतम हो गईं। इसके बाद पुस्तक जब्त हो गई। सरकार मुकदमा भी चलाने जा रही थी पर कुछ विशेष प्रभावशाली लोगों के बीच में पड़ने के कारण मुकदमा नहीं चलाया गया। शरत् बाबू की इस जब्ती

पर इतना क्रोध आया कि वे इस प्रश्न को लेकर एक आंदोलन खड़ा करना चाहते थे इसलिये वे रवीन्द्रनाथ के पास गये पर रवीन्द्रनाथ ने उनको ऐसा करने से मना किया। रवीन्द्रनाथ ने स्वयं यह उपन्यास पढ़ा और कुछ अप्रिय बातें लिखीं। उन्होंने लिखा—

"मैंने तुम्हारी पुस्तक पथ के दावेदार पढ़ी। पुस्तक उत्तेजक है यानी ब्रिटिश शासन के विरुद्ध पाठक के मन को उत्तेजित करती है। लेखक के कर्तव्य की दृष्टि से सम्भव यह दोषजनक न हो क्योंकि यदि लेखक अंग्रेजी शासन को गर्हित समझता है तो वह चुप नहीं बैठ सकता पर चुप न रहने की जो विपत्ति है उसे भी स्वीकार करना चाहिए। यदि हम अंग्रेजी शासन की निन्दा इसलिए करें कि अंग्रेज बाहर हम क्षमा करेंगे तो इसमें कोई पौरुष की बात नहीं है। मैं बहुत-से देश घूम आया। मेरी जो अभिज्ञता है उसमें मैंने यह देखा कि एकमात्र अंग्रेज सरकार के अलावा स्वदेशी या विदेशी प्रजा के वाक्यगत या व्यवहारगत विरोध को और कोई सरकार इतने धैर्य के साथ सहन नहीं करती। यदि हम अपनी ताकत पर नहीं बल्कि दूसरे की सहिष्णुता की बदौलत विदेशी राज्य के सम्बन्ध में यथेच्छ व्यवहार करने का साहस दिखाते हैं तो वह पौरुष की विडम्बना मात्र है उसमें अंग्रेजी शासन के प्रति ही श्रद्धा झलकती है न कि अपने प्रति। राजशक्ति में पशुबल है यदि कर्तव्य के बिना पर उसके विरुद्ध खड़ा ही होना पड़े तो दूसरे पक्ष में चारित्रिक जोर का होना यानी आघात सहने का जोर होना चाहिए, पर हम अंग्रेजी शासन से ही उस चारित्रिक जोर की माँग करते हैं अपने से नहीं। इससे प्रमाणित होता है कि हम मुँह से चाहे कुछ भी कहें पर अपने अनजान में हम अंग्रेजों की पूजा करते हैं और इस पूजा का अनुष्ठान हम यों करते हैं कि अंग्रेजों को गालियाँ देकर हम उनसे सजा की आशंका नहीं करते। शक्तिमान की दृष्टि से देखा जाए तो तुम्हें कुछ न कहकर सिर्फ तुम्हारी पुस्तक को दबा देना लगभग क्षमा करना है। कोई भी प्राच्य या पाश्चात्य विदेशी शासन ऐसा न करता। हम भारतीयों के हाथों में राजशक्ति होती तो

हम क्या करते यह हमारे जमींदारों और भारतीय रजवाड़ों के तरह तरह के व्यवहारों से अनुमेय है। पर इसलिए लेखनी बन्द करके ही करनी है। मैं यह नहीं कहता मैं कह रहा हूँ कि सजा स्वीकार करके ही लेखनी चलानी पड़ेगी। जिस किसी देश में राजशक्ति के साथ विरोध हुआ है वहाँ ऐसा ही हुआ है, राजशक्ति का विरोध करते हुए आराम से नहीं रहा जा सकता इस बात को निःसन्दिग्ध रूप से जानकर ही ऐसा करना है।

यदि तुम अखबार में राजविरोधी बात लिखते तो उसका प्रभाव बहुत थोड़ा और क्षणिक होता पर तुम्हारे जैसे लेखक ने कथाच्छलेन में जो बात लिख दी उसका प्रभाव निरन्तर चलता ही रहेगा। देश और काल में उसकी व्याप्ति का विराम नहीं है। अपरिपक्व उम्र के लड़के और लड़कियों से लेकर बूढ़े तक उसके प्रभाव में आ जाएँगे। ऐसी अवस्था में यदि अंग्रेज शासन तुम्हारी इस पुस्तक का प्रचार बन्द न कर देता तो इससे यही मालूम होता कि साहित्य में तुम्हारी शक्ति या देश की प्रतिष्ठा के सम्बन्ध में या तो उसे कुछ मालूम नहीं है या वह अवज्ञा दर्शाना चाहता है। शक्ति को आहत करने से प्रतिहत होने के लिए तैयार रहना पड़ेगा। इसी कारण उस आघात का मूल्य है। आघात के गुरुत्व को लेकर विलाप करने पर उस आघात के मूल्य को एकदम नष्ट कर देना होगा।

तुम लोगों का

२७ मार्च १९३३ रवीन्द्रनाथ ठाकुर

इस पत्र के उत्तर में शरत्चन्द्र ने रवीन्द्रनाथ को जो पत्र लिखा वह इस प्रकार था— आपका पत्र मिला। अच्छी बात है ऐसा ही हो। यह पुस्तक मेरी लिखी हुई है इसलिए दुःख हो तो मुझे है पर यह खास बात नहीं है। आपने जो कर्तव्य और उचित समझा है उसके विरुद्ध न तो मेरा कोई अभिमत है और न कोई अभियोग। पर आपकी चिट्ठी में जो दूसरी बातें आ गई हैं उस सम्बन्ध में मेरे मन में दो-एक प्रश्न हैं और कुछ वक्तव्य भी है। यदि गुस्ताखी लगे तो वह भी आपकी ही रायपत्र के कारण समझिये।

स्वयं जीवन में प्रत्यक्ष किया था। उन्होंने जो कुछ देखा या सुना या अनुभव किया था उसी को कुछ हेर-फेर के साथ वे अपने उपन्यासों में चित्रित करते थे। उनके जीवन से परिचित पाठकों को कई बार उनके उपन्यासों को पढ़ते समय यह संदेह हुए बिना न रहेगा कि उन्होंने उपन्यास के नायक के रूप में अपने ही जीवन के किसी भाग को चित्रित किया है। स्वयं उनके जीवन का अधिकांश भाग प्रवारागर्दी में गया था वे स्वयं एक glorified vagabond यानी यशप्राप्त अवारागर्द थे इसी प्रकार उनके उपन्यासों के नायक भी यशप्राप्त अवारागर्द थे। 'चरित्रहीन' का सतीश अवारागर्द शराबी वेश्यागामी था उसके रुपये खर्च करने का बल्कि लुटाने का हिसाब तो शरत्चन्द्र ने अक्सर दिया है पर उसने कभी एक पैसा भी पैदा नहीं किया तथा उसके जीवन में कोई उद्देश्य भी था ऐसा तो नहीं मालूम देता। वह जैसे आँधी में उड़ रहा था। 'श्रीकान्त' का नायक श्रीकान्त तो अवारागर्द है ही एक आत्मवान तथा प्यारा अवारागर्द। 'पल्ली-समाज' का नायक रमेश डाक्टर या वकील जुदा जाने क्या था पर उसने कभी डाक्टरी या वकालत की हो या करनी चाही हो ऐसा शरत् बाबू नहीं लिखते। 'देवदास' का देवदास भी एक अवारागर्द ही है पैदाइशी नहीं बना हुआ। 'बड़ी दीदी' का नायक सुरेन्द्र यों तो बड़ा अच्छा छात्र था पर वह अपने अभिभावक से ऊबकर अपने पैरों पर खड़ा होना चाहता है इसी उद्देश्य से वह घर छोड़कर भाग निकलता है यहीं से उपन्यास का सूत्रपात होता है। 'दत्ता' का नरेन्द्र विलायत पास डाक्टर है, पर अवारागर्द के सब गुण उसमें मौजूद हैं। 'गृहदाह' के सुरेश महिम का भी यही हाल है। 'पथेर दाबी' का डाक्टर एक क्रांतिकारी है पर है वह भी एक वैरागमय त्यागी अवारागर्द। उसने अपनी धुन में सारी दुनिया की खाक छान डाली थी। अवारागर्दों के प्रति यह पक्षपात शरत्-साहित्य की एक विशेषता है।

शरत्चंद्र के पुरुष पात्रों से कहीं बढ़कर उनके उपन्यासों की नायिकाएँ हृदय पर प्रभाव डालने वाली हैं। वंचित अपमानित भारतीय नारी के

साथ शरत्चन्द्र ने पग-पग पर जिस समझदारी से भरी सहानुभूति का परिचय दिया है वह भारतीय साहित्य की अमर वस्तु है। इसीलिये बंगाल की नारियों ने उनका सानन्द अभिनन्दन किया। धर्म, गतानुगतिकता तथा दैन्य के संयुक्त बोझे के अभिमान के साथ युगों से पिसती हुई भारतीय नारियों ने अब उनकी रचनाओं में जैसे अपनी स्वतन्त्रता को लौटी हुई पाया। युगयुगांतर से उनके पैरों में पड़ी भारी बेड़ियाँ मानो झनझनाकर टूट गई। उन्होंने भी जाना कि जीवन में उनका भी कुछ भाग है जो सर्वदा गौण ही हो ऐसा नहीं। शरत्चन्द्र की पुस्तकों में वारनारियों का चरित्र तक सहानुभूतिपूर्वक चित्रित है। उनको देखकर ऐसा लगता है कि वे भी मनुष्य जाति की सदस्या हैं उनमें भी उसी प्रकार धड़कता हुआ दिल है जैसा और किसी नारी में और वह दिल किसी से निकृष्ट नहीं। 'श्रीकान्त' की राजलक्ष्मी कोई नियमित वेश्या नहीं है पर एक पदस्खलिता नारी है जिसने गाने को ही अपनी जीविका बनाया है। उसका चरित्र इतना उज्ज्वल और सुन्दर है कि उस पर घृणा तो उत्पन्न होती ही नहीं बल्कि उसे प्यार करने को जी चाहता है। उसने श्रीकान्त की जिस-जिस प्रकार से सेवा की उसको मरने से बचाया उससे अधिक सेवा कुलवधू क्या कर सकती है। जब घनिष्ठता अधिक बढ़ने लगकर श्रीकान्त और राजलक्ष्मी जुदा होते हैं उस समय श्रीकान्त कहता है— 'बड़ा प्रेम केवल पास ही नहीं खींचता बल्कि यह दूर भी न जा फेंकता है" यह कितना बड़ा सत्य है, तथा दोनों के प्रेम की गम्भीरता को हमारी आँखों के सामने स्पष्ट करके करीब-करीब हमें रुला देता है। राजलक्ष्मी का चरित्र भारतीय साहित्य में एक अमर वस्तु है। यह चरित्र स्पष्ट कर देता है कि नारी जब प्रेम करती है तो वह क्या-क्या कर सकती है।

'देवदास' की चन्द्रमुखी तो एक मामूली बाजारू वेश्या है पर जब देवदास के प्रेम में पड़ जाती है तो वह क्या से क्या हो जाती है। वह वेश्यावृत्ति तो छोड़ ही देती है साथ ही वह जो करती है उसका एक ही नाम हमारी भाषा में है वह है 'तपस्या'। कई बार 'देवदास को पहले

हुए मैं इस दुविधा में पड़ गया हूँ कि यदि प्रेम ही से किसी पुरुष पर स्त्री का अधिकार होता है तो देवदास किसका है? पार्वती का या चन्द्रमुखी का? देवदास स्वयं इस दुविधा में खोता जा रहा है। वह चन्द्रमुखी से कहता है—"तुम दोनों में कितना असामंजस्य है फिर सामंजस्य भी है। एक कितनी अभिमानी तथा उद्धत है दूसरी कितनी शान्त तथा संयत है। वह कुछ भी नहीं सह सकती और तुम कितनी सहनशीला हो। उसका कितना यश है, नाम है और तुम्हारा कितना कलंक है? सभी उसको कितना प्यार करते हैं, और तुम्हें कोई प्यार नहीं करता? पर मैं तुम्हें प्यार करता हूँ, अवश्य करता हूँ"—कहकर एक गहरी साँस खींचकर फिर बोला—"पाप-पुण्य के विचारक तुम्हारा क्या विचार करेंगे नहीं मालूम पर मृत्यु के बाद यदि मिलन हो तो मैं तुमसे कभी अलग नहीं रह सकता।"

पाठक जरा ध्यान से देखें तो मालूम होगा कि 'चरित्रहीन' की सावित्री का करीब-करीब वही चरित्र है जो 'देवदास' की चन्द्रमुखी का। भेद केवल इतना है कि सावित्री वेश्या नहीं और चन्द्रमुखी वेश्या थी। सतीश तथा देवदास पर जब विपत्ति पड़ती है या वे बीमार पड़ते हैं तो सावित्री तथा चन्द्रमुखी आती हैं और देवी की तरह उनकी सेवा करती हैं। दोनों का प्रेम अंत में निष्फल होता है। सावित्री सतीश को जीतकर भी 'श्रीकान्त' प्रथम पर्व की राजलक्ष्मी की तरह 'बड़े प्रेम' की मर्यादा के कारण दूर हट जाती है। यदि श्रीकान्त प्रथम पर्व में ही समाप्त होता जैसा कि उसके होने में कोई बाधा नहीं थी तो हम कह सकते थे कि 'श्रीकान्त' की राजलक्ष्मी और 'चरित्रहीन' की सावित्री हेरफेर के साथ एक ही पात्री हैं, पर द्वितीय पर्व में जाकर श्रीकान्त और राजलक्ष्मी का मिलन करा देने से सावित्री से राजलक्ष्मी में कुछ विभिन्नता आई। स्मरण रहे कि यह केवल घटना के ख्याल से विभिन्नता है नहीं तो दोनों का चरित्र एक ही है। यह अनुमान है कि शरत्चन्द्र पहले 'चरित्रहीन' और 'श्रीकान्त' को एक ही उपन्यास बनाना चाहते थे यानी पहले दोनों की कल्पना एक थी बाद को द्विधा-

त्मक हो गई सत्य ही मालूम होता है।

'देवदास' की चन्द्रमुखी इन दोनों के सम्मुख ज़रा फीकी इसलिये पड़ती है कि वह पहले वेश्या थी फिर भी उसका चरित्र सावित्री या राजलक्ष्मी से बहुत भिन्न नहीं है।

अध्यापक धीरेन्द्रकृष्ण मुकर्जी ने 'वसुमती' के एक लेख में लिखा था— "हमारे देश के एक प्रसिद्ध उपन्यासकार के हाथों से इन समाज बहिष्कृता नारियों के चित्र बहुत ही सुन्दर उतरे हैं कहा जाता है वह उनकी वैयक्तिक अभिज्ञता का परिचायक है।"[1] अध्यापक मुकर्जी ने इस उपन्यासकार का नाम नहीं लिया किन्तु बँगला साहित्य से ज़रा भी परिचित प्रत्येक व्यक्ति समझ जायगा कि उसका यह कटाक्ष शरत्चन्द्र पर था।

समाजबहिष्कृता नारी से अध्यापक का मतलब केवल चन्द्रमुखी जैसी वास्तविक वेश्या से या राजलक्ष्मी जैसी लोकसमाज में वेश्या रूप में प्रचारित वनिता से ही नहीं बल्कि उनका मतलब किरणमयी अभया टगर यहाँ तक कि अन्नदा दीदी से भी है। 'चरित्रहीन' की किरणमयी का चरित्र मार्के एक अद्भुत चरित्र है। एक विद्वान् पति से उसका विवाह हुआ था पर वह उसकी शिष्या ही रही कभी पत्नी या प्रिया नहीं हुई। वह दिवाकर नामक युवक के साथ अद्भुत परिस्थिति में भागती है। विनोदपूर्ण (geistreich) बातचीत में वह शरत्-साहित्य में अनुपम है, शायद 'शेष प्रश्न' की कमल ही उससे कुछ बीस उतरे। किरणमयी के साथ प्यार करने को तो जी नहीं चाहता पर यह एक ऐसा स्त्रीचरित्र है जिसे कभी कोई भूल नहीं सकता।

'श्रीकान्त' की अभया किरणमयी से मिलती-जुलती है। वह बर्मी स्त्री के साथ रहने वाले पतिदेव के दर्शन में चीटी जाकर लौटती है और रोहिणी बाबू के साथ पति-पत्नी की तरह रहती है। श्रीकान्त अकस्मात् उसे मिलता है तो वह चौंक पड़ती है, पर सामने आकर कहती है—"जन्म

१ वसुमती श्रावण १३४३

अभ्यन्तर के प्रबल संस्कार के धक्के से पहले मैं जरा तिलमिला गई थी सम्हल न पाई थी, इसीलिए भाग गई थी। श्रीकान्त बाबू, नहीं तो इसे आप मेरी वास्तविक लज्जा न समझें" इत्यादि। अभया की बातचीत सुन कर किरणमयी की ही बातचीत याद आती है। विद्रोहिणी नारी का यही तेजस्वी रूप उसमें भी दिखाई पड़ता है, पर अभया के प्रति किरणमयी से अधिक श्रद्धा इसलिये होती है कि अभया ने एक तो पति को हर तरह का मौका दिया, दूसरे वह रोहिणी बाबू के (जो उसे प्यार करता था) साथ सचमुच पत्नी की तरह रहना चाहती थी। किरणमयी तो बुद्धि तथा रूप से अभिभूत कर दिवाकर से खेल कर रह जाना चाहती थी। किरणमयी के सम्बन्ध में एक और बात है कि वह मन-ही-मन प्रेम तो करती रही उपेन्द्र बाबू से, पर तर्क में ठेस लगने के कारण दुष्टतावश (Perversity) दिवाकर को फुसलाकर रंगून भाग गई। शरत्चन्द्र ने चरित्रहीन में किरणमयी के लिए पापिष्ठा आदि शब्द का व्यवहार किया है, पर इसका कोई कारण नहीं मिलता कि 'चरित्रहीन' की पाण्डुलिपि को एक तिहाई देखकर द्विजेन्द्र बाबू ने क्यों लौटा दिया था, तथा किरणमयी ने कौन-सा पाप किया था? फिर किरणमयी पापिष्ठा थी, तो अभया क्या दूध की धुली हुई थी! फिर अभया के लिए उन्होंने पापिष्ठा आदि शब्द क्या नहीं इस्तेमाल किया? 'श्रीकान्त' के प्रकाशन तक शरत्चन्द्र निडर हो चुके थे, यही इसकी व्याख्या है। हम बाद को किरणमयी और अभया की सामाजिक स्थिति के सम्बन्ध में आलोचना करेंगे।

धीरेन्द्र बाबू 'श्रीकान्त' की अभया दीदी को शायद समाजबहिर्भूत या नारियों की श्रेणी में रखें। अभया दीदी समाज के बाहर थी या भीतर, यदि बाहर थी तो इससे समाज का छोटापन जाहिर होता है या अभया दीदी का? पाठक अभया दीदी के मुँह से उनका विवरण सुनकर इसका निर्णय करें। वे श्रीकान्त के लिए लिख गई थी—

'श्रीकान्त, तुम्हारी इस दुखिनी दीदी का नाम अभया है। पति का नाम मैं क्यों गुप्त रख गई, यह इस विवरण के अन्त में पढ़ने पर तुम्हें खुद ही

ज्ञात हो जायगा। मेरे पिता धनी व्यक्ति हैं उनका कोई लड़का नहीं था। हम दो बहिनें थीं। इसलिए पिता ने चाहा था कि किसी गरीब घर के लड़के को दामाद बनाकर घर लायें और उसे लिखा-पढ़ाकर आदमी बनायें। तदनुसार उन्होंने मेरे पति को लिखाया-पढ़ाया तो सही पर आदमी न बना पाये। मेरी बड़ी बहिन विधवा होकर घर ही पर थीं इन्हीं की हत्या कर पति फरार हो गये। यह कुकृत्य उन्होंने क्यों किया था अभी तुम बच्चे हो न समझोगे पर एक दिन समझोगे। जो कुछ भी हो कहो तो श्रीकान्त यह दुःख कितना बड़ा है! यह लज्जा कितनी मर्म भेदी है? फिर भी तुम्हारी दीदी ने सब सहा था पर पति होकर जिस अपमान की आग वे अपनी स्त्री के हृदय में जला गये उसकी ज्वाला आज भी शांत नहीं हुई। जाने दो। इस घटना के बाद सात बरस बीते तब फिर उनके दर्शन हुए। जैसा पोशाक में तुमने उन्हें देखा था उसी पोशाक में वे हमारे मकान के सामने साँप का खेल दिखाते रहे थे। उनको और कोई पहचान न पाया केवल मैंने पहचाना! मेरी आँखों को वे धोखा न दे सके। सुनती हूँ उन्होंने यह परम दुःसाहस का काम मेरे ही लिए किया था पर यह झूठी बात थी। फिर भी एक दिन गहरी रात में मैंने मकान का पिछला किवाड़ खोलकर पति के लिए घर छोड़ दिया। पर सबने सुना तथा जाना कि अन्नदा कुलत्यागिनी हो गई। इस कलंक का बोझ मुझे आमरण ढोना पड़ेगा क्योंकि जब तक पति जीवित थे मैं आत्मप्रकाश न कर सकी पिताजी को जानती थी वे किसी भी प्रकार अपनी कन्या के हत्यारे को क्षमा नहीं करते। और आज वह भय नहीं अब जाकर उनसे सब कह सकती हूँ पर आज कौन इस कहानी पर विश्वास करेगा। इसके सिवा पितृगृह में मेरा कोई स्थान नहीं है इसके अतिरिक्त मैं मुसलमानिन हूँ (क्योंकि वे मुसलमान हो गये थे)।"

कहना न होगा कि ऐसी अवस्था में अन्नदा दीदी समाजबहिष्कृत ना भले ही हों पर सतीत्व के प्राचीन मानदण्ड से भी अन्नदा दीदी से बढ़कर सती शायद पौराणिक साहित्य में भी खोज न मिले। अन्नदा दीदी ने सती बनने

बलात्कार के प्रथम संस्कार के धक्के से पहले मैं जरा तिलमिला गई थी, सम्हल न पाई थी इसीलिए भाग गई थी श्रीकान्त बाबू, नहीं तो इसे आप मेरी वास्तविक लज्जा न समझें" इत्यादि। अभया की बातचीत सुन-कर किरणमयी की ही बातचीत याद आती है। विद्रोहिणी नारी का वही तेजस्वी रूप उसमें भी दिखाई पड़ता है, पर अभया के प्रति किरणमयी से अधिक श्रद्धा इसलिये होती है कि अभया ने एक तो पति को एक वर्ष का मौका दिया दूसरे वह रोहिणी बाबू के (जो उसे प्यार करता था) साथ सचमुच पत्नी की तरह रहना चाहती थी किरणमयी तो बुद्धि तथा रूप से अभिभूत कर दिवाकर से खेल कर रह जाना चाहती थी। किरण-मयी के सम्बन्ध में एक और बात है कि वह मन-ही-मन प्रेम तो करती रही उपेन्द्र बाबू से पर गर्व में ठेस लगने के कारण दुष्टतावश (Perversity) दिवाकर को फुसलाकर रंगून भाग गई। शरत्चन्द्र ने चरित्रहीन में किरण-मयी के लिए पापिष्ठा आदि शब्द का व्यवहार किया है पर इसका कोई कारण नहीं मिलता कि 'चरित्रहीन' की पाण्डुलिपि को एक तिहाई देखकर द्विजेन्द्र बाबू ने क्यों लौटा दिया था तथा किरणमयी ने कौन-सा पाप किया था? फिर किरणमयी पापिष्ठा थी तो अभया क्या दूध की धुली हुई थी! फिर अभया के लिए उन्होंने पापिष्ठा आदि शब्द क्यों नहीं इस्ते-माल किया? 'श्रीकान्त' के प्रकाशन तक शरत्चन्द्र निडर हो चुके थे यही इसकी व्याख्या है। हम बाद को किरणमयी और अभया की सामाजिक क्रान्ति के सम्बन्ध में आलोचना करेंगे।

धीरेन बाबू 'श्रीकान्त' की अभया दीदी को शायद समाजबहिर्भूता नारियों की श्रेणी में रखें। अभया दीदी समाज के बाहर थी या भीतर यदि बाहर थी तो इससे समाज का छोटापन जाहिर होता है या अभया दीदी का पाठक अभया दीदी के मुँह से उनका विवरण सुनकर इसका निर्णय करें। वे श्रीकान्त के लिए लिख गई थी—

'श्रीकान्त तुम्हारी इस दुखिनी दीदी का नाम अभया है। पति का नाम मैं क्यों छुपा गई, यह इस विवरण के अन्त में पढ़ने पर तुम्हें खुद ही

ज्ञात हो जायगा। मेरे पिता धनी व्यक्ति हैं, उनका कोई लड़का नहीं था। हम दो बहिनें थीं। इसलिए पिता ने चाहा था कि किसी ग़रीब घर के लड़के को दामाद बनाकर घर लायें और उसे लिखा-पढ़ाकर आदमी बनायें। तदनुसार उन्होंने मेरे पति को लिखाया-पढ़ाया तो सही पर आदमी न बना पाये। मेरी बड़ी बहिन विधवा होकर घर ही पर थीं, उन्हीं की हत्या कर पति फ़रार हो गये। यह दुष्कृत्य उन्होंने क्यों किया था अभी तुम बच्चे हो न समझोगे पर एक दिन समझोगे। जो कुछ भी हो, कहो तो भौजाई यह दुख कितना बड़ा है! यह लज्जा कितनी मर्म भेदी है? फिर भी तुम्हारी दीदी ने सब सहा था पर पति होकर जिस अपमान की आग वे अपनी स्त्री के हृदय में जला गये उसकी ज्वाला आज भी शांत नहीं हुई। जाने दो। इस घटना के बाद सात बरस बीते तब फिर उनके दर्शन हुए। जैसी पोशाक में तुमने उन्हें देखा था उसी पोशाक में वे हमारे मकान के सामने साँप का खेल दिखला रहे थे। उनको और कोई पहचान न पाया केवल मैंने पहचाना! मेरी आँखों को वे धोखा न दे सके। सुनती हूँ उन्होंने यह परम दुस्साहस का काम मेरे ही लिए किया था पर यह झूठी बात थी। फिर भी एक दिन पहरी रात में मैंने मकान का पिछला किवाड़ खोलकर पति के लिए घर छोड़ दिया। पर सबने सुना तथा जाना कि अभया कुलत्यागिनी हो गई। इस कलंक का बोझ मुझे आमरण ढोना पड़ेगा क्योंकि जब तक पति जीवित थे मैं आत्मप्रकाश न कर सकी। पिताजी को जानती थी वे किसी भी प्रकार अपनी कन्या के हत्यारे को क्षमा नहीं करते। और आज वह भय नहीं अब जाकर उनसे सब कह सकती हूँ पर आज कौन इस कहानी पर विश्वास करेगा। इस हिन्दू समाज में मेरा कोई स्थान नहीं है इसके अतिरिक्त मैं मुसलमानिन हूँ (क्योंकि वे मुसलमान हो गये थे)।"

कहना न होगा कि ऐसी अवस्था में अभया दीदी समाजबहिष्कृता भले ही हों पर सतीत्व के प्राचीन मापदण्ड से भी अभया दीदी से बढ़कर सती शायद पौराणिक साहित्य में भी कोई न मिले। अभया दीदी ने सती बनने

के लिए समाज त्याग दिया, कुल त्याग दिया, यहाँ तक कि असती होने का कलंक भी अपने ऊपर ले लिया। रहा यह कि ऐसा करके उन्होंने अच्छा किया या बुरा, यह यहाँ विचार्य नहीं है, पर सती की उस प्राचीन धारणा को उन्होंने दृढ़ निबाहा जिसमें सब अवस्थाओं में पति ही सती का धर्म है। शरत्-साहित्य में अभया दीदी का चरित्र भी ऐसा है जो भुला नहीं जा सकता। मेरी तो यह धारणा है कि सतीत्व की मर्यादा में अभया दीदी के सामने सुरबाला का चरित्र भी फीका पड़ जाता है।

'चरित्रहीन' उपन्यास में सुरबाला का चरित्र आता है। वह उपेन्द्र की स्त्री है, पति को अपना देवता समझती है, पतिप्राणा है। शरत् बाबू को 'चरित्रहीन' उपन्यास के लिए गालियाँ क्यों दी गई हैं, यह मेरी समझ में नहीं आता क्योंकि इस उपन्यास में शरत् बाबू ने सुरबाला को जो किरणमयी के मुकाबले में सुरबाला से कहीं बढ़कर विदुषी तथा वाग्विलासिनी है, अधिक पवित्र तथा महिमामयी करके चित्रित किया है। तुलनात्मक रूप से सुरबाला को अधिक महिमामयी करके दिखलाने का प्रयत्न 'चरित्रहीन' में स्पष्ट तथा जागरूक (conscious) है। जब-जब इनमें टक्कर हुई है तब किरणमयी हार ही गई है। इसमें सन्देह नहीं कि सुरबाला औरों की अपेक्षा पृष्ठभूमि में रहती है, पर शरत् बाबू से जहाँ तक हो सका वह उज्ज्वल ही होकर सामने आई है। शरत् बाबू ने उसकी निश्छलता को किरणमयी की अद्भुत विद्याधीनता से तथा उसके शील को किरणमयी की वाग्मिता से कहीं बढ़कर दिखलाया है। सुरबाला बहुत ही धनी सम्भ्रान्त घराने की लड़की है। उसका पति भी भद्रलोक श्रेणी का ही नहीं वैयक्तिक रूप से स्वभाव से भी उस वर्ग के सब गुणों का अधिकारी है जो एक भद्र पुरुष के लिए अनिवार्य समझे जाते हैं। इसलिये किसी भी तरह से यह नहीं कहा जा सकता कि वह समाजबहिर्भूता है। अवश्य ही वह समाज के अन्दर है, पर वह सब होते हुए भी यह हर्गिज नहीं कहा जा सकता कि वह अभया दीदी से बढ़कर सती है। समाजान्तर्वर्तिता सुरबाला के सतीत्व की तुलना यदि प्रदीप से की जा सकती है तो अभया दीदी की तुलना

ध्रुवतारा से की जा सकती है जो भटके हुए को रास्ता दिखाता है।

'गृहदाह' की अचला एक प्रसंग ही टाईप की है। सुरेश और महिम दो प्रेमियों के बीच वह उधेड़बुन में पड़ जाती है यहाँ तक कि महिम के साथ विवाह करने पर भी वह अपने को समझ नहीं पाती। जब सुरेश को देखती है तो उसकी ओर बढ़ती है। अंत में सुरेश उसको लेकर भाग निकलता है पहले वह छटपटाती है पर सुरेश की भयंकर बीमारी से पसीज कर उसके साथ पत्नी के रूप में तो नहीं हाँ मित्र के रूप में रहती है, इत्यादि। इस चरित्र की विचित्रता इसी में है कि वह इधर से उधर डगमगाती है। इसी को लेकर इस उपन्यास के रस में परिपक्वता आती है। यही इस उपन्यास का मूल्य है।

'पल्ली-समाज' की रमा एक बाल-विधवा युवती स्त्री है जो अन्त तक उधेड़बुन की शिकार बनी रहती है। वह स्वभाव से प्रेमशीला तथा सत्य-पथ पर रहने की चेष्टा करने वाली है पर समाज के दबाव में पड़कर सत्य से यहाँ तक डिग जाती है कि झूठी गवाही देकर उसी रमेश को जेल भिजवाती है जिसको शायद वह दुनिया में सब से अधिक चाहती है। अवश्य विधवा होने के कारण वह अपने प्रेम को अपने निकट भी अस्वीकार करती है। रमा कदाचित् उतनी कमजोर नहीं है पर शायद ग्राम्य समाज के भयंकर दबाव को स्पष्ट करना ही शरत् बाबू का अभिप्राय था।

'दत्ता' की विजया उतनी कमजोर नहीं है फिर भी वह इतनी कमजोर है कि यदि दयाल बीच में न पड़ता तो वह अपने प्यारे नरेन्द्र से विवाह न कर धूर्त रासबिहारी के पुत्र से ही विवाह कर बैठती।

'बड़ी दीदी' की माधवी शरत्चन्द्र की एक बहुत ही कवित्वपूर्ण सृष्टि है। मालूम होता है कि युवक कलाकार शरत्चन्द्र ने अपने हृदय का सारा मधु इसमें उड़ेल दिया है। माधवी में किशोरी की क्रीड़ाशील कल्पना यौवन की मधुमय प्यास हिन्दू विधवा की व्रीड़ा तथा सेवा करके अपने को परिपूर्ण करने की इच्छा मूर्त हो उठी है। उसका हृदय मधु से इतना सराबोर है कि किंचित् बयार से भी वह छलक उठता है। सुरेन्द्र जैसे गैर

जिम्मेदार तथा अपने पैर पर खड़े न हो सकने वाले सुन्दर युवक को पास पाकर वह जोर से उमक उठता है। यह कहना गलत होगा कि सुरेन्द्र के प्रति उसका आकर्षण केवल सुन्दर आदम के प्रति सुखी होवा का ही स्वाभाविक आकर्षण है। सच बात तो यह है माधवी का हृदय केवल पत्नी होने से ही नहीं माता होने से भी वंचित है। सुरेन्द्र के एक बड़ा लड़का (big boy) मात्र होने के कारण उसकी देख रेख कर माधवी के हृदय के वात्सल्य की बुभुक्षा भी परितृप्त होती है। इसलिए सुरेन्द्र के प्रति माधवी का आकर्षण एक जटिल वस्तु है। इसी जटिलता को ठीक-ठीक व्यक्त करने में ही शरत्चन्द्र की कला की सार्थकता है।

'बड़ी दीदी' में शान्ति ममत्व से रहकर उपन्यास के रस को परिपक्व करती है मानो यही उसका एकमात्र करणीय (role) है। वह स्वयं कम स्पष्ट होती है दूसरों को स्पष्ट करती है तथा जहाँ-तहाँ साँस है उसे भरती है। शरत् बाबू के उपन्यासों में ऐसी पात्रियाँ कई हैं। 'चरित्रहीन' की सरोजिनी ऐसी ही है। सरोजिनी ने जिस दिन से सतीश को देखा उसी दिन से वह उस पर अपना दिल वार चुकी। इसका कोई प्रमाण नहीं है कि सतीश के प्रति उसका प्रेम सतीश के प्रति सावित्री के प्रेम से किसी प्रकार निकृष्ट है, फिर भी वह पश्चाद्भूमि में ही रहती है। अन्त में उसी से सतीश का विवाह होता है। सरोजिनी मानो इसी लिए पैदा हुई थी तथा उसका प्रेम भी जैसे इसीलिए था कि वह एक नाटकीय मुहूर्त में आये तथा सावित्री और सतीश को एक दूसरे से अलग होने में मदद करे। सरोजिनी ने इस प्रकार पश्चाद्भूमि में रहकर सतीश और सावित्री के चरित्र को स्पष्ट किया।

'देवदास' की चन्द्रमुखी भी इसी श्रेणी की पात्री है। वह पार्वती और देवदास के बीच में खड़ी होने के लिए नहीं आती बल्कि देवदास तथा पार्वती को स्पष्ट करने के लिये ही सामने आती है। जब पार्वती अपने वृद्ध पति के पके सिर पर हाथ रखकर कहती है—"मैंने लड़की को बुलाया है" लड़की से मतलब उसकी मरी हुई सौत की लड़की से है, तो हम जानते हैं

कि उसके इस कथन में कोई प्यार नहीं है समस्त हृदय से वह देवदास को ही चाहती है। उसी प्रकार जब देवदास चन्द्रमुखी या अन्य किसी वेश्या के ओठ में ओठ लगाकर पड़ा रहता है तो हम जानते हैं कि इस आलिङ्गन में कोई प्रेम नहीं यह तो हलाहल है। अवश्य चन्द्रमुखी के प्रेम से उसके प्रति देवदास का प्रेम भी बाद को जगा था जिसका वर्णन पहले आ चुका है। "उसके मन में दोनों अगल-बगल विराजमान हैं" पर क्या चन्द्रमुखी के प्रति उसका प्रेम सचमुच जगा था? इसमें सन्देह है क्योंकि वह मरने के लिए पार्वती के दर पर ही गया। इस प्रकार चन्द्रमुखी केवल देवदास को उभाड़ने—स्पष्ट करने के लिए आती है।

अब हम शरत्चन्द्र की नायिकाओं का कुछ थोड़ा बहुत परिचय पा कर चुके। इसमें संदेह नहीं कि उनके उपन्यास नारी-चरित्र-प्रधान हैं। उनके नारी-चरित्र उनके पुरुष चरित्रों से कहीं ज्यादा जोरदार हैं। सावित्री किरणमयी अभया कमला माधवी सुरबाला राजलक्ष्मी चन्द्रमुखी इत्यादि एक से एक अद्भुत चरित्र हैं जो पाठक के हृदय-पट पर अपने को अंकित कर देते हैं।

इन्हीं कारणों से बंगाल की नारियों ने शरत्चन्द्र में ऐसी विभूति देखी जिसने उनको पालतू पशु की अवस्था से उठाकर मनुष्यता की मर्यादा दी। शरत्चन्द्र की ५७वीं जन्मतिथि के उपलक्ष्य में बंगाल के सब नारी-संघों की ओर से जो अभिनन्दन दिया गया उसमें कहा गया—

"पराधीन देश के अवनतिशील समाज की असहाया अन्तःपुरचारिणियों के हृदय की मूक मर्मान्त-वेदना को तुमने भाषा में मूर्त कर दिया है। अपनी निविड़ सहानुभूति ढालकर तुमने उनके क्षुब्ध-क्षतिपूर्ण जीवन के सुख दुःखों की सब अनुभूतियों को साहित्य में सत्य करके प्रत्यक्ष कर दिया है। तुम्हारी अनाविष्ट दृष्टि, सूक्ष्म पर्यवेक्षण-सामर्थ्य सुगम्भीर उपलब्धि शक्ति तथा विचित्र मानव-चरित्र की मर्मस्पर्शी अभिज्ञता ने निभृत नारी-चित्त की निगूढ़ प्रकृति का गुप्ततम सुराग पा लिया है। हे नारी चरित्र के परम रहस्यज्ञाता हम लोग तुम्हारी वन्दना करती हैं।

सब तरह का मानापमान तथा सब तरह की हीनता की हालत में भी नारी की प्राकृतिक विशेषतायें सब देशों के सभी समाजों में मौजूद हैं तुमने उसके अकृत्रिम रूप को प्रत्यक्ष किया है उसकी सत्यप्रकृति का अध्ययन किया है। हे हमारियों के अंतर्यामी हम तुम्हारी वन्दना करती हैं।

आज के इस विशेष दिन में हम यही बताने आई हैं कि हम तुम्हारी प्रतिभा को वरण करती हैं। हम लोग तुम पर श्रद्धा करती हैं हम तुमको प्यार करती हैं। हम आज तुमको अपना ही करके समझती हैं। हे नारियों के परम श्रद्धेय मित्र तुम हम लोगों के परम प्रिय हो तुम हम लोगों के परम आत्मीय हो—हम तुम्हारी वन्दना करती हैं।"

देश की नारियों ने शरत्चन्द्र को जिन शब्दों में अभिनन्दित किया वैसी प्रशंसा कदाचित् किसी देश के किसी साहित्यिक को प्राप्त नहीं हुई।

शरत्चन्द्र किस ढङ्ग से अपने उपन्यासों को लिखते थे इसका कुछ विवरण देकर यह अध्याय समाप्त किया जायगा। शरत्चन्द्र को उपन्यास लिखने में प्लाट या कथानक की कमी कभी महसूस नहीं हुई। अपने यवारागर्द जीवन में वे सैकड़ों तरह के लोगों के सम्पर्क में आये यहाँ तक कि स्वयं उन्हीं लोगों की तरह बनकर रहे फिर उन्हें प्लाट की कमी क्यों होती? वे गाँव में रहे शहर में रहे देश में रहे विदेश में रहे, पराश्रित रहे, साधु रहे शराबी-कबाबी रहे कुछ दिन तक कांग्रेस में भी रहे क्रान्तिकारियों के हमदर्द रहे, वे क्या नहीं रहे पर जैसा कि उन्होंने लिखा है सब तरह की सोसायटी में रहते हुए भी वे हमेशा अनुभव करते रहे कि वे उनमें नहीं हैं। कलाकार की यह एकाकिता बहुत से कलाकारों की विदित पता है और शरत्चन्द्र की रचनाओं में हम यद्यपि दलितों की विशेषकर दलिता नारियों की आवाज सुन सकते हैं, फिर भी इन सारे क्रन्दनों को कोई दिशा न दे सकने के कारण तथा उसी क्रन्दन से करीब-करीब मनोरंजन का एकमात्र उद्देश्य सिद्ध करने के प्रयत्न के कारण उनकी कला पूर्व के सब लेखकों की कला की अपेक्षा जनता के अधिक नजदीक की चीज

होने पर भी अधिकांशतः कथा समस्या पेश करके ही रह गई है।

शरत्चन्द्र ने मध्यवित्त श्रेणी की नारियों के दुख-सुख को बहुत खूब व्यक्त किया है। 'अरक्षणीया' उपन्यास में उन्होंने मध्यवित्त श्रेणी की लड़कियों के विवाह को लेकर उनके अभिभावकों को तथा उनको बुरी तरह परेशान होने की दशा को बड़ी खूबी से दर्शाया है। हरेक मध्यवित्त गृहस्थ के घर में बड़ी लड़की एक समस्या के रूप में होती है इसमें कोई संदेह नहीं। शरत्चन्द्र ने मध्यवित्तों की लड़की रूपिणी इस भाग्य की ग्लानि तथा दुःख की विराटता को एक श्रेष्ठ कलाकार की तरह दिखलाया है फिर भी उन्होंने मध्यवित्त श्रेणी की सबसे मुख्य समस्या पर रोशनी नहीं डाली है यह हम बाद को दिखलायेंगे।

शरत् बाबू को कभी प्लाट की कमी नहीं पड़ी यह बात सच होते हुए भी हमें यह ताज्जुब है कि जिस गरीबी के कारण शरत् बाबू एफ़० ए० के इम्तहान में नहीं बैठ सके जिस गरीबी के कारण उन्हें अपने भाई तथा बहिनों को रिश्तेदारों में एक तरह से बाँट देना पड़ा तथा जिस गरीबी में बराबर गोता खाते हुए वे इधर से उधर भटकते फिरे उसकी तथा मध्यवित्त श्रेणी की सबसे बड़ी समस्या बेकारी का उनके उपन्यासों में कहीं पता नहीं। 'बड़ी दीदी' का सुरेन्द्र घर से भागकर कलकत्ता गया था कुछ दिन वह बेकार अवश्य रहा पर मालूम होता है उसके पास काफी रुपये थे उसने कभी भूख तथा फ़ाक़े को अपने चेहरे की ओर घूरते नहीं देखा। बाद को तो उसे बड़ी दीदी के यहाँ आश्रय ही मिल गया। जब वहाँ से निकाल दिया गया तो शरत् बाबू ने उसको मोटर से दबवा दिया वह अस्पताल चला गया जहाँ से उसका बाप उसे ले गया। इसलिये बेकारी का वहाँ सवाल ही नहीं आता।

हाँ 'पल्ली-समाज' में गरीबी से कुछ भिन्न अवश्य है पर वहाँ गरीबी के अनिवार्य नतीजे के रूप में ग्रामवासियों के दुर्गुणों को जैसे एक-दूसरे से ईर्ष्या बेईमानी झूठी गवाही तथा कुसंस्कार पर ज़ोर न देकर शरत् बाबू ने इनका मुख्यतः अविद्या से सम्बन्ध बताया है जो सत्य होते हुए भी अन्तिम सत्य नहीं है।

# आर्थिक पहलू का चित्रण और पल्ली-समाज

शरत्चन्द्र के उपन्यासों तथा कहानियों में समसामयिक समाज का आर्थिक पहलू भी यत्र-तत्र स्पष्ट है फिर भी यह उनकी विशिष्टता नहीं है। सुबोध चन्द्र सेनगुप्त ने इसकी एक तरह से सफाई देते हुए कहा है कि "उनकी रचनाओं की एक प्रधान विशेषता यह है कि सामाजिक शक्ति के *पीड़न के कारण व्यक्ति का व्यक्तित्व क्षुण्ण नहीं हुआ। यह भी स्मरण* रखना पड़ेगा कि उन्होंने प्रधान रूप में समाजपतित पर अपनी नीति संबंधी धारणा से चोट पहुँचाई है न कि अर्थनीति के द्वारा। फिर भी हमारा देश एक गरीब देश है और ऐसा नहीं कि हमारी दीनता का हाहाकार उनकी रचना में अभिव्यक्त नहीं हुआ। 'विराजबहू' 'अरक्षणीया' 'महेश' 'शेष प्रश्न' 'हरिलक्ष्मी' 'अभागी का स्वर्ग' इत्यादि रचनाओं में गरीबी का चित्रण है पर इस ओर शरत्-प्रतिभा की विशेषता बहुत स्पष्ट नहीं हुई। *'शेष प्रश्न' की कमल और हरिलक्ष्मी की मझली बहू अपनी* गरीबी से म्लान नहीं हो पाती बल्कि उनकी गरीबी विजययुक्त हुई है। जो कुछ भी हो शरत्चन्द्र चाहते तो निपुणता के साथ गरीबी का सुन्दर चित्रण कर सकते थे इसका प्रमाण उल्लिखित कहानियों और उपन्यासों में मिल सकता है पर उनके प्रधान उपन्यासों में गरीबी का प्रभाव नहीं है ऐसा कहना ही उपयुक्त होगा।

इस प्रसंग में बर्नार्ड शा ने कहा है—'शेक्सपियर के चरित्र मुख्यत *निठल्ले वर्ग के सदस्य हैं। यही मंतव्य भी हैरिस के नाटकों तथा मेरे नाटकों* के सम्बन्ध में भी प्रयुक्त है। औद्योगिक दासता उस साहसिकता की

स्वतन्त्रता उस वैयक्तिक मार्जितता तथा बौद्धिक संस्कृति के साथ नप नहीं सकती जिसकी मांग उच्चतर तथा सूक्ष्मतर मानक से की जाती है।"

फिर भी शरत्चन्द्र के कई अन्य उपन्यासों में भी गरीबी एक घटक के रूप में आती है। श्री सेनगुप्त ने यह बतलाया है कि 'पल्ली-समाज' में गरीबी भी है साथ ही आर्थिक प्रतिद्वंद्विता भी है पर रमा और रमेश के हृदय के आदान-प्रदान के व्यापार से उसका कोई विशेष संबंध नहीं है और यदि वह घटक भी है तो गौण घटक। हाँ शरत्चन्द्र के एक प्रधान उपन्यास 'चरित्रहीन' में हम यह देखते हैं कि किरणमयी अनंग डाक्टर के प्रति आकृष्ट होती है इसमें शायद आर्थिक तत्त्व भी हैं। पर यह बताया गया है कि यह भी गौण था। श्री सेनगुप्त बताते हैं—"किरणमयी में उत्कट प्रेम लिप्सा थी और साथ ही डाक्टर पर उसकी एकान्त निर्भरता भी थी। पर यह अधीनता किस प्रकार से मानव-जीवन को प्रतिहत करती है शरत्चन्द्र ने उस विषय पर कोई भी आलोचना नहीं की।" पर क्या यह बात सही है? बाद को आकर उपेन्द्र ने किरणमयी के पति हारान बाबू की चिकित्सा का सारा भार सम्हाल लिया और अनंग डाक्टर पृष्ठभूमि में चला गया। यह सही है पर इस क्षेत्र में भी उपेन्द्र के प्रति जो भावना पैदा होती है वह सम्पूर्ण रूप से आर्थिक प्रभाव से मुक्त थी यह कैसे कहा जा सकता है?

जो कुछ भी हो श्री सेनगुप्त ने शरत्-साहित्य में आर्थिक पहलू के चित्रण के अभाव की जिस प्रकार से मैत्री की है वह बिलकुल ही हल्की हो ऐसी बात नहीं है क्योंकि बहुत-से लेखक इसी रूप में सोचते हैं। इसके अलावा सबसे बड़ी बात है जिस लेखक ने जिस तरफ दृष्टि डाली वह उस ही चित्रित कर सकता था। यहाँ तक तो ठीक है पर जब इससे आगे बढ़कर यह कहने की चेष्टा की जाती है कि जिन लोगों में आर्थिक द्वन्द्व की प्रधानता रही है वे ऊँचे दर्जे के कलाकार नहीं हो सकते वहाँ यह एक असहनीय बात हो जाती है। दुःख है कि श्री सेनगुप्त ने यही किया है और उन्होंने आगे चलकर कहा है—

'यदि समाज के जटिल प्रश्न उनके लिए मुख्य हो जाते और वे पुलिस जोर के विचार, सूदखोर के अत्याचार और मजदूरों की हड़ताल में ही रम जाते या तरह-तरह की धर्महीन शक्ति के संघर्षों में पड़कर नर-नारी के हृदय का माधुर्य लुप्त हो जाता। उनके साहित्य में वर्तमान युग की विशेष छाप नहीं है। उन्होंने समाज को महज युग-युगान्तर से चली आई हुई नीति की दृष्टि से देखा।

यह कथन बिलकुल ही सहनीय नहीं है और इस प्रकार जो लोग शरत्चन्द्र की तरफी करते हैं वे उन्हें और नीचे ही उतारते हैं। गोर्की आदि दर्जनों ऐसे लेखकों के नाम लिए जाते हैं जिन्होंने गरीबी वर्ग-संघर्ष आदि का चित्रण किया फिर भी उनका कलापक्ष कमजोर नहीं हो पाया। हृदय का यह कथित माधुर्य क्या बला है? क्या 'महेश' कहानी में हृदय का माधर्य शरत् की अन्य रचनाओं से किसी प्रकार कम है? इस प्रकार से किसी लेखक या कलाकार की प्रशंसा करना प्रशंसक के मानसिक स्तर की निम्नता ही सूचित करता है। इस संबंध में इतना ही कहना यथेष्ट था कि यदि शरत्चन्द्र चाहते और उस तरफ उनकी रुचि होती तो वे उस क्षेत्र में भी अच्छी-से अच्छी रचना प्रस्तुत कर सकते थे।

शरत्चन्द्र के उपन्यासों में 'पल्ली-समाज' एक विशेष स्थान रखता है इसलिये हम उसकी जरा विस्तृत आलोचना करेंगे। इस उपन्यास के नाम से ही जाहिर है कि शरत् बाबू ने इसमें गाँवों की हालत दिखलायी है। यों तो शरत्चन्द्र के कई उपन्यासों का सम्बन्ध ग्रामों से है जैसे 'अरक्षणीया' 'बामुनर मेये' 'देवदास' इत्यादि पर पल्ली-समाज में ग्रामों की गिरावट की ओर अधिक व्यापक रूप से दृष्टि आकर्षित की गई है।

रमेश ने अपनी सारी शिक्षा शहर में समाप्त की। वह पिता की मृत्यु पर उनका श्राद्ध करने गाम में आता है। चाहे उसके बाप के साथ किसी का कुछ भी सम्बन्ध रहा हो पर वह निश्चय करता है कि घर-घर जाकर नम्रता के साथ सबको बुलाकर बड़ी धूमधाम के साथ श्राद्ध का कार्य सम्पन्न करेगा पर वेणी घोषाल जो उसका चचेरा भाई लगता है इसी में

उसका बुरा उद्देश्य देखता है। वह गाँव के समाज का शिरोमणि है। उसे रमेश की इस उदारता में बदमाशी दिखाई पड़ती है। विधवा नवयुवती रमा तथा उसकी मौसी वेणी घोषाल के निकट प्रतिज्ञा करती हैं कि यदि रमेश उन्हें निमन्त्रित करने उनके घर आया तो उसका अपमान करके उसे निकाल दिया जायगा। मौसी यों तो दिन भर पूजा-पाठ करती है किन्तु परनिन्दा की भनक कान में पड़ते ही या उसकी गुंजाइश मालूम पड़ती है तो सब काम छोड़कर उसमें जुट जाती है भला ऐसे मौके पर क्यों चूकती वह भी इस सलाह में शामिल होती है। वेणी यह बात करके हँसने लगता है, इतने में स्वयं रमेश निमन्त्रण देने आता है। वेणी उसे देखकर ही पीठ दिखा देता है रमा जो एक कमजोर लड़की है और मन-ही-मन समझती है कि रमेश ठीक है छिपकिपाकर कुशल प्रश्न करती है पर मौसी चूकती नहीं। वह कह बैठती है—'तुम भी कमाल के लड़के हो न? तुम एक गृहस्थ के घर बिना कहे-सुने कैसे घुस आये?' इत्यादि। पाठक को मालूम होना चाहिये रमेश रमा से लड़कपन से परिचित था साथ ही पहले कभी रमा से उसकी शादी की बात भी चली थी।

रमेश ने कुछ प्रतिवाद भी किया पर मौसी ने रमेश से कह दिया कि रमा उनके घर में पैर धुलवाने भी नहीं जायगी इत्यादि। रमेश क्या करता चला जाता है। कुछ लोग खैरख्वाही करने आते हैं रमेश सोचता है भला कम से कम कुछ व्यक्ति तो श्राद्ध में साथ देंगे पर जल्दी ही उसका भ्रान्तिभंग होता है क्योंकि वह अपने इन्हीं खैरख्वाहों को वेणी घोषाल के घर में छिपकर वेणी से सलाह करते तथा अपनी बुराई करते सुन लेता है। वेणी की माँ बड़ी बुद्धिमती है वह रमेश को गुप्त रूप से यहाँ तक कि एक बार जब कि श्राद्ध-मंडप में दीनू भट्टाचार्य की लड़की के घुसने पर लोग कुछ आपत्ति करते हैं और पंक्ति से उठ खड़े होते हैं तो वह सामने आती है और कहती है—'गांगुली महाशय को मना करो कि वे किसी को डर न दिखावें और हालदार महाशय से कहो कि इसने सब को आदरपूर्वक बुलाया है मुखर्जी को भी यदि इस पर किसी को आपत्ति

हो तो वह उठकर कहीं और चला जाय।

इस प्रकार रमेश को उस ग्राम्य समाज का व्यावहारिक तजर्बा होता जाता है जिसे पवित्र हिन्दू समाज कहा जाता है, जो लोग भ्यौता खाने आते हैं वे घर के सब बच्चों को लाते हैं, बेहिसाब खाते हैं फिर बाँध कर भी ले जाते हैं।

एक तालाब में रमेश का हिस्सा है, पर वह उदारतावश उसकी मछलियों में कोई हिस्सा नहीं बटाता इस पर गाँव के लोग उसे बेवकूफ या कायर समझते हैं। रमेश रमा को जिस रूप में जानता था उसमें उसे विश्वास है कि रमा कभी किसी दूसरे के हिस्से की चीज में हाथ न लगायेगी। जब इस तालाब में उसको बिना हिस्सा दिये ही मछली पकड़ी जाती है उस समय वह अपने नौकर भजुआ को भेजता है—'जाओ जो चाहे कुछ भी कहे मैं निश्चय जानता हूँ मौसी (रमा) कभी झूठी बात नहीं कहेगी। वह कभी भी दूसरे की चीज नहीं छूएगी।" रमा के मन की बात कुछ भी हो वह एकत्रित लोगों के दबाव में आकर बिलकुल इसके विपरीत आचरण करती है।

रमेश सब से अधिक इसी बात से ग्राम-सुधार के सम्बन्ध में निराश हो गया। वह गाँव छोड़ कर चले जाने को उद्यत हो जाता है। यह बात वह अपनी चाची से कहता है। चाची कहती है कि इतने से निराश होना गलत होगा। वह बहुत निराश होते हुए भी एक बार और कोशिश कर देखने के लिए रह जाता है। वह चाहता है गाँव के रास्ते सुधारे जायें विशेषकर स्टेशन जाने का रास्ता बहुत खराब है वह उसे सुधारना चाहता है। इसके लिए २ ०) रुपये की जरूरत है वह चन्दे का रजिस्टर बनाकर घर घर जाता है पर कई दिन तक दौड़ते रहने पर भी आठ-दस पैसे तक नहीं मिले। उसने अपने कानों से एक जगह लोगों को आपस में बातचीत करते हुए सुना—तुम लोग कोई एक पैसा भी न देना देखते नहीं हो इसमें उसी की गर्ज सब से ज्यादा है। बात यह है उसे अंग्रेजी जूता पहिने हुए चर्रमर्र करके चलना है न। कोई कुछ न दोगे वह आप ही अपने खर्च

से सब मरम्मत करा देगा। फिर इतने दिन तक बच्चा जब नहीं थे तो क्या हम लोग स्टेशन नहीं जाते थे। दूसरे ने कहा—अरे भाई जरा ठहरो तो चट्टोपाध्याय महाशय ने कहा है कि इसके सिर पर हाथ फेर कर शीतला जी का पाठ भी जमवा लिया जायगा जरा बाबू-बाबू कहते रहो सब काम बन जायगा।

इस बात से रमेश का जी पक जाता है, और वह फिर गाँव छोड़-छाड़ कर चल जाने को तयार हो जाता है पर चाची फिर बीच में पड़ती है। वह कहती है—ये कितने दुखी तथा दुर्बल हैं रमेश यदि तुम इसे जान जाओ तो इन पर क्रोध करते तुम्हें लज्जा होगी। ईश्वर ने यदि दया करके तुम्हें भेजा ही है तो तुम इनमें रहो न बेटा!

—पर चाची ये तो हमें चाहते नहीं।

—इसी से तो तुम्हें समझना चाहिये कि ये इतने अहमक सर्वथा तुम्हारे क्रोध और अभिमान के अयोग्य हैं।

रमेश ने घर जाकर ठंडे दिमाग से जब इन बातों पर विचार किया तो वह समझ गया कि सचमुच वह क्रोध किन पर करे। वह रहने लगा।

रमेश जब चाची के यहाँ लौटता है तो उसके पास एक रोता हुआ लड़का आता है। पूछने पर ज्ञात होता है कि लड़के का बाप मरा पड़ा है, पर किसी कारण से बिरादरी वालों ने उसके पिता का हुक्का-पानी बंद कर दिया था इसलिये मरने पर उसकी लाश पड़ी है, कोई उसे उठाने को तैयार नहीं होता। अब लाश उठवाने के लिए इस बात की जरूरत है कि मरा हुआ आदमी प्रायश्चित करे। समाज का यही न्याय है। जिस बात को उसने जीते जी करने से इनकार किया अब समाज उसी बात को मरने के बाद करने के लिए उसे मजबूर कर रहा है नहीं तो उसकी लाश को चील-कौवे घसीटकर नोच खायेंगे केवल यही नहीं समाज की पुलिस उसका श्राद्ध आदि होने नहीं देगी इस प्रकार उसने अपने जीवन में कर्म चाहे कैसे भी किये हों परलोक का पासपोर्ट उसे न मिलेगा। रोते हुए लड़के को बाप के परलोक की शायद इतनी फिक्र नहीं है पर बाप का

थोड़ा-सा जो इहलोक बाकी रह गया है उसी की फिक्र है और दुःख है पितृवियोग का। वह समाज के धुरन्धरों के पास जाता है, तो एक जगह उसे चार पैसे दूसरी जगह उसे चवन्नी मिलती है पर प्रायश्चित्त करने के लिए कम से कम भी चवन्नियाँ चाहिएँ। आश्चर्य यह है कि मरने वालों की नाड़ी देख कर रुपया लेने के लिए डाक्टरों की निंदा की जाती है पर इन मुफ्तखोर पुरोहितों के लिए यह कोई बुरी बात नहीं कि वे मृत्यु का फायदा उठा कर सम्बन्धियों से दक्षिणा आदि ऐंठें। यह इसलिए कि पुरोहित या ब्राह्मण तो ऐसा करके स्वर्ग का द्वार खोल देते हैं। अस्तु।

रमेश इस प्रायश्चित्त की व्यवस्था कर देता है उस लड़के को फिर कहीं जाना नहीं पड़ता।

रमेश तारकेश्वर जाता है तो वहाँ मन्दिर में रमा से भेंट होती है पर वह रमा को पहचानता नहीं है। रमा रमेश को स्वयं बुला कर परिचय देती है और ले जाती है वहाँ उसको बड़े आदर के साथ खिलाती है फिर दरी बिछा कर सोने के लिए कहकर दूसरे कमरे में चली जाती है। रमेश को इतने आदर से कभी किसी ने खिलाया है यह उसे स्मरण नहीं होता उसको भोजन की परितृप्ति के सुख का पहली ही बार जैसे अनुभव होता है। रमा का यह निर्मलरूप लेकिन तारकेश्वर में ही है। गाँव में लौटकर समाज के दबाव तथा दल-बन्दी में पड़कर वह जैसी हो जाती है यह बात मैं बताऊँगा।

दो दिन तक अविश्रान्त रूप से वर्षा होने के कारण 'सौ बीघ का मैदान' पानी से डूब जाता है। गाँव के प्रत्येक गृहस्थ की इस मैदान में कुछ न कुछ जमीन है सौ बीघे का मैदान नाम होने पर भी यह सौ बीघे से कहीं ऊपर है तथा सारे गाँव की खेती एक तरह से इसी पर निर्भर है। इस मैदान का पानी निकाला जा सकता है पर इसकी निकासी की तरफ जमींदारों का एक ताल है। सौ बीघे का मैदान और इस ताल के बीच में एक बाँध है यदि इस बाँध को खोल दिया जाय तो ताल की सब मछली निकल जायगी जिससे जमींदारों को कोई दो-तीन सौ रुपये का नुकसान

होता है। पहले तो किसान जमींदार बेनी बाबू के यहाँ जाते हैं पर वे कुछ भी करने से इनकार करते हैं तब वे रमेश के पास जाते हैं। रमेश सीधा बेनी के पास जाता है पर बेनी रमेश से कहता है—इस दो सौ रुपयों का नुकसान कौन बर्दाश्त करेगा? तुम दोगे?

सच बात तो यह है कि जितना नुकसान बेनी का होगा उतना ही रमेश का होगा क्योंकि इस ताल में बेनी रमा और रमेश का बराबर हिस्सा है। रमेश इस नुकसान के लिए तैयार है पर इस बात के लिए तैयार नहीं कि अपनी जेब से दूसरे हिस्सेदारों का नुकसान भी पूरा करे। वह कहता है—जरा सोच तो देखिए हम लोगों के तीन घरों का दो-तीन सौ रुपये का नुकसान तो जरूर होगा पर यदि हम इसको बचाते जाते हैं तो गरीबों का कम से कम छः-सात हजार रुपये का नुकसान होता है। इस पर बेनी कहता है—नुकसान सात नहीं सत्तर हजार हो तो भी हम परवाह नहीं करते।

तब रमेश यह उम्मीद लेकर रमा के यहाँ जाता है कि वह अवश्य ही गरीबों की पुकार को सुन लेगी पर वहाँ घोर निराशा का सामना होता है। इस प्रकार आशा भंग होने पर वह इतना क्षुब्ध हो जाता है कि रमा को नीच कमीनी आदि कह बैठता है साथ ही कहता है—मैं जबरदस्ती बाँध काट दूँगा जिसकी मजाल हो आकर रोक ले। रमा कहती है—आपने मेरे ही घर में मेरा अपमान किया मैंने कुछ न कहा पर जबरदस्ती बाँध काट देने की चेष्टा आप न करें क्योंकि इतनी अपमानित होने पर भी आपसे लड़ने को जी नहीं चाहता है। रमेश कहता है—लड़ने को मेरा भी जी नहीं चाहता पर साथ ही तुमसे सद्भाव रखने का भी कोई मूल्य हमें नहीं मालूम देता और वह चला जाता है।

रमा अकबर नाम के अपने एक प्रसिद्ध लठैत को बाँध पर पहरा देने के लिए भेजती है। वह अपने दो जवान लड़कों के साथ पहरे पर जाता है। रमेश अपने नौकर को लेकर बाँध काटने जाता है पर वहाँ पहरा देखता है। रमेश का नौकर एक ही लाठी में मिट्टी पर लोट जाता है तब

रमेश स्वयं लाठी लेकर आगे बढ़ता है और सब को भगा देता है। गाँव कट जाता है। अकबर आकर वेणी से सब हाल कहता है तो वेणी कहता है—जाओ तुम लोगों की चोट दिखाकर थाने में रपट लिखवाओ पर अकबर इस बात पर राजी नहीं होता है वह कहता है—पाँच गाँव के लोग मुझे सर्दार कहते हैं मैं किस मुँह से रपट लिखवाऊँ कि मैं पिट गया। वेणी के कहने पर रमा ने भी अकबर से वेणी बाबू की बात मानने को कहा पर वह ऐसा करने से साफ इनकार करके चला गया। वेणी क्रोध में गालियाँ देता रहा रमा चुप रही। रमा यद्यपि हारी हुई थी फिर भी जो कुछ हुआ उससे जैसे उसके हृदय पर से एक भारी पत्थर उतर गया पर वह इसका कोई कारण नहीं समझ पाती।

एक दिन कुछ मुसलमान किसानों ने आकर रमेश से शिकायत की कि गाँव की पाठशाला में उनके लड़कों को भर्ती नहीं किया जाता। रमेश ने ही इस स्कूल के लिए नया मकान बनाकर तथा अन्य हर प्रकार से सहायता करके उसे एक नया रूप तथा जीवन दिया था इसलिए इस बात को सुनकर उसे बड़ा क्रोध आया और वह फौरन अपने सामने मुसलमान के लड़कों को भर्ती कराने के लिए तैयार हो गया पर मुसलमानों ने कहा कि इससे झगड़ा बढ़ेगा न कि घटेगा इसलिये बाबू की बड़ी मेहरबानी होगी यदि हमारा ही एक अलग स्कूल खोलवा दें। रमेश भी लड़ते-लड़ते थक गया था इसलिए उसने यही करना स्वीकार कर लिया।

एक दिन रमा बिना कुछ इत्तला दिये अपने छोटे भाई को साथ में लेकर रमेश के यहाँ जा पहुँची। रमेश अपने को न रोक सका। उसने बताया कि मैं लड़कपन से ही तुम्हें प्यार करता हूँ मैंने सुना था कि तुम्हीं से मेरी शादी होगी किन्तु जब बचपन में ही सुना कि यह शादी टूट गई, तो मैं अपने आँसुओं को न रोक सका था।

इसी प्रकार वह न मालूम क्या-क्या कह रहा था इतने में एक व्यक्ति ने आकर खबर दी कि पुलिस ने उसके नौकर को एक डकैती के सिलसिले

र कर लिया। रमेश ने रमा को पिछले दरवाजे से निकल जाने

के लिए कहा क्योंकि समाजी का डर था। पर रमा अड़ गई बोली—आपको तो कुछ खतरा नहीं है? मैं नहीं जाऊँगी। फिर रमेश ने समझाया तो वह चली गई।

रमेश का नौकर दो महीने से गिरफ्तार है। भैरव आचार्य ने आकर गवाही दी कि वारदात के दिन रमेश का नौकर मेरे साथ मेरी लड़की का घर ढूँढ़न गया था। नौकर छूट गया। यह सारी कारसाजी बेनी की ही थी इसलिये उसको बड़ा दुख हुआ।

भैरव एक दिन धाड़ें मारकर रोता हुआ रमेश के पास आया। धीरज बँधाने पर उसने बताया कि बेनी की स्त्री के चाचा ने मेरे नाम से ग्यारह सौ छब्बीस रुपये सात आने की डिग्री प्राप्त की है और इसके फलस्वरूप दो ही एक दिन में मेरी सब जमीन-जायदाद कुर्क कर ली जायगी। यह डिग्री एकतरफा नहीं थी बाकायदा सम्मन जारी हुआ था किसी ने मेरे दस्तखत कर उसे ले लिया था और निश्चित दिन पर उसी जालसाज ने अदालत में सब कुछ कबूल कर लिया था। असल में यह कर्ज मुद्दई तथा मुद्दालह सब झूठे थे। पर अब सब हो चुका है तो मैं गरीब क्या कर सकता हूँ?

रमेश ने नकल लिख लिया और कहा रमीज से लेना यथासमय इस फैसले के विरुद्ध कानूनी कार्रवाई की जायगी।

इधर गाँव में मलेरिया का प्रकोप होने के कारण रमेश उसी की रोकथाम में व्यस्त था। रमेश को एकाएक जो शहनाई की आवाज सुनाई दी तो उसको नौकर से मालूम हुआ कि भैरव के नाती का अन्नप्राशन हो रहा है। यह भी मालूम हुआ कि भैरव ने बन्दोबस्त अच्छा किया है गाँव के सभी गण्यमान्य व्यक्ति बुलाये गये केवल वही नहीं बुलाया गया। इस पर रमेश को बड़ा आश्चर्य हुआ। वह सीधा भैरव के यहाँ गया। वहाँ भैरव न था। वह किसी काम से भीतर से बाहर आया तो सामने रमेश को देखते ही एकदम चौंक पड़ा जैसे भूत देख लिया हो। एक बार उसे देखकर ही वह भीतर भाग गया। एक बुजुर्ग ने जो भीतर से रमेश से

सहानुभूति रखते थे रमेश को बता दिया—बात यह है कि आपको समाज-निकाला दिया गया है इसलिये भैरव ने यदि आपको न बुलाया तो इसमें उसका दोष नहीं आज नहीं तो कल उसे बेटी-बेटे की नहीं तो नाती-पोते की शादी करनी है इत्यादि। रमेश ने 'अच्छा अच्छा' तो कहा पर उसके हृदय में लोगों के इस भोंडे कायरपन तथा कृतघ्नता पर रोष हुआ। वह चला आया।

आगे इससे भी भयंकर बात ज्ञात हुई। वह यह कि भैरव आचार्य पर जो नालिश हुई थी उसमें भैरव जान-बूझकर स्वयं हाजिर नहीं हुआ था। जो रुपया उसे रमेश की उदारता से मिला था उससे उसने वेणी आदि समाज के स्तम्भों की मित्रता खरीदी थी। अन्नप्राशन में न बुलाने से यह अपमान कहीं बढ़कर था। रमेश अदालत से सीधा भैरव के घर पहुँचा और उसका हाथ पकड़कर कहा—क्यों तुमने ऐसा किया ? क्यों ?

भैरव ने कुछ उत्तर देने की कोशिश नहीं की बल्कि उसने चिल्लाना चिल्लाने लगा चिल्लाने लगा। एक मिनट में भीड़ इकट्ठी हो गई। रमेश ने फिर भी हाथ न छोड़ा। रमा भीड़ चीरती हुई आई, बोली—इसे छोड़ दो !

—क्यों ?

—इतने लोगों में तुम्हें ऐसा करते लज्जा नहीं मालूम होती पर मैं तो लज्जा से मरी जा रही हूँ।—रमेश ने हाथ छोड़ दिया वह जैसे जादू हो गया।

जब रमेश चला गया तो लोग सलाह करने लगे कि इस प्रकार मकान पर चढ़कर रमेश ने जो मारपीट की उसका तो कुछ होना चाहिये। रमा भी थी उसने कहा—ऐसी कौन-सी बात हो गई कि इसे लेकर एक तूफान खड़ा किया जाय।—वेणी ने आश्चर्य प्रकट किया। भैरव की लड़की लक्ष्मी ने कहा—तुम तो दीदी उन्हीं की होकर कहोगी तुम्हारे बाप को किसी ने घर पर चढ़कर थोड़े ही मारा। सुनो तुम धनी हो इसलिये कोई कहता नहीं नहीं तो क्या कोई कुछ जानता नहीं।—रमा सहम गई वेणी

की ओर घूमकर बोली—क्यों भैया यह क्या ? तुमसे कोई भी दुष्टता नहीं बची, तुम्हीं मुझको यह सब कहलवा रहे हो, मैं समझती हूँ। बेनी ने कहा—लोगों ने तुमको सबेरे यदि रमेश के घर से निकलते देखा हो तो इसमें हम क्या कह सकते हैं ? इतने में भैरव की स्त्री ने लड़की को डाँटकर कहा—अभागी स्त्री होकर स्त्री के नाम से इस प्रकार लांछना न लगाओ धर्म इसको नहीं सहेगा—फिर घूमकर वह रमा से बोली तुम भी अनर्थक बात बढ़ा रही हो लोग यहाँ ऐसा है क्या तुम्हें नहीं जानता ? यह घटना यहीं समाप्त हुई।

घर पर चढ़कर भैरव को छुरा मारने की चेष्टा करने के अपराध में रमेश को सजा हो गई। वह अब जेल में था। मजिस्ट्रेट को उसे सजा देने में कोई हिचकिचाहट नहीं हुई क्योंकि उसके नाम से बहुत दिनों से हर तरीके की रपट दर्ज होती रही थी। रमा ने भी गवाही दी थी रमेश भैरव के घर में घुसकर उसे मारने आया था पर उसने भैरव को छुरी मारी थी या नहीं यह वह नहीं जानती, और उसके हाथ में छुरी थी या नहीं यह उसे स्मरण नहीं।

रमा गवाही देते समय यह नहीं जानती थी कि रमेश को साल भर की सजा होगी अधिक से अधिक सौ दो सौ जुर्माना होगा वह यही समझती थी। इसीलिए सब कुछ जानते हुए भी वह सच नहीं बोली थी समाज सत्य कब चाहता था, यदि वह सत्य बोलती तो उसे यही पुरस्कार मिलता कि लोग उसे कुलटा कहते। इस त्याग की बजाय उसने रमेश को सौ दो सौ जुर्माना करवाना ही अच्छा समझा। रमेश तो जेल में चला गया इधर रमा के घर में पूजा हुई, किसान प्रसाद लेने आते थे पर अब की बार समाज के स्तम्भों के अतिरिक्त कोई न आया। वे बहुत क्रुद्ध थे। मुसलमान तो बेनी को खतम ही करना चाहते थे।

एक दिन कुछ अज्ञात लोगों ने बेनी को मार गिराया। बेनी मरा तो नहीं पर अस्पताल लायक हो गया। जब वह अच्छा हुआ तो उसने सोचा अब मामला गड़बड़ है इस प्रकार न चलेगा इसलिए जब रमेश छूटा तो

फाटक पर सबसे पहला व्यक्ति उसे वेणी मिला। लगा सहानुभूति दिखाने साथ ही रमा के विरुद्ध रमेश के मन में विष भरने—उसी ने तुमको सजा कराई, उसी ने अकबर को भेजकर तुम्हें पिटवाना चाहा था।

लौटकर रमेश को धीरे-धीरे ज्ञात हुआ कि उसकी अनुपस्थिति में गाँव की कथित नीच जातियों तथा किसानों में कितना परिवर्तन हुआ था। वे अब पंच को मानकर अदालत जाने से भी विमुख हो रहे थे। रमेश को यह भी पता लगा कि गवाही देने पर ही रमा को समाज से अलग कर दिया गया है, इसलिए उसके एकमात्र भाई यतीन के उपनयन में कोई नहीं गया था। रमा कठिन बीमारी में थी। एक दिन रमा के यहाँ से रमेश का बुलावा आया। रमा ने अपने अपराधों की क्षमा माँगी और बताया कि वह यतीन का भार रमेश पर छोड़ देना चाहती है साथ ही कुछ जमींदारी भी उसे देना चाहती है। उसने रमेश का पैर छूकर क्षमा माँगी और अगले दिन वेणी की माँ के साथ काशी चली गई।

यही 'पल्ली-समाज' उपन्यास है।

## पल्ली-समाज

२२-२ १९१२ को शरत्चन्द्र ने रंगून से एक पत्र में लिखा—"'पल्ली-समाज' को मैंने दूसरे ढंग से खतम कर दिया। उस दिन जिस तरह से उसे मैं समाप्त करके भेज रहा था वह अच्छा न लगने के कारण उपसंहार दूसरे ढंग से प्रस्तुत किया गया। अवश्य मैं यह कहता हूँ कि सरस शब्द से मैं जो अर्थ समझता हूँ वह कहानी उसके पास भी नहीं फटकती। इसमें बहुत ही किरकिरापन लिए हुए यथार्थ का ताना-बाना बनाया गया है। अभी फिर भी दो-एक इंटेरेस्टिंग कहानियाँ भी होनी चाहिएँ। निबन्ध तो बहुतेरे पढ़ते हैं।

इस बीच 'पल्ली-समाज' छप गया जिस पर शरत् बाबू ने लिखा—"'पल्ली-समाज' के सम्बन्ध में मुझे कोई शिकायत नहीं है। गलतियाँ भी नहीं हैं साथ ही बाहरी टीपटाप भी उनकी पसन्द के अनुसार हुआ है।

इससे आपको जो कुछ भी हो लाभ या हानि पहुँचे यह आप जानें। मेरी तो इतनी ही इच्छा है कि लोग गाँव की बातों में दिलचस्पी लें। इस पुस्तक में एक मूल बात यानी विवाह की बात पर कुछ नहीं कहा गया। इच्छा है कि इस प्रसंग को मैं किसी दूसरी पुस्तक में उठाऊँ। यहाँ 'पल्ली समाज' की बातों से कोई बुराई नहीं की है यही मेरा लाभ है पर कलकत्ते में लोगों ने इस पुस्तक को किस रूप में लिया यह मैं नहीं जानता। क्या कोई इसकी बुराई करता है? अवश्य त्रुटियों की बात मैं नहीं करता वे तो बहुतरी हैं बस कुल मिलाकर क्या कहा यह मैं जानना चाहता हूँ।"

शरत्चन्द्र ने इस उपन्यास में गाँव की सब समस्याओं को मूर्त करके पाठक के सम्मुख रख दिया है। हमने इसका जो संक्षिप्त रूप पाठकों के सम्मुख उपस्थित किया है उसमें साहूकारों के चंगुल से किसान कैसे मुक्त नहीं हो पाते बल्कि दिन-ब-दिन और कर्ज में बँधते जाते हैं यह नहीं आ पाया पर मूल पुस्तक में यह भी है। 'पल्ली-समाज' उपन्यास 'चरित्रहीन' 'श्रीकान्त' आदि उपन्यासों के सामने फीका पड़ गया है उसकी ओर लोगों की दृष्टि अधिक नहीं गई पर मैं समझता हूँ इस उपन्यास में उससे कहीं ज्यादा है जितना लोग समझते हैं। गाँव की मध्यवित्त तथा उच्च श्रेणी की दयनीय हालत का चित्रण इसमें है। कहीं-कहीं इसमें किसानों आदि के जो चित्र आए हैं वे गौण रूप में ही आये हैं। शरत्चन्द्र ने इस पुस्तक का नाम 'पल्ली-समाज' रक्खा है सन्देह नहीं कि इसमें जिन लोगों का चित्र खींचा गया है वे ही ग्राम्य-समाज के स्तम्भ हैं फिर भी वे ही सब कुछ नहीं। इस पुस्तक का नाम पल्ली-मध्यवित्त समाज होता तो अधिक उपयुक्त होता पर एक तो यह नाम किसी उपन्यास के लिए शायद सम्पूर्ण रूप से समीचीन न होता और दूसरे शरत् बाबू के दिमाग में श्रेणियों का विभाजन स्पष्ट नहीं था उन्होंने तो यही समझ कर लिखा कि वे पूरे पल्ली-समाज का चित्रण कर रहे हैं। 'पल्ली समाज' पचास साल पहले के बंगाल के औसत गाँवों का चित्रण है किन्तु मैं समझता हूँ कि इसमें मोटे तौर पर उस समय प्रचलित भारतीय

मध्यवित्त ग्राम्य-समाज की रूपरेखा आ गई है। हम इस पुस्तक की अधिक समालोचना आगे करेंगे यहाँ इतना और कह देंगे कि रमा और रमेश में हमें पार्वती और देवदास का सादृश्य मिला है यह सादृश्य रमा के विधवा तथा पार्वती के पर-स्त्री होने पर भी स्पष्ट है।

'पल्ली-समाज' से ही स्पष्ट है कि शरद् बाबू ग्राम्य मध्यवित्त श्रेणी के समाज से अच्छी तरह परिचित थे क्योंकि न होते वे स्वयं उसी में से एक थे। उनकी निरीक्षणशील आँखों तथा अनुभूतिशील हृदय ने गहराई तक पैठकर उस समाज की असलियत का पता पा लिया था। उसमें जो धोखा क्षुद्रता दंभ तथा परश्रीकातरता थी उससे नाड़ी-नक्षत्र समेत शरद् बाबू परिचित थे। इसलिए इस परिचित समाज के विषय में लिखते उनको कभी प्लाट की कमी नहीं होती थी।

"किसी उपन्यास को लिखते समय वे पहले से प्लाट नहीं ठीक करते थे पहले वे अपने लिए एक ढाँचा बना लेते थे फिर उसके उपयोगी चरित्रों (characters) को मन ही मन सोच लेते थे फिर यह ठीक करते थे कि वे क्या-क्या काम करेंगे। बंकिमचन्द्र की रचना-पद्धति बिल्कुल दूसरी थी बंकिम-सहोदर पूर्णचन्द्र से मालूम हुआ है कि वे पहले यह ठीक कर लेते थे कि घटना क्या किसके साथ होगी। शरत्चन्द्र में एक और विशिष्टता थी वह यह कि ज्यों ही नये उपन्यास की कल्पना मन ही मन निश्चित हो जाती त्यों ही वे लिखना शुरू करते पर वे हमेशा सिलसिलेवार तरीके से लिखते थे यह बात नहीं अक्सर वे बाद के या बीच के अध्यायों को पहले लिख लेते थे। उनका 'चरित्रहीन' व एक से अधिक विख्यात ग्रंथ इसी प्रकार लिखे गये। शरत्चन्द्र की रचनाओं को पढ़ने से यह मालूम देता है कि मानो वे स्वयं ही सरस्वती चली जा रही है, किन्तु यह बात नहीं। वे न तो जल्दी लिख ही पाते थे न अन्य आसानी से उनकी कलम की नोक पर आते थे। लिखने के बाद वे बहुत काटते थे। खूब सोच-समझ कर वे वाक्यों की रचना करते थे।"[1]

[1] देखिये श्री हेमेन्द्रकुमार राय लिखित साहित्यिक शरत्चन्द्र पृ ७१

सतीशचन्द्र दास नामक एक महाशय ने 'शरत् प्रतिभा' में यह लिखा है कि 'चरित्रहीन' लिखते समय शरत् बाबू ने शराब का बहुत इस्तेमाल किया था पर जैसा कि मैंने पहले लिखा है 'चरित्रहीन' उपन्यास में एकाध जगह पर सेक्स-अपील या यौन आवेदन अधिक होने पर भी पुस्तक का उपसंहार हितोपदेश की ही तरह है। किरणमयी पर ही समाज के ठकेदारों को विशेष आपत्ति है उनके तर्क कितने भी पने हों शरत् बाबू ने यह दिखलाया है कि उसका अन्त पगली बनकर हुआ। बाद को 'चरित्रहीन' की विस्तृत आलोचना करते समय हम इसकी भी आलोचना करेंगे। सतीश बाबू का वक्तव्य कहाँ तक एतिहासिक है यह वही जानें। बहुत सम्भव है यह उनकी कपोल-कल्पना हो मेरा वक्तव्य केवल इतना है कि शरत् बाबू के लिए उन दिनों शराब पीना शायद मामूली बात थी 'चरित्रहीन' लिखने के लिए ही उन्हें विशेषकर शराब पीनी पड़ी यह हम नहीं मानते क्योंकि यदि हम ऐसा मानें तो हमें यह मानना पड़ेगा कि शराब पीकर वे नीतिवादी (moralist) हो जाते थे जो स्थिति शायद उक्त समालोचक को और भी नापसन्द हो। शरत् बाबू ने कभी यह दावा नहीं किया कि वह आदर्शचरित्र व्यक्ति थे पर अब तो कुछ सनसनीवादी लोगों ने उन्हें पतित और दुश्चरित्र प्रमाणित करने का बीड़ा-सा उठा रखा है। हमें इससे कोई मतलब नहीं हमारा कहना केवल इतना है कि 'चरित्रहीन' या 'पल्ली-समाज' उपन्यास समाचार यहां तक कि व्यावहारिक विद्रोह की शिक्षा भी नहीं देते। इनमें भी 'पल्ली-समाज' विशिष्ट इस कारण है कि उसमें धार्मिक पहलू की कुछ मामूली झलक आ जाती है।

# महाप्रस्थान

कलकत्ता लौट आने के बाद से शरत् बाबू की जीवनी एक प्रतिष्ठित देश-प्रशंसित साहित्यकार की जीवनी रही। कलकत्ता विश्वविद्यालय ने उनको 'जगत्तारिणी' तमगा दिया, ढाका विश्वविद्यालय ने उन्हें डी॰ लिट्॰ की उपाधि दी। उनकी पुस्तकों के दस-दस हज़ार के संस्करण निकले, सम्पादकगण लेख के लिए उनके दरवाज़े पर माथा रगड़ते ही दिखाई देते थे। मासिक पत्रिकाओं की शरत्-संख्या निकली, शरत्चन्द्र के सम्मान के लिए स्थायी रूप से शरत्-समितियाँ बनीं। भारतीय भाषाओं में तथा अंग्रेज़ी में उनकी पुस्तकों का धड़ल्ले के साथ अनुवाद हुआ। कुछ लोगों ने यहाँ तक लिखा है कि उनको नोबल पुरस्कार मिलते मिलते रह गया। उनकी रचनाओं ने बंगाली मध्यवित्त समाज को जिस तरह हिला दिया था तथा उनकी रचनाओं की उत्तमता और परिमाण को देखते हुए यह कोई असम्भव बात नहीं थी। वस्तुस्थिति यह है कि उनसे कम सशक्त कई योरोपीय उपन्यासकारों को यह पुरस्कार मिला।

एक तरफ शरत् बाबू पर जैसे प्रशंसा की झड़ी लग गई, दूसरी तरफ वैसे ही उनको हर तरह की गालियाँ मिलीं। किसी ने उनको अनीति का तथा व्यभिचार का प्रचारक कहा तो किसी ने उनको वेश्याओं का विज्ञापक कहा। इसमें सन्देह नहीं कि शरत् बाबू अपने जीवन के पहले भाग में उच्छृंखल रहे पर उनकी पुस्तकों में किसी भी जगह उच्छृंखलता का प्रचार या उसकी वकालत नहीं की गई। उनका मोटो शायद यही रहा कि 'पाप को घृणा करो पापी को नहीं'। यदि Les miserables के लेखक विक्टर ह्यूगो को या गेटे को पाप का प्रचारक नहीं कहा जा सकता तो शरत् बाबू को भी पाप का प्रचारक नहीं कहा जा सकता।

यदि यह कहा जाय कि वे स्वयं जीवन के पहले हिस्से में उच्छृंखल थे इसलिए उनकी पुस्तकों में दुर्नीति का प्रचार होना ही चाहिए, तो बिल्कुल गलत है। गेटे शेली रूसो इनमें से किसी ने भी दुर्नीतिपूर्ण समाज विरोधी साहित्य की सृष्टि नहीं की पर इनमें से सभी नीतिवादियों की दृष्टि में असच्चरित्र थे। जो कुछ भी हो हम शरत्चन्द्र की पुस्तकों की विस्तृत आलोचना करते समय इस बात की जाँच करेंगे कि उन्होंने कहाँ तक अपने साहित्य में दुर्नीति का प्रचार किया है।

शरत्चन्द्र कलमशूर तो थे पर किसी सभा में दो शब्द बोलने में भी उनकी जान निकलती थी। फिर भी उनको सैकड़ों सभाओं में जाना पड़ा या तो वे भाषण लिखकर ले जाते थे या बोलते थे तो तीन-चार मिनट के लिए। मरते दम तक उनका यही हाल रहा। रवीन्द्रनाथ की तरह वे साहित्य में सव्यसाची होकर नहीं आये थे उनमें उपन्यास-कहानी रचना की ही प्रतिभा थी।

असहयोग के जमाने में शरत्चन्द्र बहुत दिनों तक कांग्रेस में रहे यहाँ तक कि वे अपने जिले की कांग्रेस कमेटी के सभापति रहे।

१९२१ के २७ जून के एक पत्र में उन्होंने लिखा था—"यदि कांग्रेस का काम सार्थक हुआ तो फिर शायद समय मिले पर अभी एक मुहूर्त का भी समय नहीं है। आजकल मुझे दो साल पहले के महात्मा गांधी के सत्याग्रह के दिन निरन्तर याद आते हैं। मैं एक स्वयंसेवक था। मेरी अगल-बगल के छ-सात आदमी जब 'मर गये' कहकर गोली खाकर गिर पड़े तब मैं भागा नहीं था पर मुझे गोली भी नहीं लगी थी। बहुत बार यह सोचा करता हूँ कि उस दिन किस प्रकार से मैं मशीनगन की गोली से बच गया पर आज ऐसा मालूम होता है कि इसका भी प्रयोजन था।

१९१७ में ही लिखित एक पत्र में वे लिखते हैं—"कल हावड़ा जिला कांग्रेस का चुनाव हो गया। अबकी बार विरोधी दल का शोरगुल गाली गलौज और लाठी देखकर मैंने सोचा था बिना रक्तपात के मामले का अन्त नहीं होगा। मैं कांग्रेस कमेटी का सभापति था इसलिए मुझे भी

यथारीति तैयारी करनी पड़ी थी। मैं सभा में हंगामे से डरता था इसलिए कांटेदार तार यहां तक कि उसमें बिजली दौड़ा देने की तैयारी कर रखी थी। इस तरह तैयारी होने के कारण ही दंगा नहीं हुआ और बिना विघ्न के दखल कायम रहा। १० साल से प्रेसीडेण्ट हूँ इसलिए स्थिर स्वार्थ बन गया है। आसानी से छोड़ नहीं सकता। क्या यह छोड़ा जा सकता है? हमारी युक्ति यह है कि चाहे हमने कुछ बुराई की हो तुम कहनेवाले कौन हो? देश की मुक्ति आनी है तो हमारे ही जरिये से आए। तुम लोगों के बस की बात नहीं है तुम लोग इसमें न पड़ो पर वे राजी नहीं हुए, इसीलिए हम लोग नाराज हुए नहीं तो हम लोगों का यानी सुभाष दल के लोगों का मिजाज बहुत ठण्डा है बहुत कुछ आपकी तरह है।"

११.११.२९ को उन्होंने लिखा था कांग्रेस में बड़ी गड़बड़ी हो रही है परसों सुभाष ने मुझे पकड़ा कि थोड़े दिन कलकत्ते में रहकर गड़बड़ खतम करूं। उन लोगों का ऐसा विश्वास है कि यदि मैं गड़बड़ी न मिटा पाऊँ तो यह गड़बड़ी मिटने की नहीं है।

स्मरण रहे कि यह पत्र उस गड़बड़ी के सम्बन्ध में है जो बंगाल कांग्रेस में दो गुट हो जाने के कारण हुई थी। एक के नेता थे यतीन्द्र मोहन सेनगुप्त और दूसरे के नेता थे सुभाषचन्द्र बोस।

१९३१ में लिखित एक पत्र में उन्होंने यह लिखा था— 'सुभाष गुट ने देशोद्धार के लिए मुझे जबर्दस्ती कुमिल्ला रवाना कर दिया था। रास्ते में कुछ लोगों ने 'शेम शेम' का नारा दिया और रेल के डिब्बे के जंगले की राह से कोयले की छर्री फेंककर हमसे प्रेम निवेदन किया फिर दूसरे दल ने दस-बारह घोड़ों की गाड़ी पर चढ़ाकर डेढ़ मील लम्बा जुलूस निकाला और यह साबित कर दिया कि कोयले की छर्री कुछ नहीं माया मात्र थी। अभी फिर अपने रूपनारायण नद के किनारे लौट आया हूँ The liberated man has no personal hopes. इस सत्य की उपलब्धि करने में अब मुझे देर नहीं है। जय हो कोयले की छर्री की और जय हो १२ घोड़ों की गाड़ी की।"

फिर भी 'पथेर दाबी' उपन्यास के अलावा उनके किसी भी उपन्यास में राजनीति की गन्ध नहीं मिलती यह शरत्-साहित्य की एक विशेष त्रुटि है। साथ ही यह भी याद रखने योग्य है कि यदि शरत् बाबू राजनीति को लेकर उपन्यास लिखते तो शायद उनकी सभी पुस्तकें जब्त हो जातीं और उनकी उम्र जेल में ही बीतती। अस्तु।

शरत्चन्द्र कभी बहुत तन्दुरुस्त नहीं थे उच्छृंखल जीवन तथा गरीबी ने उनके स्वास्थ्य को पहले से ही पंगु बना रखा था। उनको बवासीर का रोग पुराना था पर मृत्यु से कुछ साल पूर्व इसको भी आपरेशन करके आराम कर दिया गया।

१९३९ की भीषण गर्मी में वे गाँव से पैदल चलकर देउलटी स्टेशन न गाड़ी पर सवार हुए इससे उन्हें लू लग गई। तब से जो सिर का दर्द शुरू हुआ वह बन्द ही नहीं होने को आता था। उसकी चिकित्सा कराई गई, तो डाक्टरों ने कहा यह न्युरालजिक दर्द है तदनुसार उन्हें आलट्रा वायोलेट रश्मियों की मद पर कोई फायदा न हुआ। पढ़ने लिखने से यह दर्द और बढ़ता था। फिर सोचा गया शायद चश्मे में पावर की गलती के कारण ऐसा है इसलिये कई बार उन्होंने चश्मा भी बदला पर उससे भी कुछ फायदा न हुआ। उल्टा अब ज्वर भी कुछ-कुछ रहने लगा। ज्वर ने भी जैसे जिद पकड़ ली किसी तरह छूटता नहीं था तो सोचा गया यह मलेरिया है फिर क्या था जितने प्रकार से कुनैन शरीर में ठूसा जा सकता है ठूसा गया।

शरत् बाबू बराबर बीमार रहते थे। यहाँ तक कि बर्मा के दिनों में भी उनका स्वास्थ्य कोई आदर्श नहीं था पर मृत्यु के दो साल पहले से वे कुछ और अधिक बीमार रहने लगे। २८ माघ १३४२ यानी मृत्यु के लगभग दो साल पहले उन्होंने चारुचन्द्र बन्द्योपाध्याय को लिखा—"इस बीच मैं गाँव गया था। गाँव का मिट्टी का घर और रूपनारायण नद इन दोनों का मोह छोड़कर मैं अधिक दिन कहीं रह नहीं पाता। फिर यह भी सत्य है कि इनकी माया का फन्दा काटकर जाने के अधिक दिन बाकी

नहीं हैं। कई पुराने मित्र आदि आगे ही चले गए हैं। उनको मैं नित्य स्मरण करता हूँ। अभी-अभी अध्यापक विपिन गुप्त की श्राद्ध सभा में जाने का निमन्त्रण-पत्र मिला। शिवपुर में कितने दिन शाम को हम एक साथ वार्तविवाद करते रहे। पुराने जमाने के मित्रों में एक तुम ही हो। आशा करता हूँ कि कम-से-कम तुम्हारे पहले जा सकूं। इस संसार में अब एक दिन को भी चित्त नहीं लगता। बस हमेशा पीछे की बात सोचता हूँ सामने की तरफ एक बार भी आँख नहीं जाती। पर जाने दो इन बातों को तुम्हारा चित्त दुखी करने से कोई फायदा नहीं।

इलाज से ज्वर न घटा तो डाक्टरों ने बताया कि यह रोग 'डी कालाई' है। इसकी चिकित्सा हुई तो ज्वर अच्छा हो गया। शरत् बाबू अच्छे हो गये और हवा बदलने के लिए देवघर गये। वहाँ से वे बिल्कुल स्वस्थ होकर लौटे।

श्रावण में फिर बीमार पड़े। अब की पेट ने तकलीफ दी जो खाते वही हजम नहीं होता था ऐसी हालत हो गई। डाक्टरों ने कहा—डिस्पेप्सिया (अजीर्ण) रोग है। चिकित्सा होने लगी पर मर्ज बढ़ता ही गया ज्यों-ज्यों दवा की। वे बाँध चले गये शायद वहाँ अच्छे हों पर वहाँ हालत रही यह देखकर फिर कलकत्ता लौट आये। डाक्टर विधानचन्द्र राय ने परीक्षा लेकर कहा कि शायद किंक (Kink) है एक्सरे किया जाय तो ठीक पता लगे। तदनुसार एक्सरे किया गया तो पता लगा कि *यकृत में कैंसर हुआ है और वह बढ़ते-बढ़ते पाकस्थली तक पहुँच गया।* डाक्टरों ने कहा आपरेशन होना चाहिये।

वे आपरेशन कराने पर तैयार न हुए। पर जब कष्ट बढ़ता गया तो फिर कई बड़े डाक्टरों का परामर्श लिया गया। उन्होंने भी आपरेशन की सलाह दी। इसमें दिक्कत यह थी कि वे बहुत दुर्बल थे और आपरेशन बहुत कठिन था। यह तय हुआ कि किसी अच्छे नर्सिंग होम में रहें और जब उनका स्वास्थ्य कुछ सुधरे तो वहीं आपरेशन किया जाय। तदनुसार वे डाक्टर मैके के नर्सिंग होम में दाखिल हुए, पर वहाँ अफीम तथा तम्बाकू

की मुमानियत थी यह देखकर वे अपने एक मित्र डाक्टर चटर्जी के नर्सिंग होम में चले गये। असल में डाक्टरों को उनके जीवन की कोई आशा नहीं थी।

मृत्यु के कुछ महीने पहले उन्होंने एक पत्र में लिखा था— इधर मेरा बुखार अच्छा होने में नहीं आता। विधानचन्द्र राय आदि डाक्टर रोग नहीं समझ पा रहे हैं।

विभिन्न छाप की शीशियाँ हुई जमा
विभिन्न माप के डिब्बों का लग गया ढेर
व्याधि से व्याधियाँ अधिक बढ़ गईं और अस्थि जर्जर हो गया
तब डाक्टरों ने कहा मरीज की हवा दो बदल।

इसलिए दो-तीन दिनों में ही स्थान त्याग की इच्छा है अपनी नहीं दूसरों की। मैं मन-ही-मन कहता हूँ कि हे सन्ध्या कालीन नित्य सहचर ९९ के बुखार तुम और जरा प्रसन्न हो जाओ और तुमने जिस काम की नींव डाली है, उसे जल्दी-जल्दी खतम कर डालो मुझे छुट्टी मिले।

इसके लगभग चार महीने बाद उन्होंने लिखा था— 'फिर प्रचण्ड बुखार शुरू हुआ था। अबकी बार रक्त परीक्षा में यद्यपि कुछ नहीं मिला पर इन लोगों ने तय किया था कि मलेरिया है चलो छोड़ो रोग की बातें।"

मृत्यु के कुछ महीने पहले उन्होंने कलकत्ता से लिखा था— मेरा स्वभाव जरा अद्भुत है। जो जीवित है उन्हीं के साथ सम्बन्ध रखता है, जो मर गया उसकी विशेष चिन्ता नहीं करता। मृत्यु मेरे निकट स्वाभाविक निरन्तर घटित होने वाला व्यापार है यही संसार का नियम है। इसे मैंने मन और प्राण से मान लिया है "जाने दो इन बातों को मेरी तबियत गाँव से आने के बाद से बहुत काफी खराब हो गई है हम सब दुर्गापूजा की नवमी के दिन गाँव जायेंगे। दूसरी खबरें वैसी ही हैं। अच्छी बुरी दोनों तरह की बातें हैं।"

धीरे-धीरे ऐसी हालत हुई कि मुँह में जो कुछ जाता वह हजम नहीं

होता। रेक्टम फीडिंग यानी मलद्वार के जरिये नल से पुष्टि पहुँचाने पर शरत् बाबू ने आपत्ति की तब डाक्टरों ने उनके पेट में एक आपरेशन किया। इसलिये नहीं कि कसर को निकाल दें बल्कि इसलिये कि रबर के नल से सीधा उनके पेट में खाना पहुँचाया जाय। फिर भी उनको फायदा न पहुँचा तो डाक्टरों ने कहा दूसरे का रक्त उनके शरीर में पहुँचाया जाय। उनके छोटे भाई प्रकाशचन्द्र रक्त देने को तैयार हो गये। दो दिनों तक यह प्रक्रिया की गई, कुछ हालत सुधरती मालूम पड़ी पर यह 'बुझने के पहले भभक उठना' मात्र था। उन्होंने १६ जनवरी १९३८ को १० बजे अन्तिम साँस ली। ११ बजे उनको घर लाया गया। शाम को एक विराट भीड़ के साथ उनके शव को केवड़ातल्ले में ले जाया गया और ५.४ के समय उनकी चिता में अग्निस्पर्श करा दिया गया।

इस प्रकार ६१ साल से कुछ अधिक जीने के बाद वे मर गये। मरने के पहले उन्होंने कई बार कहा था 'आमाके दाओ' आमाके दाओ' यानी 'मुझे दो' 'मुझे दो'। इस वाक्यांश के बहुत से अर्थ किए गए हैं जैसे यह इस महान् शिल्पी के सारे दर्शनशास्त्र का निचोड़ हो भविष्य में भी शायद उनकी पुस्तकें जहाँ-जहाँ पढ़ी जायें इसके बहुत कुछ अर्थ निकाले जायें पर शायद उन्होंने एक साधारण मुमूर्षु की तरह केवल पानी की एक बूँद माँगी हो और इस प्रकार यह दर्शाया हो कि सब मानव एक हैं मनुष्य चाहे उसमें जितना ही भेद पैदा करे।

उनके मरने पर सारे बंगाल में हाहाकार मच गया जिन्होंने जीवन काल में उनकी निन्दा की थी उन्होंने भी शतमुख होकर उनकी प्रतिभा का अभिनन्दन किया। रवीन्द्रनाथ ने लिखा—

जाहार अमर स्थान प्रेमेर आसने,
क्षति तार क्षति नय मृत्युर शासने।
देशेर माटिर थेके निलो जारे हरि,
देशेर हृदय तारे राखियाछे वरि।

"प्रेम के शासन में जिसका अमर स्थान है, मृत्यु के शासन में उन्हें पाना कोई खोना नहीं है। देश की मिट्टी से जो दूर लिये गए देश के हृदय ने उनका वरण करके रख छोड़ा है।

सच बात तो यह है कि शरत् बाबू जैसे लेखक मरते नहीं अपने लेखों तथा रचनाओं के रूप में वे मृत्युहीन होकर रहते हैं। यह एक द्रष्टव्य बात है कि कैंसर ऐसे भयंकर असाध्य और कष्टकर रोग से पीड़ित होने पर भी उनके पत्रों में स्वभावसिद्ध हास्य और व्यंग्य में न्यूनता नहीं आई। उन्होंने मृत्यु को भी शायद इन्हीं दोनों कवचों के साथ ग्रहण किया।

# शरत्-साहित्य पर एक विहगम दृष्टि

किसी भी लेखक का सबसे बड़ा परिचय उसकी रचना है, इसी की बदौलत वह आनेवाली सन्तानों या पीढ़ियों की अदालत में अपने को सबसे बड़ा मुनीम साबित कर सकता है। कालिदास, शेक्सपियर ही नहीं बहुत-से ऐसे महान् लेखक तथा कवि हुए हैं, जिनके सम्बन्ध में दुनिया या तो कुछ भी नहीं जानती या बहुत कम जानती है, पर जब तक उनकी रचनाएं और कृतियां मौजूद हैं तब तक उनका नाम भी मौजूद है। यदि एक लेखक बहुत उच्च कुल में उत्पन्न हुआ हो यानी ऐसे कुल में जिसे लोग उच्च कहते हैं, वह चाहे सिकन्दर की तरह किसी लुटेरे के कुल का ही रहा हो और उसका चरित्र भी अपने काल तथा समाज के मानदण्ड से बिलकुल दूध का धुला हो पर उसकी रचनायें निकृष्ट हों तो उस लेखक को दो कौड़ी का ही समझा जायगा। इसके विपरीत लेखक या कवि यदि घृणित से घृणित पापी हो पर उसकी रचना में वे गुण हों जो उसको प्रिय बनाते हैं, तो उसको अच्छा लेखक ही कहेंगे। हम कवि फ्रांसोया विलों (Franscois Villom) को लें जिसको लुई ग्यारहवें ने यह कहकर मृत्युदण्ड देने से इनकार किया कि "मैं फ्रांसोया विलों को मृत्युदण्ड नहीं दे सकता, फ्रांस में उसकी तरह के बदमाश सैकड़ों होंगे पर उसके जैसा कवि एक भी नहीं" या पाल वारलेन (Paul Verlaine) को ही क्यों न लें जिसने मामूली अपराध में सजा पाकर जेल में सुन्दर से सुन्दर धार्मिक कवितायें लिखीं तो हम देखेंगे कि इनका नाम इनकी रचनाओं के कारण ही हुआ। हमारे भारतवर्ष के आदि कवि भी दस्यु थे पर कौन कह सकता है कि वे उत्कृष्ट कवि नहीं थे। इसलिए होना तो यह

चाहिये कि कवि तथा उपन्यासकारों की जीवनी में मुख्यतः उनकी कला तथा रचनाओं की समालोचना की जाय तथा परिचय दिया जाय पर ऐसा न करके अक्सर जीवन की सनसनीपूर्ण घटनाओं का ही वर्णन होता है। मैं इसको जीवनी लिखने का गलत तरीका समझता हूँ। पाश्चुर एडिसन केल्विन मार्कोनि आदि की जीवनी लिखते समय उनके आविष्कारों का जिक्र न करना केवल उनकी शादियों तथा पुत्रों का वर्णन करना जितना हास्यास्पद होगा उतना ही किसी लेखक का परिचय देते समय उसके प्रेमों तथा पतन का परिचय देना गलत तथा हास्यास्पद होगा।

हम शरत की सब रचनाओं का परिचय देने की चेष्टा नहीं करेंगे बस उनकी कुछ मुख्य रचनाओं का परिचय यहाँ करायेंगे और सो भी संक्षेप में। परिचय देने में हम एक विशेष प्रक्रिया का अनुसरण करेंगे। पहले पाठक के सामने रचना की कथा का सार रख देंगे फिर उस पर आलोचना करेंगे। ऐसा करने के पूर्व हम पाठक को एक बार इस बात को अच्छी तरह याद दिलाना चाहते हैं कि केवल कथानक के सार से रचना पर अन्तिम मन्तव्य स्थिर करना एक अधूरी चेष्टा होगी तथा ऐसा करना लेखक के साथ अन्याय होगा क्योंकि एक बड़े उपन्यासकार की कला सिर्फ इतने में नहीं है कि वह एक विशेष कहानी का तानाबाना कैसे बनाता है बल्कि वह किस प्रकार चरित्रों को विकसित करता है और घटनाओं तथा व्यक्तियों की एक-दूसरे पर होनेवाली प्रतिक्रिया को वह किस प्रकार दिखलाता है इसी में उसकी कला का सूक्ष्म परिचय है। कहना न होगा कि कहानी या उपन्यास का जो सार हम पेश करने जा रहे हैं उसमें इन बातों को यथार्थ रूप से प्रतिफलित करना असम्भव है। चार्ल्स तथा मेरी लैंब ने शेक्सपियर के नाटकों का जो संक्षिप्त सार लिखा है उससे कोई शेक्सपियर के नाटक की कहानियों के बारे में कुछ मोटी धारणा भले ही बना ले पर उनकी कविता के बारे में कोई सही धारणा प्राप्त करना कठिन ही नहीं असम्भव है।

हम पहले कहानियों से ही शुरू करेंगे।

# शरत् का कहानी-साहित्य

यों तो शरत् बाबू ने अपने साहित्यिक जीवन के दौरान में बहुत-सी कहानियों की रचना की है पर उनकी प्रतिभा मुख्यतः उपन्यासकार की प्रतिभा थी। उनकी कहानियों को पढ़ने से अक्सर यह धारणा बनती है कि उन्होंने उपन्यास को ही संक्षिप्त करके लिखा है तथा कहानी के छोटे दायरे में उनकी प्रतिभा कुण्ठित हुई है। हमारे लिए यह सम्भव नहीं कि हम उनकी सब कहानियों की आलोचना करें इसलिए केवल उनकी कहानियों के विषय में कुछ साधारण मन्तव्य करके आगे बढ़ जायेंगे। कहानी में एक पहलू पर ही रोशनी डाली जा सकती है पर शरत् बाबू ने अपनी कहानियों में भी द्वन्द्व तथा जीवन की बहुमुखता दिखाने की चेष्टा की है और चूंकि छोटे दायरे में ऐसा सफलतापूर्वक नहीं किया जा सकता इससे वे इसमें कम सफल रहे। इससे एक बात और ज्ञात होती है कि शरत् बाबू के पास कथानकों की कमी नहीं थी नहीं तो वे इस प्रकार उपन्यास के लायक कथानकों को कहानियों में खर्च न कर देते। 'आँधारे आलो' नामक कहानी में बिजली के प्रति सत्येन्द्र के प्रेम का अच्छा चित्रण है। यह कहानी मध्यवित्त श्रेणी की है। इसमें भी वेश्या है। 'पथनिर्देश' कहानी भी मध्यवित्त श्रेणी की प्रेम-कहानी है। इसका कथानक दायरे की ह्रस्वता के कारण खिल नहीं पाया है। 'आलो ओ छाया' 'मन्दिर' और 'अनुपमार प्रेम' इन तीनों कहानियों में निषिद्ध प्रेम और समाज और हृदय का द्वन्द्व है। 'आलो ओ छाया' में यज्ञदत्त और बाल-विधवा सुरमा के समाजनिषिद्ध प्रेम का चित्र खींचा गया है। यदि यह कहानी न होकर उपन्यास के रूप में रचित होता तो इसका पूरा सौन्दर्य निखरा

होता। यज्ञदत्त का सुरमा के प्रति प्रेम साथ ही पद्मकुमारी के प्रति पहले कर्तव्य और प्रेम का द्वन्द्व एक उपन्यास के लिए ही उपयुक्त कथानक होता। 'मन्दिर' कहानी बहुत सफल है पर यह भी मध्यवित्त श्रेणी का ही चित्र है। 'अनुपमार प्रेम' के चरित्र सुस्पष्ट हैं। 'छवि' कहानी बहुत सुन्दर है। इसका वातावरण काव्यमय है। 'विलासी' कहानी में घटना की कमी नहीं, पर लेखक ने इस कहानी में हृदयहीन सनातन समाज को गालियाँ ही दी हैं। 'अनुराधा' कहानी में 'दत्ता' का कुछ कथानक आ गया है। 'काशीनाथ', 'बोझा' 'दर्पचूर्ण' तथा 'सती' मध्यवित्त श्रेणी के दाम्पत्यजीवन को लेकर लिखे गये हैं। 'सती' कहानी को डाक्टर सेन ने शरत्प्रतिभा का एक श्रेष्ठ दान' बताया है साथ ही यह कहा है कि सर्व देश और सर्वकाल की श्रेष्ठ कहानियों में इसका स्थान है पर इसमें हम मध्यवित्त श्रेणी की एक ऐसी स्त्री को पाते हैं जो सती भी है साथ-साथ हर बात में शक करती है। इसी प्रकार 'बाल्यस्मृति' 'हरिचरण' 'एकादशी बैरागी' 'मामलार फल' और 'परेश' मध्यवित्त वर्ग के पारिवारिक और सामाजिक जीवन के चित्र हैं।

अभागीर स्वर्ग' 'बाल्यस्मृति और 'हरिचरण' गरीबों के जीवन को लेकर लिखे गये हैं पर इन कहानियों में वह बात नहीं जो 'महेश' में है। यह कहानी तो शरत् बाबू की रचनाओं में एक निराला ही स्थान रखती है। कुछ बड़ी कहानियों को लीजिए।

### चन्द्रनाथ

१ २ १९१३ को रंगून से शरत्चन्द्र ने एक पत्र में लिखा था—"चन्द्रनाथ में जो परिवर्तन उचित मालूम पड़ा वह मैंने कर दिया और भविष्य में इसी प्रकार के परिवर्तन करूँगा। 'चन्द्रनाथ' कहानी की दृष्टि से बहुत मोटी कहानी है पर इसमें अतिशयता बहुत है। बचपन में विशेषकर जीवन के आरम्भ में इस तरह की रचना स्वाभाविक है इसी लिये ऐसा सम्भव हुआ है।"

१५.२.१९१६ को उन्होंने प्रकाशक को लिखा—"क्या चन्द्रनाथ छप गया ? आठ सौ प्रतियाँ अधिक छपाना बुरा क्या है, ऐसा ही करो।

शरत् बाबू की रचनाओं में एक 'महेश' ही ऐसी कहानी है, जिसमें गरीब की असहायता का स्वरूप और शोषण स्पष्ट हुआ है। यदि इस कहानी का शीर्षक 'प्रोलेटारियट का जन्म' होता तो शायद यह मैक्सिम गोर्की की एक कहानी हो जाती। हम संक्षेप में इस कहानी का सार देते हैं।

## महेश

गाँव छोटा है, जमींदार भी छोटे हैं, पर उनका दबदबा गाँव पर बढ़ा हुआ है। तर्करत्न उनके पुरोहित हैं, वे जमींदार साहब से भी अधिक रोब रखते हैं। वे लौटते हुए गफूर किसान के घिरे हुए घर के सामने पुकारने लगे, 'गफूरा, अबे घर में है ? गफूर की दस वर्ष की लड़की बोली—'अब्बा बुखार में पड़े हैं, क्या काम है ?" तर्करत्न क्रोध में बोल उठे—'बुला हरामजादे को।" और 'हरामजादा' आया तो तर्करत्न बोले—'सवेरे मैं देख गया तेरा बैल बँधा है, अब लौटती बार देख रहा हूँ कि अब भी बँधा है, यदि जमींदार साहब ने सुन लिया कि तू गोहत्या कर रहा है तो याद रख तेरी खैर नहीं।" किसान बोला, 'हुजूर बीमार हूँ, जरा पकड़कर कुछ घास ही खिला आऊँ, इसकी हिम्मत नहीं। तर्करत्न गरम होकर बोले—'तो कुछ कटिया ही डाल दे, अच्छा धान भी सब बेच डाला ? कसाई।" गफूर की आँखों में आँसू आ गये—'तो हुजूर, इस साल फूटी कटिया तो किस चीज की ? जमींदार तो सब कटवा ले गये। महेश को खिलाऊँ तो कैसे खिलाऊँ।" तर्करत्न ने कहा—"ओह ! उसका नाम महेश रखा है ? तो जमींदार का बाकी रखा होगा उन्होंने ले लिया होगा। जाते रामराज्य में रहते हो, फिर भी मालिक की निन्दा करते हो। नीच हो न।" गफूर समझाने लगा किन्तु वह नहीं कहता दो साल से अकाल-सा पड़ा है यही कह रहा था। अकस्मात् वह तर्करत्न के पैरों पर गिर पड़ा—"पंडितजी कुछ दो-चार पसेरी कटिया

उधार ही दे दीजिए।" तर्करत्न ने तपाक से पैर हटा लिया बोले—"साले छू देगा क्या ?" गफूर गिड़गिड़ाता हुआ कहता रहा—'पण्डित जी तुम इतना रोषे तो तुम्हें कुछ पाप भी न पड़ेगा हम न खाकर रहें कोई बात नहीं लेकिन यह गूँगा जानवर है सिर्फ ताकता रहता है और उसकी आँखों से टपटप आँसू गिरते हैं। तर्करत्न चले गये। गफूर बैल की ओर गया उसका गला सहलाया और धीरे-धीरे बोला—"तू मेरा बेटा है सालों तक हमें कमाकर खिलाने के बाद बूढ़ा हो गया तुझे हम पेटभर खिला नहीं पाते महेश लेकिन तू तो जानता है तुझे मैं कितना प्यार करता हूँ। जमींदार ने जो थोड़ा चरागाह था उसे भी पैसे के लोभ से बेच दिया अब हम तुझे क्या खिलाकर जिलायेंगे ? उसके आँसू बैल की पीठ पर गिरने लगे। आँसू पोंछकर गफूर ने इधर-उधर ताककर जल्दी से टूटे घर की नीची छत से थोड़ा-सा 'खर' खींचकर महेश के सामने डाल दिया, और बोला— 'जल्दी खा ले नहीं तो …"

इतने में अमीना ने पुकारा—"अब्बा !" गफूर बोला—"क्यों बेटी ?" —"खाओ खाना खाओ" कहकर वह कमरे से निकल आई और सामने देखकर बोली—"फिर तुमने महेश को छत से 'खर' लेकर दिया। ठीक यही डर गफूर को था। उसने कहा—"बेटी पुराना खर है खुद बखुद गिर पड़ता है।" अमीना बोली—"मैंने तो भीतर से सुना अब्बा तुमने 'खर' खींचा।" वह फिर भी इधर-उधर करने लगा। अमीना बोली—"ऐसा करोगे तो यह दीवार भी गिर जायगी।" इस बात को गफूर से अधिक और कौन जानता था ? फिर अमीना ने कहा—"हाथ मुँह धोकर चलो खाने।" गफूर ने कहा—"अच्छा जरा माड़ तो दे महेश को पिला दूँ" अमीना बोली—"अब्बा आज तो माड़ भात में ही सूख गया।" सुनकर गफूर चुप ही रहा ऐसे दुःख के दिन में माड़ भी बरबाद नहीं किया जा सकता यह दस वर्ष की अमीना समझती थी। खाते समय गफूर ने कहा— 'बुखार है।" फिर सोचकर बोला—"यह भात महेश को न दे दो।"

सात दिन बाद अमीना खबर लाई कि महेश को कांजीहौस पहुँचाया गया क्योंकि उसने किसी के बाग के पौधों को खाया था। अमीना बोली—"छुड़ाने न जाओगे ?" वह संक्षिप्त रूप से बोला—'नहीं।' —"लेकिन अब्बा कहते हैं तीन दिन तक छुड़ाया नहीं गया तो कसाइयों के हाथ बेच दिया जायगा।" अमीना बोली। गफूर बोला—'बेचने दो।' रात को वह चुपचाप उठा और बनिये के पास पीतल का लोटा गिरवी रखकर एक रुपया लिया। अगले दिन महेश अपनी जगह पर दिखाई पड़ा।

एक बूढ़ा मुसलमान महेश को ध्यान से देख रहा था। गफूर पास ही चुपचाप बैठा था। बूढ़े ने बड़ी देर तक महेश को घूरने के बाद एक दस रुपये का नोट गफूर के हाथ में देकर कहा—"अच्छा लो पूरे दस ला !" फिर वह महेश की ओर जाकर रस्सी खोलने लगा तो गफूर एकदम सजकर उठा और नोट तथा पेशगी के दो रुपये भी वापस कर दिये और बोला—'जाओ मैं नहीं बेचता !" कसाई बोला— मियाँ उड़ो मत दबाव डालकर दो रुपये और चाहते हो न ? सो न लो चमड़े का जो कुछ दाम है, नहीं तो इसमें माल क्या है ? यह सुनकर गफूर तोबा-तोबा करके कमरे में घुस गया और वहाँ से कसाइयों को उसने कहा कि यदि वे सीधे से नहीं गये तो जमींदार के आदमियों को बुलाकर जूतों से पिटवाकर उन्हें निकलवा देगा। वे चले गये।

यह खबर जमींदार के यहाँ पहुँची कि गफूर बैल को कसाई के हाथ बेच रहा था बस जमींदार ने बुलाकर सैकड़ों ब्यंग सुनाई। गफूर ने कसूर मान लिया कान पकड़कर उठा-बैठा तब कहीं उसकी जान बची। सबने कहा— 'जमींदार साहब के प्रताप के कारण इतना बड़ा पाप होते-होते बच गया।"

किसी तरह दिन बीतते गये। गफूर ने कभी मजदूरी नहीं की थी पर अब वह खेत में मजदूरी की तलाश में फिरता। मजदूरी नहीं लगती वह झुँझलाकर लौट आता और लड़की पर नाहक बिगड़ता। एक दफे आकर उसने भात माँगा तो लड़की ने कहा कि भात नहीं बना क्योंकि

मालूम न था। इस पर उसने कहा "हरामजादी! तू सब का डालती है, बूढ़ा बाप चाहे भूखों मरे!" इत्यादि। उसने कहा— 'पानी ला।" पानी भी न था शायद अमीना को कुएँ से पानी लाने का मौका न लगा था जमींदार के कुएँ पर वह चढ़ नहीं सकती थी पर गफूर ने उसे एक थप्पड़ जमा दिया। फिर वह स्वयं भी कन्या को पकड़कर रोने लगा इस मातृहीन लड़की को उसने कितने प्यार से पाला था। इतने में जमींदार के यहाँ से एक सिपाही बुलाने आया। गफूर ने कहा—'अभी खाया-पिया नहीं बाद को आऊँगा।" इस पर सिपाही ने गाली देकर कहा—"जूतों से पीटते हुए ले चलूँगा।" गफूर ने कहा—"मल्का (रानी विक्टोरिया) के राज में कोई किसी का गुलाम नहीं है लगान देकर रहता हूँ नहीं आऊँगा।" पर उसकी बात न चली। एक घण्टे बाद जब वह जमींदार के यहाँ से लौटा तो उसका मुँह सूजा हुआ था। बात यह थी कि महेश ने छूटकर जमींदार के बाग में फूलों के पौधे खाये थे तथा जो धान सूख रहा था उस पर मुँह मारा था। इसी की सजा गफूर को मिली थी। गफूर इस हालत में घर आया तो देखा कि अमीना खड़ी रो रही है सामने फूटा घड़ा पड़ा है और महेश मुँह लगाकर मरुभूमि की तरह उसमें से निकले हुए पानी को पी रहा है। गफूर ने क्रोध के मारे आव देखा न ताव और सामने पड़े हल को महेश के सिर पर जोर से पटक दिया। महेश ने केवल एक बार सिर उठाने की चेष्टा की पर न उठ सका। उसका भेजा घुस गया था। उसकी आँखों में आँसू आये शायद कुछ रक्तबिन्दु भी। इसके बाद उसने हाथ-पैर फैला दिये और वह मर गया।

अमीना रो पड़ी—"अब्बा! तुमने क्या किया हमारा महेश मर गया।" गफूर न हिला न डुला न कुछ बोला। वह अपनी खाट पर लेट रहा। दो घण्टे के अन्दर दूसरे गाँव से आकर मोची महेश को टाँग ले गये। उनके हाथों में पैनी छुरी देखकर गफूर ने सिहर कर आँखें बन्द कर लीं। पड़ोसियों ने कहा—"जमींदार ने प्रायश्चित्त की व्यवस्था के लिए तर्करत्न

के पास आदमी भेजा है प्रायश्चित्त के रूप में तुझे घर का एक-एक बाँस बेच डालना पड़ेगा।

गफूर ने इन बातों का उत्तर नहीं दिया घुटनों पर सिर रखकर बैठा रहा। बड़ी रात गये गफूर ने लड़की को जगाकर कहा— 'चलो अमीना हम चलें।" अमीना बोली— कहाँ ? गफूर बोला— "चटकल में काम करने।" लड़की आश्चर्यचकित होकर पूछने लगी। इसके पहले बड़े-बड़े दुःख पड़े लेकिन गफूर चटकल में काम करने को यह कहकर राजी न हुआ था कि वहाँ मजहब नहीं रहता लड़कियों की इज्जत-आबरू नहीं रहती। अमीना पानी पीने का पीतल का लोटा तथा पीतल की थाली साथ में ले रही थी पर वह बोला—"इन सब को रहने दो बेटी उनसे मेरे महेश का प्राय-श्चित्त किया जायगा। अँधेरी रात में वह लड़की का हाथ पकड़कर बाहर हो गया इस गाँव में उसका न कोई रिश्तेदार था न मिलनेवाला। आँगन पार कर सड़क के किनारे उस बबूल के नीचे आकर वहाँ महेश मरा था एकाएक वह रोने लगा। नक्षत्रखचित काले आकाश की ओर मुँह उठा कर बोला— 'अल्लाह, मुझे जितनी खुशी हो सजा देना लेकिन मेरा महेश प्यास से मरा है। उसके चरने के लिए इतनी-सी जमीन भी न रक्खी जिसने तुम्हारी दी हुई घास तुम्हारा दिया हुआ पानी उसे न पीने दिया उसका कसूर तुम कभी माफ न करना।

× × ×

यह कहानी 'बंगवाणी' में प्रकाशित हुई थी स्पष्ट है कि इस कहानी में शरत् बाबू ने एक दूसरे ही मार्ग पर चलने की कोशिश की थी पर दुःख है कि इस ढर्रे पर वे अधिक दूर तक नहीं गये। शरत् बाबू अपनी प्रतिभा को यदि इस ढर्रे पर ले जाते तो सन्देह नहीं कि भारत के शरत् मात्र न रहकर यहाँ के गोर्की भी हो सकते। शरत् बाबू ने इस कहानी मे गरीबी के साथ जो सहानुभूति दिखाई है तथा उसका जो निदान किया है वह बहुत ही वस्तुवादी है। समाज में दरिद्रों का जो शोषण हो

रहा है उसका ऐसा चित्र न 'पल्ली-समाज' में है न 'अरक्षणीया' में यद्यपि इन दोनों पुस्तकों के बहुत-से पात्र गरीब हैं।

इस कहानी में शरत् बाबू ने वर्गयुद्ध का अच्छा दिग्दर्शन कराया है। यह द्रष्टव्य है कि किसान मुसलमान है और ज़मींदार तथा उसके पिछ-लग्गू हिन्दू। इस प्रकार सारे बंगाल की समस्या सामने आ गई। पृष्ठभूमि में साम्प्रदायिकता का निदान है। कथा का प्रारम्भ इस प्रकार होता है कि तर्करत्न गफूर पर दोष लगाते हैं कि वह बैल को कुछ खाने को नहीं देता। कहानी का अन्त इस प्रकार होता है कि गफूर आवेश में आकर बैल को मार डालता है और हिन्दू ज़मींदार की ओर से कहा जाता है कि उसे इसका ज़बर्दस्त प्रायश्चित्त करना पड़ेगा। नतीजा यह है कि वह घर छोड़कर भाग जाता है और चटकल में मजदूर हो जाता है। इस प्रकार का शोषक का धर्म शोषित को लूटने का एक अच्छा साधन सिद्ध होता है। किसान कैसे सर्वहारा होता है इसका इस कहानी में सुन्दर चित्रण है। डाक्टर सुकुमार सेन भी यह मानते हैं कि 'महेश' शरत्चन्द्र की श्रेष्ठ कहानी है। विश्वसाहित्य में बहुत कम कहानियाँ ऐसी होंगी, जिनमें इस कहानी की तरह विस्तृति और घनत्व है।

कथन में बाहुल्य नहीं है घटनाओं की प्रचुरता नहीं है फिर भी चित्र सर्वांग सुन्दर है। इस कहानी की एक और विशेषता यह है कि मूक प्राणी महेश तक मनुष्य की कहानियों का अधीनस्थ होकर दृष्टिगोचर होता है। ऐसा ज्ञात होता है जैसे वह सब कुछ समझ रहा है वह चुपचाप सभी अन्यायों तथा अत्याचारों को सहन कर रहा है और जब वे असहनीय हो जाते हैं तब जैसे वह अन्याय के विरुद्ध अभियान पर निकल पड़ा है।'

हमने शरत् बाबू की कहानियों का कुछ परिचय लिया। शरत्चन्द्र वस्तुवादी भी हैं क्योंकि वास्तविक जीवन से ही वे अपना ताना-बाना ग्रहण करते हैं पर जैसा कि मैं कह चुका हूँ वे वास्तविक का वास्तविक रूप न दिखाकर भावुकतामय रूप दिखाते हैं। सुप्रसिद्ध समालोचक

मोहितकुमार मजूमदार¹ के अनुसार "बँगला कथा-साहित्य में अब तक आदर्शवाद की ही विजय रही। बङ्किम की कल्पना में एक बड़े आदर्श (ideal) का उच्छ्वास (sentiment) है, रवीन्द्रनाथ की कल्पना में वस्तु (Real) और आदर्श (ideal) के समन्वय की चेष्टा है शरत्चन्द्र की कल्पना म वस्तु (real) का एक भावुकतापूर्ण रूप है। बङ्किम की कल्पना में वस्तु कोई बाधा न हो सकी वह कल्पना सम्पूर्ण रूप से निरंकुश और निरापद थी। रवीन्द्रनाथ की कल्पना में वस्तु का रूपान्तर हो गया है जैसे वस्तु की वास्तविकता ही लुप्त हो गई हो। शरत्चन्द्र की कल्पना में वस्तु (real) की समस्या जटिल हो गई है वस्तु के लिए एक प्रबल आवेग की सृष्टि हुई है। इस विचारा में ही हमारे साहित्य का आदर्शवाद (idealism) शायद खतम हो गया। अब इसके बाद जिस साहित्य की सृष्टि होगी उसमें सारी बातों से वस्तुओं और घटनाओं को समझना ही उसकी एकमात्र प्रेरणा होगी।"

---

पृ १७०

# शरत् के उपन्यास

कहानियों का परिचय कराने के बाद अब हम उनके उपन्यासों का संक्षिप्त परिचय पूर्व वर्णित ढंग से ही प्रस्तुत करते हैं। हम इस परिचय को चरित्रहीन से आरम्भ करेंगे क्योंकि इसी उपन्यास के कारण उन्हें पहले-पहल बहुत अधिक प्रसिद्धि प्राप्त हुई और गालियाँ भी मिलीं। यों तो हम इसके पहले पल्ली-समाज का परिचय दे चुके हैं। और पल्ली समाज की रचना भी पहले हुई थी पर चरित्रहीन की रचना के साथ ही वे राष्ट्रीय महत्त्व के लेखकों में गिने जाने लगे।

## चरित्रहीन

पश्चिम के एक बड़े शहर में परमहंस रामकृष्ण के जैसे किसी सत्कार्य के लिए चन्दा मांगने आये हैं उनकी सभा में उपेन्द्र ने बिना यह जाने कि यह कल्पित सत्कार्य है क्या, सभापतित्व करना स्वीकार कर लिया। इस सभा के उद्योक्ताओं ने सतीश को भी इस सभा में उपस्थित होने के लिए कहा पर उसने साफ इनकार कर दिया, क्योंकि उस दिन उसका ड्रेस रिहर्सल होने वाला है। इस पर उद्योक्ताओं ने उसकी हँसी उड़ाई तो उसने कहा—"आप कुछ न जानकर भी एक अनुष्ठान को सुन्दर तथा सही मान रहे हैं, पर रिहर्सल में कितना अच्छा और कितना बुरा है इसे मैं जानता हूँ इसलिये उसे छोड़कर एक अनिश्चित सत्कार्य में नहीं कूद सकता।" इत्यादि। इसी रूप में सतीश पहले सामने आता है।

तीन महीने बाद कलकत्ता के एक मेस में सतीश को हम फिर देखते हैं वह वहीं रहता है और होम्योपैथी पढ़ता है यानी समझता है कि पढ़ता है। उस मेस की नौकरानी सावित्री बड़ी अच्छी व्यवस्था करने वाली है

मेस के सब लोग उससे खुश हैं। साथ ही वह सुन्दरी भी है, पर मेस की नौकरानियों की तरह नहीं है। स्पष्ट है कि वह सतीश की विशेष देख भाल करती है यद्यपि दूसरों की देख भाल करने में भी वह त्रुटि नहीं करती। वह सतीश की ही क्यों सभी की विश्वास-पात्री है। सब लोग मेस में उसे अपने-अपने कमरे की चाबी दे जाते हैं। सतीश तो कैशबाक्स की चाबी भी उसी के पास रखता है। सतीश अक्सर होम्योपैथी के स्कूल में नहीं जाना चाहता पर सावित्री उसे एक बच्चे की तरह समझा-बुझाकर स्कूल भेजती है। सतीश का जीवन इस प्रकार स्वच्छ सरल तरीके से चलता है। एक दिन सावित्री कहती है—'मैं विपिन बाबू के यहाँ नौकरी करने जा रही हूँ।' इसपर सतीश बहुत नाराज हो जाता है यहाँ तक कि जाकर उसे पीटने के लिए तैयार हो जाता है। विपिन एक दुश्चरित्र पर धनी युवक है। जब सावित्री बताती है कि वह कहीं नहीं जायगी भले ही वहाँ अधिक तनख्वाह मिलने वाली हो तब सतीश शान्त होता है। इनमें छोटे-छोटे झगड़े बहुत होते हैं, पर शान्त हो जाते हैं फिर भी ऐसी हालत में जैसी घनिष्ठता होने की उम्मीद की जाती है, उसमें बराबर एक "यहाँ तक इसके आगे नहीं" का व्यवधान बना रहता है। सतीश को कभी-कभी ऐसा मालूम होता है कि गलता जा रहा है पर सावित्री बहुत पास आती मालूम होते हुए भी हट जाती है।

एक दिन सतीश पूछ बैठता है—'सावित्री तुम्हारी बातचीत तो अशिक्षिता स्त्री की तरह नहीं है, तुम तो बहुत पढ़ी-लिखी मालूम होती हो।" सावित्री खिलखिलाकर हँस पड़ती है, वह पूछती है—"बहुत कितनी ?" इतने में हल्ला करते हुए अपने दलबल सहित उसके पास विपिन के आने की आहट सुनाई पड़ती है। सतीश कुछ न सोचकर चरणों के तल का दिया बुझा देता है। सावित्री कहती है—'यह आपने क्या किया ?' पर इतने में दोस्त लोग आ जाते हैं। उनमें से एक ने दियासलाई जलाकर देखा तो पहले ही सावित्री दिखायी पड़ी। सावित्री का तो ऐसा हाल हुआ कि काटो तो लहू नहीं, वह फौरन निकल गई। पर वे लोग

शराब पिये हुए थे बड़े प्यार से ठहाका मारकर हँसने लगे फिर वे सतीश को पकड़ ले गये। सतीश वहाँ से शराब पीकर लौटा तो मेस के पास लड़खड़ा कर गिर पड़ा। सावित्री को इसकी आशंका थी वह जग रही थी। वह सतीश को वहाँ से उठा लाई। उसके जहाँ-जहाँ छिल गया था उसको धो दिया फिर बोली— "आप कहाँ गिर पड़े?" सतीश ने कहा "कहीं नहीं गिरा।" सावित्री रोती हुई बोली— "अब अगर किसी दिन आपने शराब पी तो मैं आपके पैरों में सिर टकराकर जान दे दूँगी।" सतीश ने कहा — "नहीं कभी नहीं पीऊँगा।" सावित्री ने कहा—"मेरा हाथ छूकर प्रतिज्ञा कीजिये।" सतीश ने ऐसा ही किया। सावित्री ने हाथ खींचकर कहा—"याद रहे आपने प्रतिज्ञा की।" सतीश ने कहा— "यदि याद न रहे तो याद करा देना।" सावित्री अपने ठीहे पर सोने चली गई पर जुगनू को सामने टिमटिमाता हुआ देखकर उसने कहा— "देवता तुम इस बात के साक्षी हो।"

अब हम उपेन्द्र को देखते हैं। दिवाकर उसका दूर का भाई है उसी के यहाँ रहता है इस समय बी० ए० का छात्र है। सुरबाला उपेन्द्र की स्त्री है बड़ी प्रेमशीला। सुरबाला के पिता धनी हैं उन्होंने एक पत्र लिखा कि सुरबाला की बहिन शादी के लिए उपेन्द्र कोई वर ठीक करे। उपेन्द्र कहता है— "तुम्हारे पिता धनी हैं उनकी कन्या के लिए वर की कमी न होगी।" सुरबाला कहती है—"यह कोई बात नहीं क्या तुमने मेरे पिता के रुपये देखकर मुझसे शादी की?" उपेन्द्र ने कहा—"यदि मैं इस पर हाँ कहूँ तो मेरी इज्जत तो रह जायगी पर वह सत्य नहीं होगा।" इस पर सुरबाला कहती है— "सत्य यह नहीं सत्य यह है कि जहाँ कहीं भी मैं पैदा होती तुम्हें वहाँ मुझसे ब्याह करने जाना पड़ता।" उपेन्द्र ने कहा—"मान लो तुम किसी कायस्थ के घर में पैदा होतीं तो?" सुरबाला ने तर्क करने के लिए नहीं बल्कि ध्रुव विश्वास के साथ कहा "वाह रे यह कहीं हो सकता है ब्राह्मण की लड़की होकर कायस्थ के घर कैसे पैदा होती?" यही सुरबाला है पति में उसका अटल विश्वास है। दिवा-

मौसी में यह तय हुआ कि सभी के विवाह के लिए वे दिवाकर को चुनतीं हैं ऐसा लिख दिया जाय।

सतीश शराब के नशे से छुटकारा पाकर दस बजे उठता है तो पानी माँगता है इस पर सावित्री कहती है—"आप बिना गायत्री जप किये और कभी पानी पीते हैं कि आज ही पीजियेगा। प्रतिवाद करना बेकार है यह समझकर सतीश रोज की तरह पूजा करता है। सतीश को धीरे-धीरे एक दिन मालूम होता है कि सावित्री रोज नियमित रूप से सन्ध्या-गायत्री करती है एकादशी के दिन पानी भी नहीं पीती मछली भी नहीं खाती दिन में केवल एक बार खाती है जैसे बंगाली विधवायें करती हैं।

सतीश कलकत्ते की सड़कों पर फिर रहा था तभी मोक्षदा नाम की एक पुरानी बुढ़िया नौकरानी से भेंट हो गई। मोक्षदा कई दिन से एक चिट्ठी पढ़ाने की फिक्र में घूम रही थी यह चिट्ठी कुछ ऐसी किस्म की थी कि उसे वह जिससे-तिससे पढ़ाना नहीं चाहती थी। चिट्ठी उसके घर म थी इसलिये वह सतीश को साथ लेकर घर गई, सतीश न मालूम क्या सोचकर राजी हो गया। मोक्षदा का कमरा ऐसा नहीं था जिसमें वह सतीश के ऐसे धनी आदमी को बैठाने की हिम्मत करती इसलिये उसने अपनी एक पड़ोसिन नौकरानी का कमरा खोलकर बैठाया। चिट्ठी पढ़ी गई। कमरा बहुत पवित्र तथा साफ था। सतीश ने एक पुस्तक भी देखी जिस पर भुवनचन्द्र मुखोपाध्याय का नाम था। इतने में सावित्री आई यह उसी का कमरा था। मोक्षदा ने सतीश के आने का कारण बताया। सावित्री ने यह नहीं बताया कि वह सतीश को जानती है उसने मोक्षदा की बातें सुन लीं फिर पूछा— 'यह तो हुआ मौसी पर बाबूजी ने आपके यहाँ चरणरज डालने के बजाय मेरे यहाँ क्यों डाली ?" मौसी खुश होकर बोली— "यह तो तेरा सौभाग्य है ये कैसे धर्म के लोग हैं तू क्या जाने।" सावित्री ने कहा— 'तो अच्छी बात है" फिर सतीश की ओर मुँह फेरकर बोली 'पंडितजी आपको कुछ जलपान तो कराना चाहिए, आप यदि मानें ही

है तो कुछ जलपान करें नहीं तो बड़ा पाप होगा। आपको भूख तो अवश्य लगी होगी।" इस तरह परिहास में शुरू होकर बातचीत सावित्री की ओर से पहले भावुकतापूर्ण उच्छ्वास में बदली फिर अप्रियता में खतम हुई। सतीश खा-पीकर लौट गया पर सावित्री करीब आकर भी करीब नहीं आई। सतीश यह समझ नहीं पाता था कि सावित्री क्यों इस प्रकार पास बुलाती है और पास आने पर निष्ठुर आघात देकर दूर हटा देती है। उसको तो इन बातों से यह सन्देह उत्पन्न हो गया कि कहीं सावित्री पागल तो नहीं है।

सतीश ने इस लुकाछिपी से परेशान होकर उसी दिन मेस छोड़ देने का निश्चय किया जब उसका सामान बँधकर तैयार हुआ और वह हिसाब चुकाने गया तो वहाँ पता लगा कि सावित्री आज आई ही नहीं। मेस के सब लोग सतीश के इस प्रकार चले जाने और सावित्री के न आने का एक ही अर्थ लगा रहे थे और ऐसा ही उन्होंने सतीश से साफ-साफ कह दिया। सतीश चला गया क्या करता सफाई देना व्यर्थ था पर उसने बूढ़े नौकर बिहारी को सावित्री की तलाश में भेजा।

जिस दिन बिहारी पहुँचा उस दिन सावित्री के मकान में कुछ अजीब हालत थी। सावित्री ने लौटकर देखा कि मकान भर में कच्चे प्याज के छिलके पड़े हैं मोक्षदा मौसी के मुँह से शराब की बू आ रही है और उसके कपड़े भी अजीब तरीके से विपर्यस्त हैं। उसने मोक्षदा से पूछा यह क्या तो वह मटककर बोली—"बाबू ने नकद बीस दिये तब मैंने बोतल मँगाया है वह तुम्हारे कमरे में बैठे हैं।" सावित्री का दिल धक से हुआ वह कौन? सतीश? वह डरते-डरते अपने कमरे में गई तो वहाँ विपिन बाबू उसके बिस्तरे पर गाढ़ी नींद में पड़े हुए थे। वह आश्चर्य भय तथा आशा भंग से विपिन को देख रही थी। ठीक इसी समय सतीश का भेजा हुआ बिहारी आया उसने देखा विपिन उसके बिछौने पर लेटा है और सावित्री अपलक नयनों से उसे देख रही है। उसने न कुछ पूछा न ठहरा जाकर सतीश से कह दिया कि सावित्री का कोई पता नहीं। उसने पूछा—

'मौसी से पूछा वह कहाँ गई ?' बिहारी ने कहा—'मौसी नहीं जानती वह कहाँ जाती ही नहीं।' सतीश उसी दिन कलकत्ता छोड़कर चला गया।

सतीश कलकत्ते से चला तो आया पर उपेन्द्र अपने एक मित्र के कलकत्ते में बहुत सख्त बीमार होने के कारण जब कलकत्ता जाने को तैयार हुए, तो सतीश को भी साथ ले लिया। हावड़ा स्टेशन पर उपेन्द्र के एक मित्र बैरिस्टर ज्योतिष राय आकर उन लोगों को अपने घर लिवा गये। सन्ध्या समय सतीश और उपेन्द्र अँधेरी गलियों को पारकर एक सीले हुए मकान के अन्दर घुसे। वहाँ एक अत्यन्त सुन्दरी स्त्री उनको रास्ता दिखा कर रोगी हारान बाबू के पास ले गयी। इस स्त्री के अतुलनीय रूप तथा हँसमुख चेहरे के साथ मृत्युशय्या पर शायित उसके पति का कैसे कोई सामंजस्य नहीं था। यही स्त्री किरणमयी थी। हारान ने उपेन्द्र से कहा—'मेरा दो हजार रुपये का बीमा है और यह टूटा मकान है ऐसी लिखा पढ़ी कर लो कि सब तुमको मिले। मेरे मरने के बाद तुम रखे और मेरी बुढ़िया माँ।' बाद विदाए जाने पर उन्होंने कहा—"हाँ मेरी स्त्री उसका कोई नहीं है उसको भी देखना।"

मकान से निकलते समय किरणमयी ने इसका पता पा लिया। उसने उपेन्द्र से पूछा कि क्या यह उपेन्द्र के लिए उचित होगा कि पति की सारी जायदाद की मालिक स्त्री न होकर वे ही हों। उपेन्द्र निरुत्तर हो गये पर सतीश ने कहा—'बहूजी यदि आपने ही स्त्री के अधिकार पैदा न किये होते तो आज यह दिन ही काहे को आता ?" किरणमयी का चेहरा फक पड़ गया उसने पूछा—'उन्होंने मेरे विषय में क्या कहा है जरा सुनूँ।' पर हारान ने किरणमयी के विषय में कुछ नहीं कहा था यह केवल सतीश का अँधेरे में एक ढेला था।

ज्योतिष राय की बहिन कुमारी सरोजिनी सतीश के गाने उसकी शारीरिक ताकत तथा साहस आदि से बहुत प्रभावित हुई। इधर सतीश तथा उपेन्द्र के जाने के बाद डाक्टर साहब आये नौकरानी ने किरणमयी

से कहा, पर आज वह बोली—"उसको जाने के लिए क्यों नहीं कहती उसकी दवा यहाँ कोई पीता तो है नहीं। नौकरानी समझ न पाई कि मामला क्या है कौन-सी बात इस बीच में हो गई जो डाक्टर का आना ही अनावश्यक हो गया। डाक्टर ने नौकरानी की बात सुन भी पर वह स्वयं ही किरण के पास आ धमका। किरणमयी बोली— 'जाओ न!" वह बोला—"जाता तो मैं जानता हूँ। अन्त में डाक्टर गया पर किरण ने पुकारकर कहा—"सुन जाओ यही आखिरी जाना है। किरणमयी इसका कारण बताने जा रही थी इतने में उपेन्द्र और सतीश आये। बात वहीं रह गई। उपेन्द्र और सतीश ने देखा डाक्टर चोर की तरह निकल गया।

कलकत्ता आकर सतीश को अपने बूढ़े नौकर बिहारी के जरिये सावित्री का हाल-चाल मालूम करने की धुन सवार हुई तब बिहारी ने थोड़ा बढ़ाकर बताया कि वह विपिन के साथ चली गई। यह बात सुनकर सतीश को इतना बुरा मालूम हुआ कि वह घूमने निकल गया। ज्योतिष बाबू के घर में सब लोग सतीश का ही इन्तजार कर रहे थे कि वह आकर आये किन्तु जब वह नहीं आया तो सरोजिनी से विवाह के इच्छुक नव बैरिस्टर शशांक ने सरोजिनी का ही गाने के लिए कहा। सरोजिनी ने शशांक को निराश किया।

किरणमयी के साथ उपेन्द्र की जो कुछ घनिष्ठता हुई उससे किरण के मन से यह भय दूर हो गया कि उपेन्द्र पति की सम्पत्ति से उसे वंचित करने के लिए आते-जाते हैं बल्कि कुछ धक्का ही लगी। एक दिन डाक्टर फिर आ धमका किरण से बोला—"तुम लोगों की जरूरत चाहे खतम हो गई हो मेरी जरूरत अभी खतम नहीं हुई। इसी बात को कहने के लिए मैं आया हूँ।" किरण बोली— आप क्या चाहते हैं? रुपये?" डाक्टर बोला "यह आप क्यों कहती हैं किरण? इतने दिन मैंने क्या माँगा था रुपए? फिर वह बोला—"रुपया नहीं चाहता यह नहीं कह सकता पर तुम्हारा वह अभाव नहीं रहा तो आज रुपये ही दे दो मैं दोनों तरफ

से ठगा जाना पसन्द न करूँगा।" किरण उठकर चली गई, और जाकर सब गहने डाक्टर को दे दिये—'यह लीजिये।' डाक्टर ने लेने से इनकार किया कुछ कहना चाहा लेकिन किरण ने एक न सुनी। उसे सब गहना लेना पड़ा। जाते हुए भी डाक्टर ने कहा—"यह सब मैंने नहीं दिया था।" पर बात खतम होने के पहले ही किरणमयी ने किवाड़ बन्द कर उसे जाने को मजबूर कर दिया।

उपेन्द्र बीच में ही दो दिन के लिए घर चल गये इसके बाद जब वे आने लगे तो पत्नी सुरबाला उनके साथ चली। दिवाकर भी चला क्योंकि वह बी० ए० में फेल हो गया था उपेन्द्र ने कहा वह कलकत्ते में रहकर पढ़े। सतीश को तार दिया गया था वह स्टेशन में आकर सबको अपने मकान में लिवा लाया पर सावित्री को सतीश के कमरे में बैठी देखकर उपेन्द्र उलटे पाँव लौटे और सुरबाला तथा दिवाकर के साथ ज्योतिष राय के यहाँ ठहरे। सावित्री के यहाँ होने का पता सतीश को न था अभी थोड़ी देर पहले उससे बिहारी की भेंट हुई थी। उसने बिहारी को बताया कि विपिनवाली बात झूठी है। बिहारी ने बताया था कि सतीश उसके बारे में क्या-क्या जानता है फिर भी उसने सतीश के सामने प्रकट न होना ही अच्छा समझा। वह बिहारी से कुछ रुपये लेकर काशी जा रही थी। जिस समय उपेन्द्र आये उस समय वह यही सोचकर सतीश के कमरे में बैठी थी कि सतीश बहुत रात गये आयेगा तब तक वह चली जायगी।

उपेन्द्र तो चल गये पर सतीश वहीं खड़ा रहा। उसने कहा "तुम? इस मकान में?" सावित्री समझ गई इशारा विपिन की ओर है फिर भी सच नहीं बोली क्योंकि उसने बिहारी से वादा किया था कि सतीश को वह असली बात नहीं बतायेगी ताकि बिहारी पर बाबू नाराज न हों। सतीश ने उसके चरित्र पर लांछन लगाकर कहा—'बस तुम लोग रुपये ही पहचानती हो।" इत्यादि वह चली गई। सतीश फिर शराब पीने लगा।

उपेन्द्र जरा-सा अपराध की गंध पाते ही सतीश के साथ पुरानी मित्रता का ख्याल न कर एकदम उसका घर छोड़ कर चले गये इस पर सतीश को बड़ा क्रोध आया। उपेन्द्र के यहाँ तो जाना व्यर्थ था वे अवश्य ही उसे दुतकारेंगे, इसका उसे पूर्ण विश्वास था। हाराण बाबू के घर में अगले दिन घुसते हुए उसने सोचा कहीं उपेन्द्र ने यहाँ का दरवाजा भी उसके लिए बन्द न कर दिया हो? इतने में नौकरानी ने उसे बुलाया तो जान में जान आई, पर किरणमयी के सामने रसोईघर में उपस्थित होते ही किरण ने जब अनायास ही उससे पूछा— 'क्यों देवरजी कल रात को नींद नहीं आई क्या चेहरा मुर्झाया हुआ है। सतीश ने आव देखा न ताव उसने समझा उपेन्द्र ने नमक-मिर्च के साथ कल की बात बतलाई है वह फुफकार कर बोल उठा— 'जी हाँ कल रातभर उसके साथ गुलछर्रे उड़ा रहा था यही तो उस हरामजादे ने कहा है" " इत्यादि। किरण आश्चर्य में पड़ गई, उनसे तो किसी ने कुछ भी न कहा था पर सतीश की गालियाँ बंद नहीं हुईं। उपेन्द्र शोर सुनकर आ गया सतीश चला गया। किरणमयी ने बाद को उपेन्द्र के जरिये से ही सतीश को बुलाना चाहा उपेन्द्र ने कहा— आदमी भेज दूंगा।

सरोजिनी गाड़ी पर सतीश के घर की ओर से आ रही थी उपेन्द्र ने सतीश को इस बात की खबर देते हुए दो पंक्तियों का एक पत्र सरोजिनी के हाथ दिया। सरोजिनी को बड़ा आश्चर्य हुआ सतीश अभी यहीं है? सरोजिनी सतीश के घर गई तो वहाँ सतीश नहीं था। सरोजिनी ने इसी मौके से सतीश का घर देख लेना चाहा तो वहाँ साड़ी सूखती मालूम पड़ी। उसने कौतूहलवश रसोइये से पूछा—"साड़ी किसकी है?" तो उसने कहा, "यह भाभी की है।" रसोइये ब्राह्मण ने सावित्री [illegible] विषय में जहाँ तक वह जानता था बतलाया यहाँ तक कि उपेन्द्र का सुरबाला को लेकर लौट जाना तथा ज्योतिष बाबू के घर जाने की बात भी उसे ज्ञात हुई।

हाराण बाबू मर गये। यह तय हुआ कि किरणमयी के पास रहकर

दिवाकर कलकत्ते में पढ़ता । दिवाकर और किरणमयी में जो बातचीत यहाँ से शुरू होती है वह geistreich विचारशील बातचीत का एक आदर्श है । एक दिन जबकि दिवाकर घूमने गया था उपेन्द्र आया । किरणमयी ताजी पूड़ियाँ निकाल कर देने लगी और बात करने लगी । यह बातचीत भी साहित्य में एक ही चीज है । वह कहती है 'यदि अन्धा गड्ढे में गिरे तो उसे सब लोग दौड़ कर उठाते हैं, पर यदि कोई प्रेम में अन्धा होकर गड्ढे में गिर पड़े तो सब उसे और ढकेलकर मिट्टी डालकर तोप देते हैं" इत्यादि । चलते-चलते उसके पति हारान पर बात चलती है वह कहती है— "मैंने उनसे कभी प्रेम न किया । न उन्होंने कभी मुझे प्यार किया न मैंने कभी उन्हें किया । लड़कपन में मेरी शादी हुई । पति विद्वान् थे वे मुझे पढ़ाया करते थे उसमें वे सफल भी हुए । मैंने उनसे बहुत सी पुस्तकें पढ़ीं पर मैं उनकी प्रेमसी या पत्नी न हुई । पति बीमार पड़े महीनों पड़े रहे । ऐसे समय में डाक्टर आये मेरा दिल प्रेम का भूखा था जो भी उसने दिया वह प्रेम नहीं हलाहल था पर मैंने उसे आकण्ठ पिया । असली न सही नकली ही सही मैंने उसे अपनाया । मैं हलाहल पीती ही जाती पर ऐसे समय अमृत का पता मुझे लगा ।" किरण ने ताक करके कहा उपेन्द्र ही वह अमृत है । उपेन्द्र ने सुन लिया पर वह चला गया । दिवाकर रह गया ।

सतीश अब आकर मानसिक स्वास्थ्य सुधारने के लिए एक जंगली इलाके में नौकर तथा रसोइये के साथ रहता था । इसी के पास बाबुओं के स्वास्थ्य सुधारने की एक जगह थी । यहाँ सरोजिनी आई थी वह गाड़ी पर टहलते समय एक दिन रास्ता भूल गई या न मालूम क्या हुआ सतीश के घर के पास गुण्डों द्वारा घेर ली गई । सतीश ने पुकार सुनकर उसे बचाया और उसे अपने घर पर ले आया वहाँ से सरोजिनी का भाई आकर उसे ले गया । इसी बीच में इन दोनों की घनिष्ठता पहले से बढ़ गई ।

उधर दिवाकर कलकत्ते में रहकर किरणमयी की देखरेख में बी० ए० पढ़ने लगा । उसने एक कहानी लिखी 'अंगूर की छुरी' किरणमयी

पढ़कर हँसी बोली— "देवरजी तुम किसी से प्रेम करते हो ?" "मैं ?" कहकर दिवाकर आश्चर्य में पड़ गया। किरण बोली—"यदि तुम प्रेम नहीं करते तो प्रेम का अनुभव तुमने कैसे लिखे कहीं तुम छिपकर मुझसे तो प्रेम नहीं करते ? किरण ने कहा— यदि प्रेम नहीं करते तो तुम्हारा यह लिखना व्यर्थ है क्योंकि यह अनुकरण ही है।" इस प्रकार किरणमयी अपनी असाधारण बुद्धि के कारण दिवाकर से खेलने लगी। दिवाकर उसकी बुद्धि तथा रूप से तिलमिलाकर अजीब परेशानी में रहने लगा।

उपेन्द्र घूमने कलकत्ता आया। उसने देखना चाहा कि दिवाकर कैसा लिख-पढ़ रहा है तो मालूम हुआ कि कालेज खुलने पर भी वह अभी तक कालेज में भर्ती नहीं हुआ। किरण की सास अघोरमयी ने उपेन्द्र से कहा— "पढ़े भी क्या उसको तो दिनभर बहू से छुट्टी ही नहीं मिलती।" उपेन्द्र ने इसका जो अर्थ लगाया उसे उसने जाते समय किरण से कहा— 'तुम्हारा छूना जाने को जी नहीं चाहता।" उपेन्द्र ने तय किया दिवाकर साथ चलेगा पर रात ही में दिवाकर को फुसला कर किरणमयी बर्मा भाग गई।

वे बर्मा में रहने लगे पर दिवाकर अपने से लड़ते-लड़ते इतना थक गया कि वह अब किरणमयी के लिए खतरनाक हो गया। किरण उससे प्रेम नहीं करती थी केवल उपेन्द्र को (जिससे वह सचमुच प्रेम करती थी) दुःख देने तथा उससे बदला लेने के लिए वह बर्मा भाग गई थी पर जब उसने दिवाकर का इस प्रकार खतरनाक होते देखा तो वह उससे लड़ पड़ी और वे अलग-अलग रहने लगे।

इधर सरोजिनी के घराने में सतीश की प्रतिष्ठा बढ़ी पर यद्यपि वह सरोजिनी के साथ विवाह करने का इच्छुक था एक दिन वहाँ आकर कह दिया कि सतीश तो सावित्री नाम की एक दासी के साथ रहता था। ज्योतिष ने सतीश से पूछा 'सावित्री से आपका क्या सम्बन्ध है ?" तो उसने कुछ सन्तोषजनक उत्तर नहीं दिया और उन लोगों से मिलना छोड़ दिया।

सतीश एक तांत्रिक बाबाजी के चक्कर में पड़ गया और शराब में डूबकर 'साधना' में तल्लीन हो गया। नौकर बिहारी बाबू का यह हाल देखकर बहुत डरा। वह बनारस जाकर सावित्री को बुला लाया। सावित्री ने आकर बाबाजी को तुरन्त भगा दिया। सतीश बीमार पड़ा। सावित्री सेवा करने लगी। फिर उसने उपेन्द्र को एक पत्र लिखा।

उपेन्द्र को यह पत्र पुरी में मिला। वहाँ वे सुरबाला की मृत्यु के बाद स्वास्थ्य सुधारने के लिए एक होटल में थे। इस होटल में रहते समय उन्हें सावित्री के पूरे इतिहास का पता मिला। वह इतिहास यह था कि सावित्री कुलीन ब्राह्मण की लड़की है। नौ साल में विधवा हुई, यही होटलवाला उसे भगा लाया था पर उसको अपने प्रेम से डिगाने में असमर्थ रहकर उसने पीछा छोड़ दिया। उपेन्द्र को जब यह हाल मालूम हुआ तो वे बहुत पछताये। इसलिये सावित्री का पत्र मिलते ही वे कलकत्ता के लिए रवाना हुए। वहाँ ज्योतिष के घर ठहरे। सरोजिनी सतीश की बीमारी की बात सुनकर उपेन्द्र के साथ सतीश के घर चल दी। वहाँ उपेन्द्र ने सावित्री से कहा— 'बहिन, हमें तुम्हारी जरूरत है। इन लोगों को पहचान लो" कहकर उसने सरोजिनी को दिखला दिया। सावित्री उपेन्द्र के साथ चली गई।

सतीश वहाँ जाकर दिवाकर तथा किरणमयी को ले आया। उपेन्द्र मृत्युशय्या पर था। किरणमयी पागल हो गई। वह उपेन्द्र के पास आकर बोली—"सुरबाला मर गई, यह सुनकर मेरे दुःख की कोई सीमा नहीं रही! वही तो मेरी गुरुआइन थी। उसी ने तो मुझसे कहा था ईश्वर है। हाय! अब यदि मैं इस बात का विश्वास करती!" अकस्मात् उसकी आँखें दिवाकर की ओर गईं तो उसके गिरे हुए चेहरे की ओर देखकर उसने कहा—"भाई, तुम क्यों ऐसी नीची निगाह किये हुए खड़े हो, तुम्हें क्या यह लोग लज्जा दे रहे हैं?" कहकर उपेन्द्र की ओर देखकर उसने कहा—"उसको कोई दुःख न हो देवरजी, वह किसी के मुकाबले में बुरा नहीं। हमारे हाथ में तुमने उसको जिस तरह सौंपा था मैं उसे उसी

प्रकार लौटा रही हूँ। इस सत्य की मैंने प्राणों से भी रक्षा की।"

उपेन्द्र मरते समय सावित्री से बोले—"अधिक बात मैं नहीं कह सकता, मैं एक तरफ तो तुम्हारे हाथों में सतीश और दिवाकर को दूसरी ओर किरणमयी और सरोजिनी को सौंपता हूँ।" फिर सतीश तथा दिवाकर से कहने लगे—"मैं सावित्री के भीतर भौजैया इसका अपमान न करना।"

उपेन्द्र मर गये।

यही 'चरित्रहीन' उपन्यास का सार है। इस पुस्तक के लिए शरत् बाबू पर लोग बेतरह नाराज क्यों हुए, यह समझ में नहीं आता। शरत् बाबू ने न तो इस पुस्तक में पाप की जय ही दिखलाई न पुण्य की पराजय ही। शरत् बाबू ने एक पत्र-लेखिका को उत्तर देते हुए अपने सम्बन्ध में कहा था—"समाज-संस्कार की कोई भी दुरभिसन्धि मुझमें नहीं है इस-लिये मेरी पुस्तकों में मनुष्य के दुःखों का विवरण है शायद समस्यायें भी हैं पर समाधान नहीं है। यह काम दूसरों का है मैं तो केवल कहानी-लेखक हूँ इसके अतिरिक्त कुछ भी नहीं।

"समाज नामक वस्तु को मैं मानता हूँ पर देवता करके नहीं। पुरुष तथा स्त्रियों के बहुत दिनों के पुंजीभूत मिथ्या अनेकों कुसंस्कार तथा अन्याय इसमें सम्मिलित हैं। हमारे खान-पान तथा रहन सहन में इसका शासन-दण्ड विशेष सतर्क नहीं है पर नरनारी के प्रेम के मामले में इसकी निर्दय मूर्ति दिखाई दे जाती है। मनुष्य को सब से अधिक इसी क्षेत्र में सामाजिक उत्पीड़न सहना पड़ता है। मनुष्य सबसे ज्यादा इससे ही डरता है इसकी अधीनता तो उसे इस क्षेत्र में माननी ही पड़ती है। सदियों का यह पुंजीभूत भय अन्त में आकर बाकायदा विधान का रूप धारण कर लेता है समाज इससे किसी को छुटकारा नहीं देना चाहता। पुरुष के लिए उतनी कठिनाइयाँ नहीं हैं। उसके लिए धोखा देने का रास्ता खुला हुआ है पर जिसके लिए किसी भी तरह छुटकारे का रास्ता नहीं खुला है वह है स्त्री। एकनिष्ठ प्रेम की मर्यादा को इस युग का साहित्यिक जो

मानता है, इसके प्रति उसकी श्रद्धा तथा सम्मान की कोई सीमा नहीं है पर जिस बात को वह सह नहीं सकता वह है उसके नाम से धोखा। उसे ऐसा प्रतीत होता है कि इसी धोखे के रास्ते से ही भविष्य सन्तानों की आत्मा में असत्य संक्रामित होता है और इसी के फलस्वरूप वे कायर ढोंगी निष्ठुर होकर पैदा ही होते हैं। सुविधा तथा प्रयोजन के तकाजे को मानकर कदाचित् लोग अनेक असत्यों को सत्य कह कर चलाते हैं पर केवल इसी बहाने से जाति के साहित्य को कलुषित करने जैसे पाप बहुत कम हैं। सामयिक जरूरत चाहे कुछ भी हो साहित्य को इस संकुचित दायरे से मुक्ति देनी पड़ेगी।"

यह पहले ही बताया जा चुका है कि 'चरित्रहीन' पर उन्हें सबसे ज्यादा गालियाँ अपने युग में मिलीं। पर वे स्वयं प्रारम्भ से ही यह समझते थे कि 'चरित्रहीन' उनकी एक प्रधान रचना है। उन्होंने १०-८-१९११ को लिखा—'इस समय चरित्रहीन की बड़ी छीछालेदर हो रही है। 'चरित्रहीन' प्रकाशित करने के समय लोगों का मुँह आसानी से बन्द करने के लिए हमें भी इस बीच में कुछ उपाय सोचना पड़ेगा। मैं विद्रूप करने पर उतर आऊँ तो कैसे हर पंक्ति और हर पृष्ठ पर विद्रूप कर सकता हूँ यह तुम जानते हो। मैंने इस बीच बहुत से हवाले खोज लिये हैं। रवीन्द्र साहित्य आदि से। और एक बात मैंने सावित्री को केवल मन की भीख पानी नहीं रखा। पहले से ही लोग उसे अथवा की आँखों से न देख इसका भी उपाय कर लिया है। मुझे विश्वास है कि यह कुछ बुरा नहीं रहा। क्रमशः प्रकाशित होनेवाले उपन्यास में उस तरह न करने पर पाठक नहीं पढ़ते। लोग भले ही निन्दा करें पर पढ़ने के लिए उत्सुक रहेंगे। हम लोग एक तरह से आशा करते हैं कि इससे 'यमुना' (मासिक पत्र) की बिक्री बढ़ेगी। नहीं तो इन अखबारों में फीके रसहीन उपन्यास निकलते ही रहते हैं जिन्हें कोई पढ़ता नहीं है। 'भारती' पत्र में प्रकाशित 'कामलता' 'पुण्यपुञ्ज' 'दीदी' 'अरण्यवास' आदि उपन्यासों को रुपये में बारह आने लोग नहीं पढ़ते और यदि कोई पढ़ता है तो बेगार टालने के लिए पढ़ता

होगा। 'मन्त्रशक्ति' उपन्यास को लो वही पुरोहित वही मन्दिर और सब बकवास कोई नहीं पढ़ता। दूसरों की बात क्या है मैं भी नहीं पढ़ता यद्यपि यह मेरा व्यवसाय है।

११ १०-१३ को फिर वह चरित्रहीन के सम्बन्ध में लिखते हैं—"तुम लोगों में 'चरित्रहीन' की जो बुराई फैलाई उससे वह बहुत क्षतिग्रस्त हो रहा है। यानी कस फलि न तार दिया है—CHARITRAHIN CREATING ALARMING SENSATION

मैं पूछता हूं उसमें है क्या? एक शरीफ घर की लड़की जिस कारण से भी हो मेस में नौकरानी का काम करती है (Character unquestionable नहीं) और एक शरीफ युवक उसके प्रेम में पड़ता है फिर भी अन्त तक उसे कोई लाभ प्रश्रय नहीं मिलता। और रवीन्द्रनाथ की 'चोखेर बालि' (आँख की किरकिरी) में शरीफ घर की विधवा अपने घर में यहाँ तक कि रिश्तेदारों में हो नष्ट हो रही है फिर भी किसी ने चूं तक नहीं की। बंकिमचन्द्र के 'कृष्णकान्त के वसीयतनामे' की रोहिणी याद है? इसी प्रकार 'मानसी पत्र' में प्रभात एक भद्र युवक के मुंह से और एक भद्र विधवा के सतीत्व नष्ट करने की बात ठान रहा है बस मेरे 'चरित्रहीन' में ही सारा दोष है। जो लोग अंग्रेजी फ्रेंच या जर्मन उपन्यास पढ़ रहे हैं वे अवश्य ही सोचेंगे यह सचमुच अनैतिक है या नहीं पर तुम लोगों ने भी इस मामले समझा है इसलिए मुझे दुःख है।

टालस्टाय का रिजरेक्शन एक उत्कृष्ट ग्रन्थ है। जो कुछ भी हो मैं यह स्वीकार नहीं करता और ऐसा इसलिये नहीं करता कि मैं नहीं समझता कि 'चरित्रहीन' में एक हरफ भी अनैतिक है। सम्भव है कुछ लोग इसमें दुर्गन्ध दर्गे पर लोग जो कह रहे हैं वह इसमें नहीं है। मैंने इसका नाम ही चरित्रहीन रखा है इसलिए इसमें कुछ कुत्सित्ती भाव जाग्रत करने की बात होगी ऐसी आशा तो नहीं की जा सकती। जिनकी इच्छा हो वे पढ़ेंगे और जो नाम से घबड़ाते हैं वे नहीं पढ़ेंगे।"

स्मरण रहे कि उन्होंने १०-२ १९१३ को इस सम्बन्ध में इससे भी

जोरदार शब्दों में लिखा था—"उन लोगों ने जहाँ तक पढ़ा है उसे शैली और चरित्र विश्लेषण की दृष्टि से रवीन्द्रनाथ से भी अच्छा पाया पर उन्हें भय है कि शायद मैं अन्त में जाकर बिगाड़ दूँ।"

इसी प्रकार उन्होंने एक पत्र में लिखा था— लोग पहले चाहे कुछ भी कहें पर अन्त में उनकी राय बदल जायगी मैं झींख मारना पसन्द नहीं करता और बिना तौले बात नहीं करता फिर भी कहता हूँ कि अन्त अवश्य ही अच्छा रहेगा। नैतिक हो या अनैतिक लोग इतना कहें कि हाँ रचना मार्के की है और इसमें बदनामी का क्या डर है। बदनामी होगी, तो मेरी होगी। इसके अलावा मैं यह थोड़े कह रहा हूँ कि मैं गीता की टीका कर रहा हूँ इसका नाम ही चरित्रहीन है इस प्रकार पाठक को पहले ही चेतावनी दी गई है कि न तो यह सुनीति प्रचारिणी सभा के लिए है और न स्कूली बच्चों की पाठ्य-पुस्तक है। इसके अलावा जो महान कृति वाली कला और मनोविज्ञान की दृष्टि से होगी उसमें दुश्चरित्र पात्र की अवतारणा जरूर होगी। रुपया सब कुछ नहीं है। देश की सेवा करनी चाहिये। यदि लोगों को वास्तविक शिक्षा दी जा सके कठमुल्लेपन के अत्याचार आदि के विरुद्ध भाव बताये जा सकें तो इससे बढ़कर आनन्द की वस्तु और क्या हो सकती है? आज शायद लोग हमारे जैसे क्षुद्र व्यक्तियों की बात न सुनें पर एक दिन सुनेंगे।

" 'चरित्रहीन' पर लोग क्या कहते हैं यह मुझे लिखना। इस पुस्तक के सम्बन्ध में लोग इतनी तरह की बातें कह रहे हैं। इस सम्बन्ध में कुछ ठीक-ठीक धारणा बनाना कठिन है। लोग इसे अनैतिक तो बता ही रहे हैं पर अंग्रेजी साहित्य में जो कुछ भी वास्तविक रूप से अच्छा है उसमें इससे कहीं अधिक अनैतिक घटनाओं की सहायता ली गई है। जो कुछ भी हो साहित्यिकों के मतों से मुझको सूचित करना।

शरत् बाबू की उपरोक्त उक्तियों से उनकी कला बहुत कुछ स्पष्ट हो जाती है। हमने बहुत ही बेढंगे तरीके से 'चरित्रहीन' उपन्यास का जो संक्षिप्त सार पाठक के सामने पेश किया है उसी से यह जाहिर

जाता है कि शरत् बाबू ने समाज-संस्कार की कोई चेष्टा नहीं की नहीं तो सतीश और सावित्री की बजाय वे सरोजिनी को बीच में लाकर उससे शादी नहीं करवाते। सावित्री बालविधवा है पर इसमें कोई शक नहीं कि वह सतीश से उतना ही महान् प्रेम करती है जितना कि कोई स्त्री किसी पुरुष से कर सकती है। फिर भी 'चरित्रहीन' के उपसंहार में इन दोनों का मिलन न होकर सरोजिनी के रूप में इन दोनों में चिरकाल के लिए एक दुर्लंघ्य व्यवधान की सृष्टि होती है। किरणमयी सामाजिक नियमों से बहुत व्यभिचारिणी है, क्योंकि उसने पति के रोग के समय डाक्टर से पति-पत्नी का सम्बन्ध कायम किया इसके बाद वह प्रेम में नहीं एक परपुरुष दिवाकर के साथ भाग गई, तथा मन में परपुरुष उपेन्द्र से प्रेम किया केवल यही नहीं उसे उस पर व्यक्त भी किया। यह सब है पर जैसा कि पहले मैं बतला चुका हूँ किरणमयी अपनी विद्वता की अपार गरिमा के बावजूद भी अन्त में चलकर एक भयंकर पगली हो गई। ऐसी हालत में यह तो कभी भी नहीं कहा जा सकता कि शरत् बाबू ने 'चरित्रहीन' में पाप की जय दिखलाई। शरत् बाबू ने किरणमयी को कितनी भी विदुषी करके दिखलाया हो पर उसके लिए उन्होंने कई बार पापिष्ठा आदि शब्द इस्तेमाल किए हैं इसे हम नहीं भूल सकते। मैं तो समझता हूँ कि यह एक तरह से किरणमयी के चरित्र को पाठक के सामने गिराना (prejudicial to her character) है। इतना होने पर भी शरत् बाबू ने किरणमयी को सहानुभूति के साथ चित्रित किया है यह कहा जा सकता है। शरत् बाबू किरणमयी को पापिष्ठा अवश्य कहते हैं, पर इसके माने यह नहीं कि उन्होंने उसे बिलकुल केस की तरह काला करके चित्रित किया हो। फ्रेंच में एक कहावत है tout comprendre, c'est tout pardonner यानी "सब कुछ जान लेने पर मनुष्य सब कुछ क्षमा करने के योग्य हो सकता है" शरत् बाबू ने इसी को सार्थक किया है। शरत् बाबू ने मानो इसी बात को अपने तिरपनवें जन्म-दिवस के उत्सव में बोलते हुए कहा था, "तरह-तरह की परिस्थितियों में पड़कर मैं तरह-

तरह के लोगों से मिला। मनुष्य को यदि अच्छी तरह खोजा जाय तो उसमें से तरह-तरह की चीजें निकलती हैं उस परिस्थिति में उनकी भूल चूक पदस्खलन से बिना सहानुभूति किये कोई रह ही नहीं सकता।"

'चरित्रहीन' उपन्यास में कोई भी उपसंहार ऐसा नहीं है जिसके कारण शरत् बाबू को हाहाकारी क्रान्तिकारी विद्रोही या कुलपिजन का खिताब दिया जा सके। सामाजिक रीतियों को पैरों तले रौंदकर विधवा विवाह या पाप की जय वे नहीं कराते फिर कौनसी ऐसी बात है जिसे देखकर बंगाल का सनातन समाज शरत् बाबू पर बौखला उठा? उस प्रश्न का उत्तर देने की चेष्टा करने के पूर्व हम पाठकों की दृष्टि इस ओर आकर्षित करेंगे कि 'पल्ली-समाज' की विधवा रमा से भी वे रमेश का विवाह नहीं कराते 'देवदास' की पार्वती के साथ देवदास के विवाह का तो प्रश्न ही नहीं उठता वह तो विधवा नहीं सधवा है और तलाक का प्रश्न ही उठाना बड़ा विकट है।

उपन्यास के उपसंहारों में इस प्रकार कोई क्रान्तिकारीत्व न होते हुए भी शरत् बाबू में ऐसी बातें हैं जो सनातन समाज की तबीयत खराब करके उसे क्षुब्ध कर देती हैं यह तो स्पष्ट ही दिखाई पड़ता है। ऐसा वे दो तरह से करते हैं एक तो यों कि नैतिक धरातल पर जो होना चाहिये वे उसी की जय दिखलाते हैं, व्यावहारिक या बाहरी जगत में वह भले ही न हो सके उदाहरणस्वरूप वे प्रत्येक विरागी भावापन्न पाठक के दिल में भी सतीश और सावित्री के मिलन की इच्छा उत्पन्न कर देते हैं पर साथ ही वे सामाजिक कारणों से ऐसा होने नहीं देते। इस प्रकार कहानी के दोनों धरातलों में जो सूक्ष्म तथा कहीं-कहीं स्थूल संघर्ष उत्पन्न होता है उससे इनका परिपाक अच्छा होता है ट्रेजेडी पैदा हो जाती है तथा भावों के संचार के लिए प्रशस्ततर क्षेत्र पैदा होता है। एक शब्द में इनमें उनकी कला अधिक शक्तिशाली हुई है भले ही उनके समाज-संस्कार की वर्दी न पहिनने पर भी उनकी पुस्तक समाज-संस्कार के लिए एक प्रबल आन्दोलन का रूप धारण करती

है क्योंकि यह हमें अपने चारों ओर दृष्टि दौड़ाने तथा हृदय टटोलने के लिए मजबूर करती है।

शरत् बाबू में जो दूसरी बात समाज के स्तम्भों को तिलमिला देनेवाली है वह है उनकी पुस्तकों में फैले हुए यत्र-तत्र भयंकर क्रान्तिकारी विचार जो पात्रों की परस्पर बातचीत के दौरान में पाठकों के सामने उपस्थित किये जाते हैं। इन क्रान्तिकारी विचारों की चाहे भले ही न दिखलायें पर उनमें जो सत्य है वह हृदय पर एक अमिट छाप छोड़ जाता है और यही बात समाज के ठेकेदारों को नापसन्द है।

'चरित्रहीन' में बातचीत के रूप में इस प्रकार के क्रान्तिकारी विचार बहुत आ गये हैं। अधिकतर ये विचार किरणमयी के मुँह से ही पेश किये गये हैं। ये विचार केवल एक क्रान्तिकारी की अग्निवर्षी वक्तृता ही नहीं हैं, बल्कि उनको व्यक्त करने में शरत् बाबू ने अपनी कला को पराकाष्ठा तक पहुँचा दिया है। शरत् बाबू किरणमयी के मुँह से केवल कुछ क्रान्तिकारी विचारों को ही सुन्दर रूप में प्रकट नहीं करते बल्कि वे कहीं-कहीं सृष्टि के रहस्यमय प्रश्नों पर भी यदा-कदा रोशनी की एक झलक डाल देते हैं। शरत् बाबू इन स्थलों पर कवि हो गये हैं, इन अंशों के कारण पुस्तक को जितनी भी बार पढ़ा जाय नया ही आनन्द प्राप्त होता है। स्मरण रहे शरत् बाबू ने इस प्रकार कवित्व के आवेश में जो रोशनी डाली है उसमें कविता के अतिरिक्त कुछ और भी है ऐसा न मालूम होने पर भी वह आधुनिकतम विज्ञान के अनुसार है।

'चरित्रहीन' का जो संक्षिप्त सार मैंने पाठकों के सामने पेश किया उसमें किरणमयी की इस बातचीत का नमूना न आ सका। अतः उसका कुछ थोड़ा-सा नमूना पाठकों के सम्मुख पेश किया जाता है। किरणमयी अभी बर्मा नहीं आयी है, वह उस पर्यालोचनीय अवस्था में है जिसमें वह दिवाकर से प्रेम न होने पर भी उसको लेकर भागती है। वह दिवाकर से कह रही है—"यही देह की यह जो चीज जिसे आप रूप कहते हैं यह पुरुषों की ही आँखों में ही नहीं मेरी आँखों में भी एक विचित्र वस्तु है।

घबरा कर कहा न पड़ जाय तब तक इस दुनिया में अन्याय तथा भूल रह ही जायगी और तब तक उसे क्षमा कर प्रश्रय देना ही पड़ेगा। पाप को दूर करने की सामर्थ्य नहीं साथ ही उसे सहन करने की क्षमता भी न रहे इससे क्या लाभ होगा देवरजी ?"

दिवाकर ने कहा "लाभ ही तो सब कुछ नहीं ? × × ×"

किरणमयी ने कहा—"अवश्य, पर पाप यदि मनुष्य के रक्त में ही मिला हुआ नहीं होता तो तुम्हारी ही बात सत्य होती। उस हालत में न्याय के अलावा संसार में कुछ न रह जाता। दया ममता क्षमा आदि हृदय-वृत्तियों का नाम तक भी किसी को पता नहीं होता।" इत्यादि।

किरणमयी और दिवाकर की बातचीत इस उपन्यास की जान है। इस में शरत् बाबू का बौद्धिक रूप प्रकट होता है। व्यंग से वे चक्कर कर देते हैं निर्णय दे देते हैं इसी कारण उनकी बातें समाज के ठेकेदारों को कभी पसन्द नहीं आईं।

'चरित्रहीन' के सम्बन्ध में हमने जो कुछ कहा है उसे संक्षेप में फिर से दुहरा दें। वह यह कि 'चरित्रहीन' कोई क्रान्तिकारी उपन्यास इस अर्थ में नहीं है कि उसमें पात्रों के क्रान्तिकारी परिणाम दिखलाये गए हैं बल्कि इसके विपरीत उसके उपसंहार सम्पूर्ण रूप से प्रतिक्रियावादी हैं। सतीश सावित्री से विवाह न कर सरोजिनी से करता है किरणमयी पगली हो जाती है तथा सुरबाला के मुकाबले में पराजित हो जाती है इत्यादि। अवश्य उपसंहार प्रतिक्रियावादी होने के कारण पूरी रचना प्रतिक्रियावादी हो गई ऐसा नहीं कहा जा सकता क्योंकि उपसंहार चाहे जो कुछ हो रचनाक्रम के दौरान पाठक का मन बन चुका है और वह चाहता है कि उपसंहार और ही होता तो ठीक था। उपसंहार आशानुरूप न होने से पाठक के मन में समाज-पद्धति के विरुद्ध और भी अधिक क्षोभ आता है वह और भी क्षुब्ध हो उठता है। क्या इस दृष्टि से ऐसे उपसंहारों को प्रतिक्रियावादी कहा जा सकता है यह विचार्य है। प्रश्न तो यह है कि लेखक किस धारा के प्रति सहानुभूति उत्पन्न करने में समर्थ होता है। यदि शरत्

बाबू सावित्री और सतीश का मिलन कराते तो 'चरित्रहीन' की ट्रेजेडी न उतनी चुभती [redacted] होती न हम उसकी तिक्तिता से तिलमिलाकर अपने चारों तरफ देखने को विवश होते। यहाँ तक तो शरत् बाबू वस्तुवादी हैं यानी उसी को चित्रित करते हैं जो हमारे चारों तरफ मौजूद है पर यहीं पर उनका वस्तुवाद खतम हो जाता है। इस ट्रेजेडी का जो स्वाभाविक नतीजा असन्तोष है वह हम उनके उन पात्रों में भी नहीं देखते जिनमें असन्तोष का होना अनिवार्य था। मान लिया कि सामाजिक बन्धनों के कारण सतीश और सावित्री में परस्पर गम्भीरतम प्रेम होते हुए भी उनका मिलन न हो सका यह भी मान लिया कि सतीश—वह सतीश जो सावित्री को उपेन्द्र के साथ जाने देना नहीं चाहता था—सरोजिनी की तरह एक प्रेम करनेवाली पत्नी को पाकर कुछ दूर तक बहल गया पर सावित्री का क्या हुआ ? शरत् बाबू के अनुसार उसने इस परम हानि को आत्म-समर्पण के साथ ग्रहण कर लिया यहीं पर शरत् बाबू आदर्शवादी हैं। शरत् बाबू एक श्रेष्ठ कलाकार हैं इसलिये वे अपने इस आदर्शवाद को अना-यास ही प्रकट नहीं होने देते तथा उसको स्वाभाविक रूप से विकसित कर दिखाने के लिए लम्बी-चौड़ी बातों की अवतारणा करते हैं। सिसक-सिसककर रोती हुई सावित्री सतीश को सरोजिनी के सुपुर्द करते समय कहती नजर आती है—'पूछते हो तुम्हें प्यार करती हूँ कि नहीं नहीं तो किस बूते पर तुम पर मेरा इतना जोर होता क्यों मुझे इतना सुख होता और क्यों मेरा दुःख ही इतना महान् होता। अभी इसी कारण तो मैंने तुम्हें इतना दुःख दिया किसी भी प्रकार मैं अपनी इस देह को तुम्हारे सुपुर्द नहीं कर सकी। आज मैं तुम्हारे निकट कोई भी बात न छिपाऊँगी। मेरी यह देह आज भी नष्ट नहीं हुई, पर तुम्हारे चरणों में अर्पित होने की मर्यादा भी इसमें न रही। इसी देह की सहायता से इसे दिखाकर मैंने जान-बूझकर बहुतों का मुग्ध किया है इस बात का तो मैं किसी भी प्रकार नहीं भूल सकती। इसके द्वारा और चाहे जिसकी सेवा हो सके पर तुम्हारी पूजा इससे नहीं हो सकती। यदि मैं इतना प्यार न करती तो कदाचित्

तुम्हें आज इस प्रकार छोड़कर न जाती।" कहकर वह बारबार आँसु पोंछने लगी।

सतीश कुछ देर तक स्तब्ध होकर पड़ा रहा फिर बोला—"तो मुझे तुम्हारी देह की जरूरत नहीं पर तुम्हारा मन ? इसके द्वारा तो तुम कभी किसी को भुलाने नहीं गई ? वह तो मेरा ही है न ?"

सावित्री उसी क्षण बोली— "इससे मैंने किसी को कभी भुलाना नहीं चाहा। यह तुम्हारा ही है यहाँ के प्रभु हमेशा तुम्हीं रहोगे। अन्तर्यामी जानते हैं जब तक जीऊँगी चाहे जिस हालत में भी रहूँ मन से हमेशा तुम्हारी ही दासी रहूँगी।"

इस प्रकार यह दिखलाया गया कि सावित्री ने जान-बूझकर सतीश को सरोजिनी के हाथों सौंप दिया इससे सावित्री का चरित्र जिस गौरवमय रंग में रंगा जाकर पाठक के सामने आता है उसकी तुलना नारी चरित्र-प्रधान शरत्-साहित्य में भी नहीं है पर साथ ही यह गौरव स्वयं एक अपरिवर्तनवादी गौरव है। 'चरित्रहीन' का सुरबाला-चरित्र सनातन नैतिक पातिव्रत्य में अपना सानी नहीं रखता पर सावित्री के प्रेम तथा त्याग के सामने वह भी फीका पड़ जाता है। यहीं पर शरत् बाबू आदर्शवादी हैं और वस्तुवाद का रास्ता उनसे जुदा हो जाता है। सावित्री-चरित्र की ओर ध्यान देने पर सचमुच यह समझ में नहीं आता कि शरत् बाबू पर सनातन धर्म का ठेकेदार समाज नाराज क्यों हुआ।

शरत्-साहित्य की सावित्री कोई अकेली उपज नहीं बल्कि उसकी एक परम्परा ही मौजूद है। 'देवदास' की पार्वती इसी परम्परा की एक उपज है अवश्य उसमें और सावित्री में अभेद है। सावित्री बालविधवा है पार्वती सधवा है पर पार्वती की शादी उसके प्रेमिक देवदास से न होकर एक गतयौवन विधुर जमींदार से होती है। पार्वती और देवदास के चरित्र शरत्-साहित्य की अनोखी उपज हैं इसलिए हम देवदास उपन्यास का संक्षिप्त सार पाठक के सामने प्रस्तुत करेंगे जिससे इन दोनों चरित्रों की पूरी पश्चाद्भूमि एक बार आँखों के सामने आ जाय।

## देवदास

सबसे पहले हम देवदास को पाठशाला के एक शरारती बालक के रूप में देखते हैं। वह इतना शरारती है कि जिस समय स्कूल में टिफिन की छुट्टी होती है उस समय भी उसे छुट्टी नहीं दी जाती। पाठशाला के किसी लड़के से उसकी दोस्ती नहीं है, केवल पार्वती से मेलजोल है। पार्वती भी उसी पाठशाला की छात्रा है। बेचारी पार्वती से जहाँ तक होता है वह देवदास का हुक्म बजाती है पर देवदास कभी-कभी उस पर नाराज हो जाता है तो उसे पीट डालता है फिर पीटने के बाद उसको प्यार भी करता है।

जब देवदास पाठशाला में कुछ भी शिक्षा प्राप्त न कर पाया तो उसे कलकत्ता भेजकर पढ़ाया जाने लगा। उसने बच्चे की तरह पार्वती से कलकत्ता न जाने की जो प्रतिज्ञा की थी उसे पिता की बकझक के सामने न रख पाया। बहुत दिनों बाद देवदास गाँव आया तो उसने पार्वती को कलकत्ता की बातें बताईं। पार्वती की ओर से कोई नई बात नहीं थी जो भी उसे वह कह न सकी। फिर देवदास कलकत्ता चला गया। पार्वती के घरवालों के मन में यह इच्छा तथा आशा थी कि देवदास के साथ पार्वती का विवाह हो पर देवदास की माता ने एक दिन यह बात साफ कर दी कि ऐसा नहीं हो सकता।

कलकत्ता के छात्र-जीवन में देवदास पार्वती को भूलता जा रहा था पर पार्वती इधर ग्राम्यजीवन में बराबर उसी का ध्यान करती रहती थी। पार्वती की शादी एक विधुर धनी के साथ तय हो गई। देवदास गाँव में आया था उसने भी सुना। देवदास अपने कमरे में सो रहा था रात का एक बज रहा था पार्वती ने चुपके से उसके कमरे में दाखिल होकर उसे झकझोरकर जगाया। देवदास पहले तो घबराया कि किसी ने देख तो नहीं लिया पर पार्वती बोली—नदी में पानी बहुत है क्या इतने पानी में भी मेरा कलंक नहीं छूट सकेगा? अकस्मात् देवदास ने हाथ पकड़

लिया— 'पार्वती !' पार्वती ने देवदास के चरणों में सिर रख दिया और बोली— देवु भैया इन चरणों में जरा स्थान दो।" देवदास देर तक पार्वती की ओर देखता रहा पार्वती के गरम आँसू उसके पैरों पर गिरते रहे। बड़ी देर के बाद वह बोला— 'क्यों पारू क्या मेरे अलावा तुम्हारी कोई गति नहीं है ?

पार्वती कुछ न बोली। देवदास फिर बोला—"जानती हो इसमें घर के लोगों की बिलकुल राय नहीं है।

पार्वती फिर भी कुछ न बोली उसी प्रकार देवदास के चरणों में सिर डाले पड़ी रही। घड़ी में टन् से एक बजा। देवदास ने पुकारा—'पारू ! देवदास ने घर के लोगों की राय न होने की बात कही, पर पार्वती बोली— मैं कुछ भी नहीं जानना चाहती देवु भैया ! देवदास ने पूछा—"पिता-माता का बागी हो जाऊँ ?" पार्वती ने उत्तर दिया— 'हरज क्या है हो जाओ।

—"फिर तुम कहाँ रहोगी ?"

— 'तुम्हारे चरणों में !" रोकर पार्वती बोली। बातें करते-करते चार बज गये थे देवदास ने उसे घर पहुँचा दिया।

देवदास ने अगले दिन पिता से बातचीत की पर वे टस से मस नहीं हुए। देवदास उसी दिन कलकत्ता रवाना हो गया। वहाँ से उसने पार्वती को एक पत्र लिखा— और एक बात तुम्हें मैंने कभी बहुत प्यार किया हो ऐसा मुझे मालूम नहीं हुआ आज भी मन में तुम्हारे लिए बहुत कष्ट नहीं मालूम हो रहा है। मेरा दुःख सिर्फ यही है कि तुम मेरे लिए दुःख पाओगी। कोशिश करके मुझे भूल जाना और मेरा आन्तरिक आशीर्वाद है कि तुम इसमें सफल होओ।

देवदास कलकत्ते में जाकर एक वेश्या के घर गया पर वहाँ जी न लगा। वह दो-चार दिन में ही गाँव लौट आया। यहीं पोखरे के पास पार्वती से उसकी भेंट हो गई। देवदास ने पार्वती को बुलाया बोला— 'मुझे माफ करो पारू। मैं अपने को समझ नहीं पाया था वैसे भी हो

पिता-माता को राजी करूँगा।

पार्वती ने देवदास के चेहरे पर तीखी दृष्टि डाली। बोली—"तुम्हारे मां-बाप हैं मेरे नहीं हैं? उनकी राय की जरूरत नहीं है?"

—"क्यों नहीं पारू, उनकी राय तो है ही, सिर्फ तुम..."

—"तुमने कैसे जाना उनकी राय है, उनकी राय बिलकुल नहीं है।"

देवदास ने बहुत समझाया पर पार्वती अटल रही। बोली—"मैंने तुमको प्यार नहीं किया, मैं तुमसे केवल डरती ही रही। राह छोड़ दो।"

देवदास इस पर क्रुद्ध हो गया और बाँसुरी उस पर दे मारी, जिससे पार्वती की भौंहों के बीच जरा फट गया और टप-टप खून गिरने लगा। पार्वती रो पड़ी—"देवू भैया!" देवदास की आँखों में आँसू आ गये। उसने स्नेह से रुँधे हुए गले से कहा—"क्यों पारू!" शायद बातों में इसी प्रकार कुछ और बातचीत होती, पर इतने में किसी की आहट पाकर वे अलग हो गये।

यथासमय पार्वती का विवाह हाथीपोता के जमींदार श्री भुवनमोहन चौधरी के साथ हो गया। वह यथासमय पति के घर चली गई। वहाँ वह अपने से अधिक उम्र के पुत्र के साथ बड़े मजे में गृहस्थी चलाने लगी। उसके घर में आने से भुवन बाबू के घर की हालत ऐसी बदल गई जैसे स्वयं लक्ष्मी आ गई हों। भुवन बाबू की एक सयानी लड़की इस शादी से नाराज थी पर पार्वती ने अपने स्नेह तथा त्याग से उसे भी वश में कर लिया।

देवदास के पिता का देहान्त हो गया। सारी सम्पत्ति का भार देवदास के हाथ में आया। पार्वती भी मायके में आई थी। देवदास से उसकी भेंट हुई तथा कुशलप्रश्न हुआ। पार्वती ने देवदास के साथ हमेशा रहनेवाले नौकर धर्मदास से पूछा तो पता चला कि अब सम्पत्ति हाथ में आ जाने से देवदास बिलकुल बिगड़ जायगा। सच बात तो यह है, वह शराब पीता है और न मालूम कितने हजार रुपयों का गहना बनवाकर उसकी नजर कर चुका है।" पार्वती सन्न रह गई। चाह उमन हो तो

अपने पैरों पर कुल्हाड़ी मारी थी पर अब वह कुल्हाड़ी उसी के सिर गिर रही है। वह दूसरे की गृहस्थी सँभालने के लिए मरी जा रही है और उसका देवु भैया इस प्रकार नष्ट हो रहा है।

शाम को वह देवदास से मिली। देवदास ने कहा—"हम दोनों ने बचपन किया उसके फलस्वरूप क्या से क्या हो गया। तुमने क्रोध में क्या-क्या कहा और मैंने तुम्हारे ललाट पर यह दाग दे दिया।

देवदास ने ये बातें हँसते हुए कही थीं पर पार्वती का हृदय जैसे फट गया। वह बोली—"देवु भैया! यही दाग तो मेरी सान्त्वना तथा सम्बल है। तुम मुझे प्यार करते थे इसलिए दया कर बचपन का इतिहास तुमने मेरे माथे पर लिख दिया। यह मेरी लज्जा नहीं है कलंक नहीं है मेरे गौरव की सामग्री है।"

देवदास पार्वती की ओर देखता रहा। बोला—"तेरे ऊपर बड़ा क्रोध आता है × × पिताजी गये आज यदि तुम होती तो फिर मुझे चिन्ता ही क्या होती?" पार्वती रोने लगी। आते समय पार्वती ने केवल एक बात माँगी वह यह कि देवदास एक बार उसकी देखरेख में उसके नये घर में आकर रहे। देवदास ने कहा—"हाँ आऊँगा मेरी सँभाल करने पर यदि तुम्हारा कष्ट दूर हो तो आऊँगा क्यों नहीं? मरने के पहले भी तुम्हारी यह इच्छा मुझे याद रहेगी।

देवदास अपनी माँ को काशीजी पहुँचाकर फिर कलकत्ता लौट गया। वहाँ वह जिस वेश्या के पास अधिक जाने लगा था पता लगाने पर ज्ञात हुआ कि उसने वेश्यावृत्ति छोड़ दी। उसका नाम चन्द्रमुखी था। देवदास के साथ प्रेम हो जाने के कारण ही उसके जीवन में यह कायापलट हो गई थी। चन्द्रमुखी अब देवदास के गाँव के पास एक शरीफ औरत की तरह कुछ जमीन खरीदकर रहने लगी थी।

अपनी सखी मनोरमा से पार्वती को एक पत्र मिला जिससे पता चला कि देवदास हद दर्जे का उच्छृंखल जीवन बिता रहा है शराब पीता है इत्यादि। मनोरमा ने लिखा था—'वह गाँव में आया था मैं सामने

पड़ गई, तो मुझसे कहने लगा कि तुम लोगों को देखकर बड़ी खुशी होती है। मैं तो डरी कि कहीं मेरे ऊपर हाथ न डाल दे पर वह इतना ही कहकर चला गया। सुनती हूँ बहुत ही भ्रष्ट है।" यह पत्र पाकर पार्वती अपने गाँव के लिए रवाना हुई, पर देवदास गाँव से चल चुका था। पार्वती ने सिर धुन लिया—"किस्मत की बात है।" वह मनोरमा से मिली। मनोरमा बोली—"क्या तुम देवदास को देखने आई थीं ?

—"नहीं, उनको साथ ले जाने के लिए आई थी। यहाँ उनका अपना आदमी तो कोई है नहीं।"

मनोरमा अवाक् रह गई, बोली—"कहती क्या है, तुम्हें लज्जा नहीं लगती ?"

—"लज्जा किस बात की ? अपनी चीज को ले जाऊँगी, इसमें लज्जा की क्या बात है।"

—"छि, यह क्या बात कहती हो ! कोई रिश्ता भी तो नहीं है, इस बात को मुँह पर मत लाना।"

पार्वती म्लान हँसी हँसकर बोली—"मनो बहिन, जब से होश हुआ तब से मन में यह बात जमी है, इसीलिए कभी-कभी यह बात मुँह से निकल जाती है। तुम मेरी बहिन हो, इसलिए तुमने यह बात सुनी।"

अगले दिन पार्वती फिर अपने पतिगृह के लिए रवाना हो गई।

चन्द्रमुखी को गाँव में रहते समय ज्ञात हुआ कि देवदास कलकत्ते में बड़े जोरों के साथ फिर वही पुराना रवैया चला रहा है। जाने कितने हजार रुपए फूंक डाले। यह सुनकर चन्द्रमुखी कलकत्ते गई, और गिरवी के गहने छुड़ाकर फिर मकान पर बैठ गई पर जो आता उसे ही निराशा देती। वह सब तरह से देवदास का पता लगा रही थी। अन्त में देवदास का पता लगा। वह शराब पीकर सड़क पर पड़ा था, चन्द्रमुखी उसे उठा लाई। इसी हालत में वह शराब माँगने लगा। चन्द्रमुखी उसे बड़ी कठिनता से सुला पाई। जब वह जगा तो चन्द्रमुखी को पहचान गया। देवदास के पेट में दर्द था, डाक्टर बुलाया गया, उसने परीक्षा

करके सिर हिला लिया। दो दिन से बुखार भी आया। एक महीने से अधिक इलाज होने पर देवदास कुछ ठीक हुआ। इसी के बाद देवदास ने चन्द्रमुखी से वे बातें कही हैं जिसमें उसने कहा कि वह समझ नहीं पाता कि वह चन्द्रमुखी का अधिक प्यार करता है या पार्वती को।

स्वास्थ्य सुधारने के लिए देवदास इलाहाबाद गया पर स्वास्थ्य में कुछ भी उन्नति नहीं हो रही थी। वहाँ से वह बम्बई गया तो कुछ स्वास्थ्य सुधरा। तब हुगली का टिकट लेकर घर चलने को तैयार हुआ। बनारस के बाद उसे गाड़ी में बुखार आया। गाड़ी जब पाडुआ स्टेशन पर पहुँची तो वह चुपके से साथ के पुराने नौकर धर्मदास को न बताकर रेल से उतर गया और काँपता हुआ स्टेशन के बाहर निकल कर घोड़ागाड़ी वाले से कहा— 'हातीपोता चलेगा ?" गाड़ीवान ने रास्ता खराब बता कर चलने से इनकार किया तब पालकी खोजी गई, वह भी न मिली। देवदास सन्न रह गया तो क्या वह पार्वती के यहाँ न पहुँच सकेगा ? बड़ी कठिनता से एक बैलगाड़ी मिली। बैलगाड़ी के गाड़ीवान ने कहा— 'बाबू रास्ता खराब है, हातीपोता पहुँचने में दो दिन लगेंगे। देवदास मन ही मन हिसाब करने लगा— दो दिन ? दो दिन मैं जीऊँगा भी ?" फिर भी वह गाड़ी पर चढ़ गया। गाड़ी पर बैठकर माँ की याद आई फिर चन्द्रमुखी की। जिसको पापिष्ठा समझकर उसने हमेशा घृणा की थी आज उसी को जननी के बगल में गौरव के साथ प्रकट होते देख उसकी आँखों में आँसू आ गये।

गाड़ी पर चढ़ने के बाद देवदास का ज्वर बढ़ गया। जब अगले दिन दुपहर को गाड़ी ठहरी तब भी कई कोस बाकी थे। गाड़ी ठहराकर बैलों को चारा देते हुए गाड़ीवान पूछा— 'बाबू, तुम कुछ न खाओगे ?"

—"नहीं बड़ी प्यास लगी है थोड़ा पानी दे सकते हो ? गाड़ीवान पास ही के तालाब से पानी ले आया। अब तो देवदास की नाक से साँस के साथ टप-टप करके खून भी निकल रहा था। सन्ध्या समय भी देवदास ने पूछा— कितना बाकी है ?" गाड़ीवान ने कहा—"दो कोस राह

[..] बजे पहुँच जाऊँगा।" जब गाड़ी निर्दिष्ट जगह पर पहुँची तो गाड़ीवान ने आवाज दी 'बाबू सो गये?' देवदास के ओठ हिल उठे पर कुछ बोल न सका। उसने हाथ उठाना चाहा पर हाथ न उठा। गाड़ीवान ने पीपल की बँधी हुई वेदी के नीचे बिस्तरा लगाकर देवदास को सुला दिया। सवेरे लोग इकट्ठा हुए पुलिस आई गाड़ीवान जो कुछ जानता था कह गया। डाक्टर आया बोला—"अन्तिम अवस्था है।" ऊपर से पार्वती ने सुनकर आह भरी।

पुलिस ने जब की तलाशी ली अँगूठी देखी चिट्ठियाँ पढ़ीं तो ज्ञात हुआ कि यह तालसोनापुर के देवदास मुखोपाध्याय की लाश है। ब्राह्मण होते हुए भी उसकी लाश को गाँववालों ने छूना न चाहा तो चाण्डालों के द्वारा उठवाकर अधजली करके डाल दी गई। पार्वती ने घर में पूछा—'कौन था जी?"

उमर में बड़े उसके लड़के ने कहा—'देवदास मुखोपाध्याय।

पार्वती को विश्वास न हुआ उसने पूरा विवरण पूछा तो मालूम हुआ हाँ वही है। वह दौड़कर उतरने लगी। उसके पुत्र ने पूछा—'कहाँ चलीं?" पार्वती बोली—"देवू भैया के पास।

—"वे तो हैं नहीं उनको डोम ले गये।

—"माँ! माँ!! चीखती हुई पार्वती दौड़ी।

महेन्द्र दौड़कर सामने आकर, बाधा देने को हुआ। वह बोला — तुम पागल हो गई क्या माँ, कहाँ जा रही हो?"

पार्वती ने महेन्द्र पर तीक्ष्ण कटाक्ष किया बोली— महेन्द्र क्या तुम मुझे सचमुच पागल समझ रहे हो? रास्ता छोड़ दो।

महेन्द्र ने रास्ता छोड़ दिया बाहर उस समय भी कारिन्दे काम कर रहे थे। भुवन बाबू ने आँख पर चश्मा चढ़ाते हुए पूछा— कौन है?"

महेन्द्र बोला— 'छोटी अम्मा जा रही है!

— 'क्यों? कहाँ?'

महेन्द्र ने कहा— 'देवदास को देखने।"

भुवन चौधरी चिल्ला उठे— 'तुम लोग सब के सब पागल हो गये क्या? पकड़ो पकड़ो पकड़ लो उसे पागल हो गई है। ओ महेन्द्र! ओ छोटी बहू!"

इसके बाद नौकरानियों ने मिलकर पार्वती की मूर्छित देह को मकान के अन्दर किया। दूसरे दिन जब उसकी मूर्छा टूटी उसने केवल इतना पूछा—"रात में आकर पहुँचे थे न? ओह सारी रात?"

× × ×

यही देवदास उपन्यास है। इसमें शरत् बाबू ने विशेष समाज क्रान्ति कराई हो ऐसा तो मालूम नहीं होता। देवदास और पार्वती एक दूसरे से प्रेम करते हैं। एक साधारण झगड़े के कारण अवश्य इस झगड़े की पश्चाद्भूमि में सनातन समाज है पार्वती का विवाह एक ऐसे व्यक्ति से होता है जिसके विरुद्ध उसे कुछ भी कहना नहीं है फिर भी जिसे वह प्यार करने में असमर्थ है क्योंकि उसका हृदय देवदास के प्रेम से सराबोर है। दोनों अर्थात् देवदास और पार्वती अपनी गलती बाद को महसूस करते हैं पर कुछ कर नहीं पाते क्योंकि पार्वती का विवाह हो चुका है और वह विवाह किसी भी तरह हट नहीं सकता बिलकुल अमिट है। कोई महिमा क्रान्ति का तकाजा तो यह है कि पार्वती अपने विवाहित पति को तलाक दे देती और हृदय के पति के साथ विवाह कर लेती। ऐसा होने में पहली बाधा तो यह है कि हिन्दुओं में तलाक नहीं था जिसके जिसकी शादी हो जाती वह मृत्यु तक के लिये हो जाती। दूसरी बात यह है कि यदि शरत् बाबू अपने उद्भावनशील मस्तिष्क से और कोई तरीका निकालकर पार्वती को देवदास के निकट पहुँचा भी देते तो वे साधारण हिन्दू विवाह की भयानक ट्रेजेडी को अपनी कला के मुकुर में कैसे उभार पाते? इस-लिये उन्होंने पार्वती और देवदास के प्रेम को वहीं पहुँचा दिया है, वहाँ पहुँचाने से वे घर-घर में होने वाली हिन्दू विवाह की ट्रेजेडी को बिलकुल मूर्त कर पाते। इस दृष्टि से देखा जाने पर शरत् बाबू सूक्ष्म रूप से क्रिया

धीन क्रान्तिकारी के ही रूप में हमारे सामने आते हैं। देवदास और पार्वती शरत् बाबू के दिमाग की उपज नहीं हैं, बल्कि वे भारतवर्ष के घर घर में मौजूद हैं। इस प्रकार भारतीय विवाह के खोल के अन्दर की पोल को इस सुन्दरता से उधेड़कर खोल डालने में वे समर्थ हुए हैं। यहाँ तक तो वे वस्तुवादी हैं पर जब हम देखते हैं कि उन्होंने पार्वती और देवदास की तरह एक-दूसरे को निबिड़ रूप से प्यार करने वाले व्यक्तियों के अन्दर भूल से भी एक चुम्बन तक होने नहीं दिया केवल यही नहीं इस आत्मत्याग को एक सराहनीय परिप्रेक्षित में पेश करते हैं तो हमें सन्देह होने लगता है कि वैवाहिक क्रान्ति के प्रति उनका जो इशारा है वह कहीं इच्छाकृत तो नहीं है या ऐसी विपत्ति में पड़े हुए दो चाहनेवालों के लिए उनका कथन कहीं यह तो नहीं है कि वे तब तक इसी पद्धति के सामने घुटना टेककर अपने जीवन को तथा दूसरों के जीवन को नष्ट करते रहें, जब तक सामूहिक सुधार न हो जाय।

शरत् बाबू चाहते रहे हों या नहीं पर 'देवदास' पुस्तक तलाक के लिए एक उचित मुकदमा खड़ा करती है जैसे 'चरित्रहीन' विधवा-विवाह के लिए एक तर्क पेश करता है यद्यपि उसमें सरोजिनी के बीच में आ जाने से वह तर्क डूब-सा गया है। 'पल्लीसमाज' में विधवा-विवाह का तर्क और पक्का 'चरित्रहीन' से कहीं साफ है। 'देवदास' में फिर भी एक समस्या है वह यह कि यदि मान लिया जाय कि स्त्री-पुरुष के मिलन के क्षेत्र में प्रेमजन्य विवाह ही आखिरी शब्द अन्तिम मीमांसा है तो देवदास किसका है? चन्द्रमुखी का या पार्वती का? पार्वती भी देवदास को प्रेम करती है चन्द्रमुखी भी यों तो यही मालूम पड़ता है कि पार्वती देवदास से अधिक प्रेम करती है इसलिये उसी का पलड़ा भारी होना चाहिए पर जरा गहरी खोज करने पर पार्वती का यह वजन टिक नहीं सकता। पार्वती प्रेम करती है फिर भी दूसरे से शादी कर लेती है अवश्य उसको बहुत कुछ मजबूर होकर ऐसा करना पड़ा यह कहा जा सकता है पर चन्द्रमुखी देवदास से प्रेम करने लगती है तो एकदम अपने जीवन की कायापलट कर देती है।

वह वेश्यावृत्ति ही छोड़ देती है। चन्द्रमुखी यदि पार्वती की तरह भुवन चौधरी के साथ ब्याही जाती, तो वह इस नियति तथा अदृष्ट को इस प्रकार न मान बैठती वह भाग जाती न मालूम क्या करती शायद वह एक फ्रेंच उपन्यास की नायिका की तरह देवदास के सम्मुख आकर कहती—"मैं तुमसे अलग नहीं रह सकती पत्नी की मर्यादा तुम मुझे न दो समाज न दे पर मैं तुम्हारी उपपत्नी होकर ही रहूँगी साथ न छोड़ूँगी।" इसीलिये यह एक समस्या है और यह एक सामाजिक समस्या है कि यदि एक व्यक्ति को दो स्त्रियाँ चाहें तो हमारे माने हुए शुभ प्रेमजन्य विवाह के अनुसार वह किससे विवाह करे ? इसका उत्तर तो सहज मालूम होता है, वह यह कि प्रेमजन्य विवाह का तकाजा यह है कि आकर्षण पारस्परिक हो पर यदि यह कहा जाय कि वह व्यक्ति दोनों स्त्रियों को चाहता है तब तो समस्या और भी कठिन हो जाती है। देवदास उपन्यास में परिस्थिति सचमुच इसी रूप को पहुँच गई है पर चन्द्रमुखी वेश्या थी इसलिये पाठक की सहानुभूति उसकी ओर उतनी नहीं जाती जितनी पार्वती ही पार्वती नजर आती है।

चन्द्रमुखी जिस प्रकार वेश्या से एक शरीफ औरत हो जाती है केवल यही नहीं देवदास की आँखों में उसकी माँ तथा पार्वती की समतुल्य मर्यादा पाने में समर्थ होती है यह इस बात को दिखलाता है कि शरत् बाबू के नजदीक एक वेश्या हेय नहीं वह भी उठ सकती है। समस्त शरत्-साहित्य में भी चन्द्रमुखी एक ही चरित्र है जो एक बाजारू वेश्या से फिर उठती है। जब वह उठती है तब हम देखते हैं कि वह किसी पतिव्रता से कम प्यार नहीं करती। यदि चन्द्रमुखी अपनी बुद्धिमत्ता से देवदास को ठीक समय पर खोज निकालकर इलाज न कराती तो देवदास पार्वती के दरवाजे पर न मरकर कलकत्ते की किसी सड़क पर मरा पड़ा मिलता।

हम यहाँ पर पाठकों की दृष्टि फिर से इस बात की ओर आकर्षित करना चाहते हैं कि देवदास का चरित्र मूलतः सतीश से मिलता है। सतीश

और देवदास दोनों निकम्मे धनी युवक हैं, दोनों को रुपये-पैसे की कोई चिन्ता नहीं है, दोनों जिसके साथ प्रेम में पड़ते हैं उसको पाते नहीं हैं। फिर भी यह एक देखने की बात है कि 'चरित्रहीन' के सतीश के प्रति पाठक की सहानुभूति उतनी नहीं जगती जितनी देवदास के प्रति जगती है, यद्यपि मनुष्यता की दृष्टि से दोनों एक ही समतल पर हैं, बल्कि सच बात तो यह है कि सतीश देवदास से कुछ ऊँचे दर्जे का व्यक्ति है। फिर देवदास के प्रति इस सहानुभूति का कारण क्या है यदि हम विचार करें तो ज्ञात होगा कि इसमें एक बात है, वह यह कि सतीश जो वेश्यागामी तथा शराबी हो जाता है उसका कारण सावित्री से उसका प्रेम व्यर्थ हो जाना नहीं है, कम से कम वही एकमात्र कारण नहीं है, पर देवदास के वेश्यागामी तथा शराबी हो जाने का एकमात्र कारण पार्वती के साथ उसके प्रेम का निष्फल हो जाना है। इसी कारण देवदास बिगड़कर एक साधारण आवारा में परिणत हो जाता है, फिर भी उसके प्रति पाठक की सहानुभूति बराबर बनी रहती है तथा जब वह मरता है तो उसे प्रेम के एक शहीद की मर्यादा प्राप्त होती है।

यदि सतानुगतिकता के साथ सनातन समाज की दृष्टि से देखा जाय तो पार्वती कोई सती नहीं है, यद्यपि वह अविचलित प्रेम की देवी है। प्रेम और सतानुगतिक सतीत्व में इस सम्भव विरोधिता को दिखलाकर तथा प्रेम के ही प्रति पाठक की सहानुभूति उत्पन्न कर वर्तमान विवाह प्रथा के खोखलेपन को दर्शाया गया है। 'देवदास' में यह बात बड़े पैनेपन के साथ व्यक्त हो गई है कि विवाह एक बार हो जाने के बाद जो वह टूट नहीं सकता, यह एक निरर्थक गलत पद्धति है। इसके बाद 'चरित्रहीन' तथा 'देवदास' में भी एक और बात की ओर हम दृष्टि आकृष्ट करना चाहते हैं। वह यह कि देवदास के उदाहरण से स्पष्ट हो जाता है कि शरत् बाबू की समझ में एक व्यक्ति वेश्यागामी होते हुए भी अपनी प्रेमिका के प्रति विश्वस्त बना रह सकता है। देवदास ऐसा ही है, सतीश ऐसा ही है। इस तथ्य को बिना गलत या सही बताये ही हम मान सकते हैं कि

यह बात बिलकुल असम्भव नहीं है, यानी इसमें नियम का व्यतिरेक होते हुए भी ऐसा कभी-कभी शायद हो सकता है। बर्ट्रान्ड रसेल तो यहाँ तक मानते हैं कि यदि स्त्री या पति का एकाध दफे पदस्खलन भी हो जाय तो उसको कुछ न समझना चाहिए क्योंकि इससे उनके सम्बन्ध में कोई फर्क नहीं आता।

'देवदास' में कोई सुन्दर या दार्शनिक बातचीत हम नहीं मिलती। उसमें का कोई भी पात्र या पात्री दार्शनिकता प्रकट करती हुई या एक साधारण नियम निकालकर परस्पर बातचीत करती हुई हमें नहीं मिलती। इसी कारण बुद्धि की आतशबाजी कहीं न दीख पड़ने पर भी 'देवदास' उपन्यास में हमें गीतिकविता का निर्मल आनन्द आता है। 'देवदास' में चुभती हुई, फड़कती हुई बातचीत तो कई जगह आती है ऐसी जो एक दफे पढ़ ले तो याद रहे पर उसमें तर्क का वैसा प्रकाश या चमत्कार नहीं है जो 'चरित्रहीन' की किरणमयी की बातचीत में है। पार्वती प्रेम की नगी प्रेममयी है, उसमें मानो बुद्धि की प्रखरता की गुंजाइश ही नहीं है। जहाँ वह कहती है कि 'तुमने मेरे माथे पर छपा कर बचपन का इतिहास लिख दिया" वहाँ पर उसकी बातें कितनी प्रेम से सनी हैं जो कभी भुलाई नहीं जा सकती।

हम पाठक को शरत्-साहित्य का कुछ परिचय दे चुके। आगे हम 'बामुनेर मेये' (ब्राह्मण की लड़की) नामक प्रसिद्ध उपन्यास का परिचय देंगे जिसमें उन्होंने केवल धार्मिक ढोंग को ही नहीं हिन्दुओं के वर्णाश्रम की जड़ पर भी सबसे जबरदस्त आघात किया है। उनकी सब पुस्तकों के लिए हिन्दू-समाज उन्हें क्षमा कर सकता है पर 'बामुनेर मेये' में उन्होंने हिन्दुओं की समाज-पद्धति की मौलिक चीजों को जो जबर्दस्त धक्का दिया है और जो भयानक चोट उसे पहुँचाई है वह अतुलनीय है। 'चरित्रहीन' को मैं पहले ही बहुत अंशों में एक अपरिवर्तनवादी बता चुका हूँ। सन्देह नहीं कि 'बामुनेर मेये' की चोट इसके मुकाबले में बहुत गहरी और तिलमिला देनेवाली है।

# बामुनेर मेये (ब्राह्मण की बेटी)

मुहल्ला घूमना खतम कर राममणि सन्ध्या के पहले घर लौट रही थी। साथ में दस-बारह वर्ष की नाती थी। वह फुदकती हुई आगे-आगे चल रही थी सामने रस्सी से बँधा हुआ एक बकरी का बच्चा सो रहा था वह उस रस्सी को लाँघ गई। बस इस पर बाकी राममणि बहुत बिगड़ गई कि मजूमदार की चारदेखा में उसने ब्राह्मण की लड़की होकर बकरी की रस्सी कैसे लाँघ ली। सामने ही बारह-तेरह वर्ष की एक चमार (दुले) की लड़की खड़ी दिखाई दी कि राममणि अभी कम्पन कि नहीं उसने पोंछी को छू तक नहीं लिया फिर लगी नाराज होने कि चमारों के पुरवे से यहाँ ब्राह्मणों के पुरवे में वह क्योंकर बकरी बाँधने आई। उस लड़की ने बतलाया कि अब वह इसी पुरवे में रहती है। बात यह है कि उसको तथा उसकी माता को उसके पिता के मरते ही बिरादरी वालों ने निकाल दिया था। उस समय गोलोक बन्द्योपाध्याय के दामाद ने इनको यहाँ रहने की जगह दी थी।

अब तो राममणि बकरी की रस्सी भूल गई। वह पहुँची उन्हीं के घर जिन्होंने इस निर्भय ही यहाँ पर चमार-परिवार को लाकर ब्राह्मण टोले में बसाया था। वह घर पर नहीं था तो उसकी लड़की सन्ध्या पर ही बरस पड़ी। बोली—"तुम्हारे बाप अपने ससुर की जायदाद भोग रहे हैं भोगें पर यह क्या अनाचार कि ब्राह्मणटोले में चमारों को लाकर बसायें।" सन्ध्या भी उत्तर नहीं इससे न सन्ध्या की माँ जगद्धात्री शोर सुनकर आ गई। जगद्धात्री को देखकर राममणि आपे से बाहर होकर चिल्लाती हुई बोली—"सुनती हो लड़की की बात कहती है गोलोक चटर्ज्या ना हमारे पिता का सिर ही काट लेंगे। कहती है अपनी जमीन पर हमने चमार बसाया किसी के बाप का क्या?" सन्ध्या ने एक भी बात ऐसी न कही थी फिर भी जगद्धात्री जब उस पर बिगड़ने लगी तो वह लाज के मारे भीतर चली गई।

रासमणि आजकल की सभी लड़कियों की एक ही साँस में बुराई करने लगी, फिर बोली— "अमृत चक्रवर्ती का लड़का तुम्हारे यहाँ आता-जाता है क्या ? मैं तो कल पुलिन की माँ से इसी बात पर लड़ गई कि भला अम्मो के रहते हुए ऐसा भ्रष्टाचार हो सकता है।" दरअसल अरुण की ओर था जो समाज के स्तम्भों की आवाज को ठुकराकर विलायत गया था।

जगद्धात्री गाँव की इन रासमणि मौसी को जानती थी। वह समझ गई कि रासमणि की बात यदि न मानी गई तो वह सन्ध्या के चरित्र के सम्बन्ध में अजीब-अजीब कहानी रचना न छोड़ेगी। इसलिये उसने पति को समझाकर 'चमट्टों का ब्राह्मणटोले से निकलवा देना' सहज ही में कबूल कर लिया। बोली—"अच्छा मौसी मैं कल ही उन्हें खड़े-खड़े निकलवा दूँगी। वे रहेंगे तो हमारे ही पोखरे से पानी-वानी लेंगे। फिर उन्हीं का पानी छू-छूकर तो हमें भी चलना-फिरना पड़ेगा।" जाते समय रासमणि कह गई— 'सुनती हूँ सन्ध्या का बाप उसे पढ़ा रहा है' सुनकर गोलोक वहाँ तो अवाक रह गये। उन्होंने कहा—भला करो इस बात को जल्दी मना करो। पढ़ी कि बस बिगड़ी।"

जगद्धात्री के पति प्रियनाथ को दुनिया की कुछ परवाह न थी। वे अपने को होम्योपैथी के जगद्विख्यात पण्डित समझते थे। उनको बस इसी की धुन लगी रहती थी कि कोई रोगी उनकी दी हुई दवा पीना स्वीकार करे, पर रोगी उनसे ऐसे भागते थे जैसे यमराज से। फिर भी यदि कोई उनकी दवा पीना स्वीकार करता तो वे अपने को कृतकृत्य समझते थे। केवल जी जान से उसकी सेवा ही नहीं करते थे बल्कि उसको पथ्य के लिए अंगूर अनार भी पहुँचाते थे। साथ होम्योपैथी में उनके प्रतियोगी पराण से ही चिकित्सा करवाते थे। मुकर्जीपवर लोग सन्ध्या से भी दवा ले जाते थे पर प्रियनाथ बाबू से कोई चिकित्सा न करवाता था। प्रियनाथ ने जहाँ सुना कि दस-पाँच गाँव के अन्दर कोई बीमार है तो वे स्वयं ही जा पहुँचते थे। इस प्रकार रोगियों के विचार में ही वे दिन बिताते थे। अक्सर न खाने के समय घर से पहुँचते। जगद्धात्री नाराज होती पर

सन्ध्या चुपचाप प्रतीक्षा करती।

जिस गोलोक चट्टो के नाम से गाँव के ढोर-बकरी एक घाट पर पानी पीते थे तथा जिसका नाम लेकर रासमणि ने सन्ध्या और जगद्धात्री को डराया था अभी हाल में उनकी स्त्री की मृत्यु हुई थी। उनकी स्त्री की सेवा करने के लिए साली आई थी। वह बाल-विधवा थी करीब पच्चीस साल की उम्र थी। वह अब जाना चाहती थी पर गोलोक चट्टो उसे जाने देना नहीं चाहते थे। वे उसी से अपनी स्त्री का नुकसान भूलना चाहते थे। गोलोक चट्टो छोटे-मोटे खाते-पीते जमींदार थे पर वे इसी पर निर्भर करनेवाले व्यक्ति नहीं थे वे भीतर ही भीतर चोरदार बाबू के साथ साझे में विलायत में बकरी तथा भेड़ चालान देने का कारोबार करते थे।

सन्ध्या कुछ दिन से बीमार थी। अभी उसने साबूदाना लिया था। वह बैठकर पान खा रही थी इतने में अरुण आ गया। वह पसीने से लथपथ था तथा उसका मुँह सूखा हुआ था। बात यह है कि वह कलकत्ते से आया था पर अभी घर न जाकर स्टेशन से सीधा यहीं आया था। सन्ध्या ने कोई बुनने का पैटर्न मँगाया था उसी को देने के लिए वह घर न जाकर पहले यहीं आया था। सन्ध्या उसी पैटर्न की परीक्षा करती हुई उससे कह रही थी— इतनी जल्दी की क्या जरूरत थी? भैया! तुम बाद को आते?" इतने में जगद्धात्री बाहर न आई तो अरुण को देख कर जल उठी और सन्ध्या से बोली—"जरा पान मुँह से थूक दे फिर जितना चाहे मजाक करो।" वह आँधी की तरह आई थी आँधी की तरह चली गई।

अरुण सन्न रह गया। सन्ध्या कुछ देर चुप रही फिर पान थूककर रुआँसी होकर बोली— 'क्यों तुम इस मकान में आते हो अरुन भैया क्या तुम हम लोगों का सर्वनाश करके ही मानोगे?'

पहले तो अरुण से कुछ बोला न गया, फिर धीरे धीरे बोला— 'तुमने मुँह का पान थूक दिया सन्ध्या क्या मैं सचमुच तुम्हारे लिए अछूत हूँ?"

सन्ध्या चीख चीखती हुई बोली—"तुम विलायत गये हो म्लेच्छ हो ईसाई हो। तुम मेरे ही निकट नहीं सब के निकट अछूत हो। तुम्हें याद नहीं उस दिन तुम्हें पीतल के लोटे में पानी पीने को दिया गया था?"

पर मैंने समझा था —फिर अरुण कुछ और बोल न पाया। एक मिनट के लिए स्थिर रहकर वह बोला—"मैं शायद इस घर में कभी न आऊँ पर मुझसे घृणा न करना सन्ध्या। मैंने कभी कोई घृणित काम नहीं किया।" अरुण चला गया। जगद्धात्री कहीं पास ही खड़ी थी, वह मुस्कराती हुई आकर बोली—"अब शायद न आये।" पर वह इतने ही से कुछ न हुई। सन्ध्या को कपड़ा भी बदलने का हुक्म हुआ। सन्ध्या राजी हो गई। इतने में मकान के अन्दर आँगन में किसी ने जग्गो करके पुकारा। जगद्धात्री बोली अरे! यह तो स्वयं गोलोक चटर्जी हैं।

गोलोक एकदम सामने आ गया। उसने सन्ध्या की तबियत खराब होने की बात पूछी। जगद्धात्री ने कहा 'अभी तो आज भी मालूम ही रहा है।' गोलोक बोला—"कहीं तो सन्ध्या अब तक कई लड़कों की माँ होकर किसी का घर बसाती, कहाँ तुमने उसकी अभी शादी न की। उसकी इतनी उम्र हो गई।"

जगद्धात्री डरी कि न मालूम अब क्या आनेवाला है, बोली—"लड़की के पिता को कुछ फिक्र भी हो। वे तो दवा करने में ही पागल हो रहे हैं।"

गोलोक बोला—"सभी तो मुझे मालूम है। सुना है तो प्रण किया है कि कार्तिकेय की तरह दूल्हा न मिले तो शादी ही न करेगी। तू तो यह जानती है कि हम कुलीनों में तो बहुत से लोगों को मरते-मरते कन्या का दान लेकर दूसरों की कुलीनता की रक्षा करनी पड़ती थी। मधुसूदन तू ही सत्य है।"

थोड़ी देर इधर-उधर के बाद गोलोक सन्ध्या की ओर देखकर बोल उठा—"अच्छा जग्गो, तुम्हें यदि कार्तिकेय न चाहिए तो इसका भार ही हाथ क्यों न सौंप दो। क्यों सन्ध्या? मुझे पसन्द तो करोगी?"

सन्ध्या शायद दूसरे समय इसे मजाक में लेती पर इस समय उसी

भूमी भी बोल उठी—'क्यों नहीं दादा आप रस्सी की खाट पर चढ़कर सामने घोर मैं माला लेकर खड़ी रहूँगी। यह कहकर वह जल्दी से चली गई।

गोलोक का चेहरा तमतमा गया पर वह हँसकर बोला—"पोती लगती है, कह भी सकती है पर मैंने रासमणि से सुना जो मुँह में आता सो कहती है।"

जगदात्री ने बहुत समझाया कि ऐसा नहीं। गोलोक अब तेज पड़ने लगा उसने कहा—"अछूतों को तो निकलवा दो!" सन्ध्या कहीं पास ही से बोल उठी—"उनको पिताजी ने निराश्रय जानकर जगह दी है कोई कैसे निकाले?"

गोलोक बोला—"अच्छा निराश्रय ही सही पर यही तो एक जगह नहीं है। अरुण से कहो अपने घर में ले जाकर बसा दे। उसकी जाति जाने का डर नहीं।"

सन्ध्या सामने आकर बोली—"उनको परवाह क्या चाहे जाति जाय या रहे।"

गोलोक ने चोट करने के लिए कहा—"तो तुम लोगों में यही सलाह होती है? अच्छा!"

सन्ध्या खिलखिलाकर हँस पड़ी बोली—"वे तो आप जैसों की सलाह भला कुत्ते-बिल्ली से सलाह लेना समझते हैं भला मुझसे क्या सलाह लेंगे?" फिर वह चली गई। जगदात्री कहने लगी "अरुण ने कभी ऐसा न कहा होगा यह अभागी बनाकर कह रही है।" गोलोक इस बात से खुश न हुआ बोला—"अम्मा आजकल के लड़के-लड़कियों का यही हाल है। खैर मैं कुत्ता-बिल्ली ही सही पर एक बात मैं कहे जाता हूँ लड़की की शादी जल्दी कर दो। इस पाप का खातमा ही कर दो।"

अचानक फिर प्रियनाथ ने जल्दी से चमारिन से कहा—"सुनो मैं दवा नहीं कर सकता तुम लोग यहाँ और आया तुम लोग बड़े बदमाश हो। तुमने बच्ची को माड़ क्यों पिलाया?"

—"लेकिन बकरी को तो झाड़ सभी खिलाते हैं दद्दा जी !"

प्रियनाथ होम्योपैथी की चिन्ता में मस्त थे बोले—"बिलकुल झूठी बात है कोई बकरी झाड़ नहीं खाती बकरी खाती है घास।

बात इस पर तय रही कि बकरी झाड़ न खाने पायेगी। चमारिन बुढ़िया बोली—"दद्दा जी बिटिया ने दो दिन से खाना नहीं खाया !"

'खाना नहीं खाया ? पेट फूला है ? कब्ज ? अजीर्ण ! दवा दूँ ? सल्फर, एकोनाइट ?" खुश होकर प्रियनाथ बोला।

"नहीं दद्दा जी भूख है खाना नहीं है भूख के मारे मरी जा रही है ! '

समझकर प्रियनाथ बोले—'ओह !"—फिर सिर खुजलाकर बोले—'जाओ पोखरे के पास खड़ी रहो जब सन्ध्या आये तो कहना मेरी दवा के बक्स में एक अठन्नी है वे दे। पंडिताइन न जान पावें समझी ?

प्रियनाथ चला गया।

एक दिन सन्ध्या एकाएक अरुण के बैठकखाने में पहुँची। बोली—"एक अनुरोध के लिए आई हूँ तुम आजकल घर से नहीं निकलते ?

—"नहीं मैं जल्दी ही यहाँ से कुलीनवास उठाकर वहाँ जाने की सोच रहा हूँ जहाँ मनुष्य मनुष्य को बिना किसी दोष के ही हीन नहीं समझते लांछित नहीं करते। मैं दिन रात यही बात सोचा करता हूँ।"

सन्ध्या बोली—'जन्मभूमि छोड़ जाओगे ?

—'मैं जन्मभूमि छोड़ रहा हूँ या जन्मभूमि मुझे छोड़ रही है ? मैं आज तुम्हारे निकट भी अछूत हूँ इतना अपमान सहकर भी तुम मुझे यहाँ रहने को कहती हो ?"

सन्ध्या बोली—"यह अपमान तुमने स्वयं ही बुलाया ? मैंने तुमको इशारे से कई बार बताया है कि तुम जो चाहते हो वह कभी नहीं हो सकता। तुम्हारे आयश्चित करने पर भी नहीं फिर भी तुमने शिक्षा की जबरदस्ती खतम होने नहीं दी। पिताजी राजी हो सकते हैं माताजी भूल सकती हैं पर मैं तो नहीं भूल सकती कि मैं कितने बड़े कुल के ब्राह्मण

की सन्ध्या हूँ।

अरुण हतबुद्धि होकर बोला—"और मैं?"

सन्ध्या बोली—"तुम एक ही जाति के हो पर बाप और बिरादरी एक नहीं है।" सन्ध्या बोलने को तो बोल गई पर ऐसा कह चुकने के बाद अपने मन ही मन सिहर उठी। अरुण बोला नहीं उसने केवल अपनी व्यथित विस्मित दृष्टि को सन्ध्या के चेहरे पर से हटा लिया। सन्ध्या बोली—"तुम मुझे बहुत दिनों तक याद रखोगे इस प्रकार बार-बार तुम्हारा अपमान किसी ने किया नहीं होगा।"

अरुण बोला—"और यह तो बताओ तुम किस काम के लिए आई थी?"

—"हाँ तो देखो दुनिया में आश्चर्य का कोई अन्त नहीं है। दया न यदि तुम्हीं आज हमारी इज्जत न बचाओ तो वह बचती नहीं दीखती। बात यह है एककौड़ि चमार की विधवा स्त्री तथा बच्चों को एककौड़ि के बाप ने निकाल दिया है पर हमने अपने पुराने मवेशियों के बाड़े में उन्हें आश्रय दिया है। अब प्रश्न यह खड़ा हुआ है कि ब्राह्मणटोले में वह रह नहीं सकती। पूछो ही क्यों? वे चमार हैं वे हमारे पोखरे से पानी लेते हैं सड़क पर बकरी को चराते फिराते हैं। दुर्भाग्यवश गोसाँई बाबा के पैर भूल से उन पर पड़ गये इसलिए माताजी ने तय किया है कि कल सबेरे उन्हें झाड़ू मारकर निकाल देंगी तब स्नान करेंगी। तुम उन्हें स्थान दो वे बिलकुल निराश्रय हैं।"

अरुण ने कहा—"अच्छी बात है हमारा कड़िया माली चला गया है उसके कमरे को खाली करवा देंगे।"

सन्ध्या ने इसका उत्तर नहीं दिया शायद वह अपने को सँभाल रही थी फिर धीरे धीरे बोली—"अब मेरे मुँह में पान नहीं है नहाने भी आई थी। इस समय तुम्हें प्रणाम कर जरा पैर छू जाऊँ"—यह कहकर उसने झुककर अरुण को प्रणाम किया और चली गई। अरुण स्तब्ध होकर बैठ रहा न उससे कुछ पूछा न पीछे से उसे पुकारा।

रासमणि एक दिन जगद्धात्री के यहाँ आई तो कहने लगी—"अरी जल्दी से पंचानन और विशालाक्षी के यहाँ पूजा भेज दे। तेरी किस्मत खुल गई। तेरी उस पगली लड़की ने इतनी तपस्या की थी मैं तो नहीं जानती पर मैं कहे रखती हूँ मेरे लिए सोने की एक पतली कण्ठी बनवा देना।

जगद्धात्री ने जब व्याकुल होकर पूछा—'बात क्या है यह तो बताओ मौसी?" तब उसने बड़े गुमान छिपाव से कहा—अभी चार कान से छै कान न होने पावे कहीं लोग कुछ बाधा न दें। गोलोक भैया मेरे अलावा किसी को कुछ बताते तो हैं नहीं आज उन्होंने मुझे बुलाकर कहा—'जाओ बहिन जाकर जग्गो से कहो कि अपनी बेटी के लिए कुछ चिन्ता न करे, उसे मेरे हाथ में सौंपकर राजा की सास बनकर निश्चिन्त बैठी रहे। इस बात को सुनकर राजा की होनेवाली सास कुछ खुश न हुई। जगद्धात्री ने कहा—'गोलोक मामा ने मजाक किया होगा। रासमणि बोली—"ऊँह मुझसे मजाक और वे? भाई-बहिन में मजाक? यह कभी हो सकता है?

जगद्धात्री टालती रही पर रासमणि बोली—"मैंने भी पहले सोचा था कि यह असम्भव है पर सन्ध्या भी तो एक ही लक्ष्मी प्रतिमा-सी है मुनि का मन भी डिग जाय यह गोलोक तो मनुष्य है।

जगद्धात्री समझ गई कि बात सही है। रासमणि चली गई तो वह सन्ध्या के पास गई। वह एक चिट्ठी पढ़ रही थी यह चिट्ठी काशी की थी से उसकी दादी के यहाँ से आई थी। उन्होंने लिखा था कि मैं जगद्धात्री की प्रार्थना स्वीकार कर सन्ध्या की शादी में स्वयं उपस्थित रहकर कन्यादान करने आ रही हूँ। इसी समय प्रियनाथ व्यस्तता के साथ दौड़ते हुए आए—"हो गया न हाइड्रोफोबिया मैं तो दिक आ गया बस!"

जगद्धात्री ने पूछा—"किसको क्या हुआ?"

प्रियनाथ बोले—"अरुण का हाइड्रोफोबिया हो गया मैं जैसी हायस्नीमिन करूँगा ऐसा कौन साला कर सकता है? यह साला डाक्टर

क्या तुम समझता है वह इस रोग का नाम भी जानता है ?" जगदात्री ने जब बहुत पूछा कि यह रोग क्या है, तो बोले— नहीं नहीं समझता तुम क्या समझोगी ? उसको मानसिक व्याधि हो गई है। वह अपनी सब जायदाद पानी के दाम पर भगवान कृष्ण के हाथ बेचकर गाँव छोड़कर चला जा रहा है।" जगदात्री बोली— 'अच्छा उस एक बार मेरा नाम लेकर भेज का कहना तुम्हारी चाची बुला रही है। सन्ध्या खड़ी होकर सुन रही थी उसका चेहरा पीला पड़ गया उसके होंठ काँपने लगे फिर भी उसने दृढ़ता के साथ कहा— 'क्यों माँ तुम बारबार उनको बुलाकर अपमान करना चाहती हो उन्होंने तुम्हारा क्या बिगाड़ा है ?"

जगदात्री बोली—"बुलाकर दो अच्छी बातें कहने में भी हर्ज है ?" सन्ध्या बोली—"भला हो या बुरा हो वे रहें या जायें मकान-जमीन बेचें या न बेचें हम लोगों के साथ उनका क्या सम्बन्ध है कि तुम नाम रवाह बीच में पड़ोगी। यदि तुम उन्हें इस मकान में बुलाकर लाओ तो मैं तुम्हारी कसम खाकर कहती हूँ कि मैं जाकर पोखरे में कूद पड़ूँगी"— कहकर वह जल्दी से चली गई। जगदात्री आश्चर्य से चुप हो रही पर वह प्रियनाथ से बोली— 'तुम लड़की की शादी करोगे कि नहीं रसिकपुर में एक दूल्हा का पता लग रहा है तुम देखने कब जाओगे ?" प्रियनाथ ने कहा कि उन्हें फुरसत कब है मरीज का इलाज करना है फिर गोलोक की नानी बीमार है उसे देखना है। जगदात्री बोली—"चाहे कुछ हो एक बार रसिकपुर हो आओ।" प्रियनाथ इस पर बोला कि जिसको वह दामाद बनाना चाहती है वह तो शराबी तथा दुश्चरित्र है। अब जगदात्री बोली— हो दुश्चरित्र लड़की उस से कम कुछ दिन तो सिंदूर पहिनेगी। तुम किस दुश्चरित्र से अच्छे हो ? तुम तो पागल हो अब तुम्हें लड़की दी जा सकती है तो उसे लड़की नहीं दी जा सकती ?" प्रिय अवाक् होकर देखते रह फिर चल दिए।

इधर ज्ञानदा बीमार थी। गोलोक उसकी इधर-उधर करने लगा। एक दिन ज्ञानदा पूछ बैठी—"क्या तुम प्रियनाथ की लड़की सन्ध्या से शादी

करने का निश्चय कर चुके हो?" गोलोक ने इन्कार किया तो ज्ञानदा बोली— 'रासमणि को तुमने भेजा था अस्पताल में जाने को है तुम्हें ऐसा करना था तो तुमने मेरा सर्वनाश क्यों किया तुमने मेरे तो मुँह दिखाने की या खड़ी रहने की कोई गुंजाइश ही नहीं रखी? इतने में नौकरानी ने आकर खबर दी कि ज्ञानदा के ससुर आये हैं। गोलोक अब ज्ञानदा को भेजना चाहता था क्योंकि वह गर्भवती हो चुकी थी पर ज्ञानदा सबके समझाने-बुझाने पर भी जाने को राजी न हुई। उसने गोलोक से कहा— "तुम्हें लेकर डूबूँगी।'

गोलोक को जब ज्ञात हुआ कि संध्या का विवाह उससे न होगा किसी भीमवान वीरचन्द्र मुखोपाध्याय के साथ होगा तो वह बहुत नाराज़ हुआ और अपने गुप्तचरों को इस बात का पता लगाने के लिए दौड़ाने लगा कि प्रियनाथ की माँ के विषय में एक अफ़वाह जो उसके कान में बीस साल पहले पड़ चुकी थी वह कहाँ तक सच है?

जगद्धात्री तथा उसकी सास कालीतारा सन्ध्या के विवाह के बारे में आजकल व्यस्त रहती थी। जगद्धात्री बराबर कुल की मर्यादा के लिए सतर्क रहती पर उसकी सास को इन बातों का मोह न था। कालीतारा अपनी पोती को भी यही समझाती थी जगद्धात्री को यह बहुत बुरा लगता था।

रात अधिक नहीं हुई थी। रासमणि ज्ञानदा से कह रही थी— 'तुम ज्ञानदा पगली न बन दवा पी ले फिर जैसा था सब वैसा ही हो जायगा कोई जान भी न पायेगा।"

ज्ञानदा बोली— 'ऐसी बात तुम लोग हम कैसे कहती हो बहिन? इस प्रकार पाप पर पाप कैसे करूँ? नरक में भी तो जगह न मिलेगी।" रासमणि बोली— 'इतने बड़े देवपूज्य व्यक्ति की हेठी करवाओगी यह बचपन खूब रहा। ज्ञानदा रोती हुई बोली—"तुम लोग हमें विष देकर मरवा डालोगी मैं जानती हूँ।" रासमणि बोली— 'न हो बेचारी बुढ़िया की दवा न पियो न सही पर प्रियनाथ की दवा तो पियोगी?"

ज्ञानदा बोली—"वे देंगे ?" रासमणि बोली—"क्यों नहीं ? गोलोक दा ने कहा तो उसका फरिश्ता देगा वह क्या चीज है ?"

इतने में प्रियनाथ आये बड़बड़ा रहे थे—"जिधर न जाऊँ उधर ही गड़बड़ कम्बख्त लड़की की शादी है इधर इतने रोगी हैं कि घर से निकल न पाऊँगा भूखा ही हाकिम है।" प्रियनाथ ने ज्ञानदा की नाड़ी देखकर कहा—"बस अजीर्ण है टाइम लगेगा लेकिन भला मैं दवा करूँ और अच्छी न हो।" रासमणि ने कई बार इशारे से समझाया कि मामला क्या है पर प्रवीण चिकित्सक प्रियनाथ जब इस पर भी नहीं समझे तो उसने प्रियनाथ को अलग ले जाकर वस्तुस्थिति समझाई। प्रियनाथ तो हक्काबक्का रह गया। रासमणि बोली—"गोलोक दा के ऐसे पूजनीय व्यक्ति का ऊँचा सिर नीचा हुआ जा रहा है। वे तो पुरुष हैं उनका क्या दोष इसी कमबख्त ने तो आकर मायाजाल फैलाया।" प्रियनाथ ने कई बार थूक निगलकर कहा—"मेरे पास यह सब दवा नहीं है आप विपिन डाक्टर या पराण डाक्टर को खबर दें।" वे अपनी पुस्तकें तथा दवा का बक्स समेटने लगे। गोलोक भी पहुँच गया बोला—"मैं तुम्हारा ससुर लगता हूँ मैं कहता हूँ इसका कुछ ढंग करो।" प्रियनाथ यों तो मिनमिना था पर इस पर तमक कर बोला—'आप ससुर हैं तो कृपा करें, पर क्या जीव-हत्या करूँ ? परलोक में क्या जवाब दूँगा ?" गोलोक किवाड़ों के पास जाकर खड़ा हो गया और बिलकुल दूसरा ही आदमी बनकर तेवर बदलते हुए कठोर स्वर में बोला—"इतनी रात गये तुम एक भले आदमी के घर में क्या कर रहे हो ?"

प्रश्न सुनकर प्रियनाथ आश्चर्य में पड़ गया बोला—"वाह यह भी खूब तमाशा है ! मैं दवा देने आया और क्या आपने ही तो बुलाया था।" गोलोक चिल्लाकर बोला—"भागो बदमाश हरामी ! तू क्या आने बहाना करता ? किसने तुझे घर में घुसने दिया ? आखिर तुझे पीछे के दरवाजे से खासकर भीतर किसने किया ?" ज्ञानदा की ओर मुड़कर गोलोक बोला—"हरामजादी अपने ससुर रोकर और यम [illegible] न गई।

भीतर भीतर दुष्कर रात का इन्तजाम हो रहा है ! कल यदि सिर मुड़वा-कर यहीं इसवाकर गाँव से न निकलवा दूँ तो मेरा नाम गोलोक नहीं।" रासू की ओर देखकर बोले—"देखा इन लोगों का रंग। मैं दस-बीस गाँव का समाजपति हूँ और ऐन मेरे ही घर में यह पाप ? तू गवाह रही।" रासू भी घबरा गई थी सम्भलकर बोली—"जरूर गवाह हूँ मैं जरा देखने चली आई कि आलता कैसी है तो यहाँ देखती क्या हूँ कि दोनों गुलछर्रे उड़ा रहे हैं।" शिव का तो यह हाल था कि काटो तो खून नहीं गोलोक ने चील की तरह उसके हाथ से सब किताबें छीन लीं— 'निकल साले उल्लू के पट्ठे हमारे घर से तू रामतनु का दामाद है, नहीं तो पहले मैं तुझे पुलिसवाकर मरम्मत करता फिर थाने में चालान करता।" यह कह कर गोलोक ने धक्के पर धक्के देकर उसे घर से निकाल दिया। प्रियनाथ कह रहा था—"वाह यह तो अच्छा तमाशा रहा" और निकल गया।

अगले दिन सन्ध्या की शादी में अरुण बुलाया तक न गया था। वह घर ही पर था। अधिक रात होने पर भी वह जग रहा था। इतने में किसी ने उसके कमरे के दरवाजे पर पुकारा। अरुण ने तुरन्त खोल दिया अरे ! यह क्या ? यह तो सन्ध्या थी। वह लाल रेशम की साड़ी पहिने थी स्त्री का ऐसा रूप अरुण ने कभी नहीं देखा था वह मुग्ध हो गया। सन्ध्या जैसे तूफान की तरह आई थी वैसे ही तूफान की तरह बोली—"तुम्हारे अलावा मेरा आज कोई नहीं है चलो।" अरुण ने कहा—"कहाँ ?" सन्ध्या बोली—"यहाँ से एक व्यक्ति अभी उठ गया वहीं चलो।" अरुण समझ गया किसी कारण से बराती वर को पीढ़े पर से उठा ले गये। ऐसा तो अक्सर होता है। अरुण ने कारण पूछा तो सन्ध्या ने धीरे-धीरे बताया—'विवाह सभा में माताजी मुझे दान करने के लिए बैठी थी दादी चुप बैठी थी। इतने में मृत्युञ्जय घटक दो व्यक्तियों को लेकर पहुँचा। उनमें से एक ने दादी की ओर देखकर कहा—"दीदी हमें पहचानती हो ?" दूसरे ने दादी से कहा 'तुमने लड़के की शादी करके पहले ही एक ब्राह्मणी की जाति ले ली अब हम पापी की शादी करके हम

मामा को भी जातिभ्रष्ट कर रही हो! फिर सबको पुकारकर उसने कहा—'सब लोग सुना, यह जिसको तुम सब परम कुलीन समझ रहे हो ब्राह्मण नहीं, ठीक नाई का लड़का है।' मृत्युञ्जय ने गंगाजल का लोटा नाई की धार बनाकर कहा—'है यह बात सच कि यहां जाहिर किया जा सकता है मुकुन्द ब्राह्मण का या ठीक नाई का?' नहीं गम्भीरता वाली सिर नीचा किए रहो किसी प्रकार झट मुंह में न आ सकी। इसके बाद उन लोगों में से एक ने सारी घटना खोलकर बतलाई। वह यह कि चार साल की उम्र में दादी की शादी हुई थी। जब उनकी पन्द्रह-सोलह साल की उम्र हुई तो एक व्यक्ति ने अपने को मुकुन्द ब्राह्मण बताया था, रात रहकर पांच रुपया तथा एक कपड़ा लेकर चला गया। इसके बाद में ही वह अक्सर आता था जब वह कहां न लता था। बात यह है कि दादी बड़ी खूबसूरत थी। इसके बाद जब एक दिन उसकी असली हकीकत खुली तो पिताजी पता हो चुके थे। मैं भी होती तो ऐसा दगा देती। लड़का का वजन न देती। हां, जब वह पकड़ा गया तो उसने बताया यह कृत्य उसने अपने [illegible] में नहीं बल्कि मुकुन्द ब्राह्मण की अनुमति तथा अनुरोध से किया। एक तो मुकुन्द बूढ़े आदमी थे, दूसरे कई साल से गठिया से परेशान थे। इसलिए अपनी परिचित स्त्रियों से रुपया वसूल करने का भार उन्होंने हाथ के ऊपर देकर कहा—'ठीक! तू ब्राह्मण का परिचय याद कर ले और एक जनेऊ गले में डाल चुप तू पैदा करेगा।' उसका भाग्य ऐसा था। इस प्रकार उसने दस-बारह जगह पर किया था। उसने कहा—'यह काम उसके मालिक ने ही नहीं किया, ऐसे ही बहुत से कुलीन ब्राह्मण अपने से दूर रहनेवाली स्त्रियों से पैसा वसूल करने के लिए दूसरों की मदद लेते हैं।'

[illegible] बोला—'जरूर सच होगा, क्योंकि ब्राह्मणों के दौरान ऐसा कमाई धंधा चला होगा और यह भी हिन्दू समाज के गौरवपूर्ण पर्व हैं।'

रासमणि बोली—'सुनती हूं, फिर मैं मुकुन्द से पूछा था कि

पण्डित जी ! ईश्वर के यहाँ क्या जवाब देंगे ? तो उन्होंने कहा था 'पाप सब हमारा है, मैं उसका जवाब दूँगा।' डॉक्टर ने फिर पूछा था पण्डित जी ! आखिर उनकी क्या गति होगी ? हँसकर पण्डित जी ने कहा था उनकी गति क्या होगी न होगी यह चिन्ता हमारी है, वे हमारी स्त्रियाँ हैं न कि तुम्हारी ? दादी ने मुझसे तुम्हारी बाबत कहा था 'कौन छोटा कौन बड़ा है यह केवल ईश्वर जानते हैं मनुष्य किसी को कभी घृणा न करे। पर उस समय मैंने नहीं सोचा था कि इसका क्या अर्थ है आज मुझे इसे समझना पड़ेगा। रात अधिक हो रही है। चलो शरत भैया ! तुम मुझसे कभी दुःख न पाओगे तुम्हारे महत्व तथा त्याग को मैं चिरकाल तक न भूलूँगी।"

शरत ने सकुचाते हुए कहा—"पर तुम्हारे साथ तो मैं नहीं जा सकता सन्ध्या !" सन्ध्या बोली— 'फिर मैं कहाँ किसके यहाँ हूँगी बोलोगी कैसे ?" शरत अकस्मात् न बोल सका पर सोचकर बोला— 'मुझे आज क्षमा करो सन्ध्या मुझे जरा सोचने दो।"

— 'सोचने दूँ ? अवश्य जरा क्यों खूब सोच लो। शायद सोचने का समय आजीवन ही मिले। इतने दिनों तक मैं भी सोचा करती थी दिन रात। जब मैं तुमको अपनी तुलना में छोटा समझती थी उस समय मैं सोचती थी अब तुम्हारे सोच-विचार का समय आया है। अच्छा मैं जाती हूँ। कहकर वह चली गई। शरत उसी प्रकार निश्चेष्ट बैठा रहा।

दूसरे दिन सन्ध्या और प्रियनाथ वृन्दावन या काशी कहीं जा रहे हैं—यह सुनकर शरत उनके घर पहुँचा। बोला— 'आप जा रहे हैं और संध्या भी ?" प्रियनाथ बोले—"संध्या मानती नहीं वह कहती है मेरी भलाई के लिए उसका मेरे साथ जाना जरूरी है।"

शरत अवाक होकर बोला— 'संध्या तुम भी जा रही हो ? मैं उस दिन अपना चित्त स्थिर नहीं कर पाया था, पर मैंने निश्चय किया है कि मैं तुम्हारी बात पर ही राजी हो जाऊँगा।" प्रियनाथ न समझकर केवल

देखने लगे। सन्ध्या बोली—"उस दिन मेरा भी चित्त स्थिर न था अरुणजी पर आज मेरा चित्त स्थिर हो गया है। मैं पिताजी के साथ यही बात जानने जा रही हूँ कि औरत के लिए शादी करने के अलावा भी कोई काम है या नहीं? इसलिये क्षमा करें हमें देर हो रही है हम चले।"

अरुण ने कहा—"ऐसे दुख के समय अपनी माँ को छोड़ चलीं?" सन्ध्या बोली—"क्या करूँ अरुण भैया अब तक माँ-बाप दोनों में हिस्सा था अब एक को छोड़ना ही पड़ेगा। माँ के लिए फिर भी कोई तरीका शायद निकले। लोगों ने कहा है कि उनके लिए शायद प्रायश्चित्त है। हो तो अच्छी बात है। फिर तो उन्हें देखने-सुनने वालों की कमी न रहेगी पर पिताजी का सँभालने का भार मेरे अतिरिक्त कोई नहीं ले सकता।" अरुण को छोड़कर वह चलने लगी। रास्ते में अरुण को मालूम हुआ कि लोग गोलोक की शादी का न्यौता खाकर लौट रहे हैं।

पिता को लेकर सन्ध्या जब स्टेशन पहुँची तो उस समय गाड़ी आने में कुछ देर थी। एक औरत चुपचाप एक पेड़ के नीचे बैठी थी। सन्ध्या पहिचान गई यह ज्ञानदा थी। सन्ध्या ने पूछा कि वह कहाँ जा रही है तो ज्ञानदा कुछ बता न सकी और रोने लगी। ज्ञानदा को टिकट लेते समय प्रियनाथ ने पूछा—"आप कहाँ जायेंगी?" इसका उत्तर में ज्ञानदा ने पूछा—"आप कहाँ जायेंगे"—"हम लोग वृन्दावन जा रहे हैं।" प्रियनाथ बोला। ज्ञानदा ने अपना कुल धन पचास रुपया देकर कहा—"मेरे लिए भी वृन्दावन का एक टिकट खरीद दें सन्ध्या तो चल ही रही है न? सिर्फ रास्ते भर पहुँचा दीजिये।"

प्रिय कुछ देर चुप रहा फिर बोला—"अच्छा हम लोगों के साथ चलो।"

× × ×

इस पुस्तक में पहली द्रष्टव्य बात तो यह कि इसमें शरत् बाबू देवदास-परम्परा को पूर्णता के साथ निभाते हैं। सन्ध्या और अरुण में प्रेम है पर वह उतना स्पष्ट नहीं है जितना देवदास और पार्वती में है। पहले

ही दृश्य में हम देखते हैं कि प्रेम का यह उत्समुख समाज के पत्थर से दब जाता है। सन्ध्या एक प्रकार से अरुण को अपमानित करके घर से निकाल देती है। सन्ध्या और अरुण में देवदास और पार्वती की तरह मिलन भी नहीं होता। समाज का दुर्भेद्य प्राचीर उनके अन्दर खड़ा रहता है। पहले यह दीवार सन्ध्या की ओर से है, फिर जब सन्ध्या के पिता के जन्म की असलियत खुल जाती है तो सन्ध्या इसे तोड़ देती है बल्कि यह दीवार सन्ध्या की पीठ पर भरररधम गिर जाती है, पर अब अरुण की बारी आती है, उसकी ओर से दीवार खड़ी होती है। सन्ध्या की दीवार तो समझ में आती है कि किस चीज की बनी हुई थी यह कालिमद की दीवार थी पर अरुण जब सन्ध्या से कहता है— 'मुझे सोचने दो' तो साफ समझ में नहीं आता कि वह किस सोच में पड़ता है। शायद उसकी तरफ से यह आपत्ति है कि वह एक नाई की पोती और सो भी इस प्रकार उत्पन्न सन्ध्या से विवाह नहीं करना चाहता। इसमें सन्देह नहीं कि अरुण की आपत्ति सन्ध्या की आपत्ति से कहीं अधिक उचित तथा समीचीन है, कहा जाता है एक सामाजिक क्रान्तिकारी भी एक डोमनी को पत्नी रूप में लेने के पहले तीन बार सोचेगा। फिर अरुण कोई क्रान्तिकारी न था उसका क्रान्तिकारित्व केवल इतना ही था कि वह विलायत गया था और वहाँ से लौटकर उसने प्रायश्चित्त करने से इनकार किया था। अरुण सब कुछ जानते हुए भी दो-एक दिन सोच-विचार करने के बाद सन्ध्या से विवाह करने को तैयार हो जाता है पर सन्ध्या एक शहीद की तरह कहती नजर आती है— "मैं पिताजी के साथ यही बात जानने आ रही हूँ कि औरत के लिए शादी करने के अलावा भी कोई काम है या नहीं ?"

सन्ध्या की यह बात बड़ी करुण है, पर यहाँ हम साधारण पाठक की तरह भावुकता में न बहकर यह पूछना चाहेंगे कि क्या सन्ध्या सचमुच उसी प्रकार शहीद बनने की हकदार है जैसे वह बोलती है ? वह तो ऐसे बात करती है जैसे उस पर बड़ा भारी जुल्म किया गया है पर क्या यह बात सच है ? आखिर उस पर यह अत्याचार करनेवाला कौन है समाज यानी

उसका वह पति जो विवाह-मण्डप के पीढ़े पर से उठ गया था, क्यों? वह स्वयं जातिभेद को तब तक मानकर सत्य समझती है जब तक उसके सामने यह बात बड़े भयानक तरीके से खुल नहीं जाती कि इसी जातिभेद के नियम के अनुसार न वह ब्राह्मण है न नाई, यहाँ तक कि वह एक दोगले की लड़की मात्र है। अपने ही विचारों के अनुसार वह नीच से नीच है उसकी कोई जाति नहीं है। अपने ही विचारों के अनुसार इस बात के खुल जाने के बाद एक नाई युवक भी उसके लिए उच्च कुल का वर था इसलिए सब बातें जानने के बाद यदि ब्राह्मण और सो भी कुलीन वर पीढ़े पर से उठ गया था मैं समझता हूँ इसमें सन्ध्या को शहीद की तरह मुँह बनाने का अधिकार न था। अरुण तो बेचारा ब्राह्मण ही था हाँ कुलीन ब्राह्मण न था नीचे दर्जे का चक्रवर्ती ब्राह्मण था पर उसके विवाह प्रस्ताव को तथा प्रेम को सन्ध्या ने यह कहकर ठुकरा दिया था कि ब्राह्मण और क्रिस्तानी में विवाह कैसा? फिर यदि वह विवाह-मंडप में बैठी होती और बजाय यह सुनने के कि वह दोगले की लड़की भी नहीं यह सुनती कि जिससे उसकी शादी हो रही है वह कुलीन ब्राह्मण नहीं बल्कि उसका पिता नाई की औरत से पैदा था तो क्या सन्ध्या उस वर से शादी करने की बजाय किसी भी ऐरे-गैरे ब्राह्मण से शादी करने को तैयार न हो जाती? फिर जब यह व्यवहार उसके साथ हुआ तो वह शहीद क्यों बनती है बढ़-चढ़कर त्यागनिष्ठता क्यों छाँटती है जैसे उस पर बड़ा भारी अत्याचार हुआ? हमें तो रोम्याँ रोलाँ की यह बात याद आती है कि प्रत्येक अत्याचार पीड़ित एक असफल अत्याचारी है। सन्ध्या को यह कहने का कोई हक नहीं कि "मैं यह जानने जा रही हूँ कि औरत के लिए शादी करने के अलावा भी कोई काम है या नहीं?" वह स्त्रियों की कोई प्रतिनिधि नहीं है। यदि सन्ध्या में कोई विशेषता है तो यही कि उसके दर्जे पर सोचनेवाली हजारों स्त्रियाँ भारतवर्ष में हैं उसी की तरह जाति का अभिमान रखने वाली उसी की तरह जातिभेद के पत्थर पर प्रेम को भी पटक देनेवाली भी हैं पर सजा केवल उसी को मिली। यदि इसे महत्त्व कहा जा सके तो यही सन्ध्या

है कि यदि गरीब अच्छे होना चाहें तो एकाध मामले में अपनी थोड़ी बहुत उन्नति कर सकते हैं पर कई प्रकार से होने वाले जिस शोषण के कारण वे निरन्तर डूबे जा रहे हैं, उसकी ओर शरत् बाबू ने अपने उपन्यासों में कहीं संकेत नहीं किया। मध्यवित्त श्रेणी की बेकारी की ओर भी उनकी दृष्टि नहीं है। उनके लगभग सभी पात्र धनी नहीं हैं तो कम से कम उन्हें रोटी-दाल की कोई फिक्र नहीं है। 'पल्ली-समाज' के रमेश की तरह शरत् बाबू के विचार सुधारवादी हैं। वे स्त्री-पुरुष समस्या तथा धर्म के अतिरिक्त किसी भी समस्या के विषय में क्रान्तिकारी विचार नहीं रखते।

बर्मा में रहते समय शरत्चन्द्र पहले-पहल साहित्य-क्षेत्र में अवतीर्ण हुए। तब उनके पास विभिन्न पत्रिका-सम्पादकों के कहानी माँगते हुए पत्र आते रहे। पर वे कहानी लिखना उतना पसन्द नहीं करते थे। इसका परिचय बार-बार उनके पत्रों से मिलता है। उन्होंने १.२.१३ के एक पत्र में लिखा— "तुम्हारी पत्रिका के लिए ये लोग कहानियाँ लिखें तो मैं केवल निबन्ध लिखूँ। कहानी लिखना मुझे न तो अच्छा लगता है और न लिखने में ही रस आता है।"

उन दिनों की कहानियाँ, बँगला पत्रिकाओं में प्रकाशित होती थीं, उनसे वे सन्तुष्ट नहीं थे। १०.१०.१३ को रंगून से एक पत्र में उन्होंने लिखा था—"आजकल मासिक पत्रों में जो कहानियाँ प्रकाशित होती हैं उनमें से रुपये में १५ आने आलोचना के योग्य ही नहीं हैं। न तो वे कहानियाँ हैं, न साहित्य; स्याही और कलम का निरा अपव्यवहार है और पाठकों पर अत्याचार है। अब की बार पत्रों में जो कहानियाँ हैं, उनमें से एक भी अच्छी नहीं है। अधिकांश अपाठ्य हैं। किसी में न वस्तु है, न भाव है, बस वागाडम्बर है। घटना और वैचित्र्य की जबर्दस्ती सृष्टि है। बूढ़ी वेश्या को अच्छे कपड़े पहनाकर युवती बनाकर लोगों को भरमाने की चेष्टा करते हुए देखने पर मन में जो वितृष्णा, लज्जा और करुणा जगती है, इन लेखकों की कहानी लिखने की चेष्टा पर उसी तरह की भावना

का उद्रेक होता है। यह और चाहे कुछ भी हो पर स्वस्थ बिलकुल ही नहीं है।"

शरत्चन्द्र ने भागलपुर में रहते समय कुछ कहानियाँ आदि लिखी थीं जिन्हें लोग बिना उनसे पूछे छाप लेते थे। इस पर वे बहुत नाराज होते रहे। बात यों है कि जब वे एक लेखक के रूप में प्रसिद्ध हुए तो होड़ मची कि कौन पत्र उनकी चीजें अधिक छापता है। पर शरत्चन्द्र अपनी अपरिपक्व रचनाएँ छपने पर बहुत नाराज होते रहे। उन्होंने १९१३ में एक पत्र लिखा— 'इस बार साहित्य में मेरे नाम से क्या कूड़ा-करकट छाप दिया गया। क्या यह मेरी रचना है? मुझे तो जरा भी याद नहीं पड़ती। यदि हो भी तो उसे छपाने से क्या मतलब? लोग बचपन में बहुत कुछ लिखते हैं पर उन्हें प्रकाशित थोड़े ही करना चाहिए। आपने बोझ (बोझ) नामक कहानी छापकर मुझे कैसे लज्जित किया है! सुरेशचन्द्र समाजपति ने भी इसी प्रकार इसे छापकर मुझे लज्जा दी है।

वे स्वयं चित्रकार और कहानीकार थे पर वे अपनी कहानियों या उपन्यासों के चित्रण के बहुत विरुद्ध थे। ९-८-१९ को उन्होंने अत्यन्त मार्मिक शब्दों में प्रमथनाथ भट्टाचार्य को लिखा—"क्या तुम चित्र देनेवाले हो? यह तो भयंकर बात है। दुहाई है मेरी कहानी में चित्र-वित्र न देना। अरे बाप रे यह झड़बेरी का पेड़ और यह मृत्यु-शैया तब तो मैं लज्जा के मारे मर जाऊँगा। इसके अलावा मैं आशा करता हूँ कि मेरी कहानी पर चित्र न बनाया जाय तो भी लोग उसे पढ़ेंगे।

इसी प्रसंग पर उन्होंने एक दूसरे पत्र में लिखा— 'तुम मेरी उन तीन कहानियों का (बिन्दुर छेले, रामेर सुमति और पथ निर्देश) पुस्तकाकार छापा तो मुझे आपत्ति नहीं है। हाँ बिगड़ा ऐसा मालूम होता है। तुम जैसे चाहो छापो पर चित्र हर्गिज न देना यह मेरा अनुरोध है। कापी राइट बेच दो तो बेचो न बेचना चाहो तो न बेचो मैंने तुम पर सारा भार दे दिया। इस सम्बन्ध में मुझसे आप कुछ पूछो भी नहीं। पर आखिर

के महीने से 'भारतवर्ष' में जो कहानी निकलेगी उसे लेकर चार कहानियाँ एक साथ छपें तो अच्छा रहे।"

## पथेर दाबी

अपूर्व अपने परिवार का सबसे छोटा लड़का है। उसके और सब भाई अच्छी नौकरियों में हैं और आधुनिक हैं पर वह अपनी माँ की तरह धर्म-शास्त्र में भक्ति रखने वाला है। वह शिखा रखता है तथा वह एकादशी पूर्णिमा का व्रत भी रखता है पूजा-पाठ भी करता है। उसने शुरू से लेकर आखीर तक कालेज की सब परीक्षाएँ योग्यता से पास की हैं। उसकी माता करुणामयी घर में अपने अन्य पुत्रों के साथ रहती है पर वह स्वयं पाक करके खाती है। वह अपनी दूसरी पतोहुओं के आधुनिक रंग-ढंग को पसन्द नहीं करती थी और उसने निश्चय किया था कि अपूर्व की शादी किसी निष्ठावती कन्या से करेगी।

अपूर्व अभी परीक्षा के बाद बहुत दिनों से बेकार था। एकाएक उसने एक दिन माँ से कहा—'माँ मुझे एक अच्छी-सी नौकरी मिली है।' बात यह थी कि उसके कालेज के प्रिन्सिपल साहब ने ही इस नौकरी का बन्दोबस्त कर दिया था। बोथा कम्पनी ने बर्मा के रंगून शहर में एक नया दफ्तर खोला था वे चाहते थे कि किसी विद्वान बुद्धिमान तथा सच्चरित्र युवक को वहाँ का भार देकर भेजा जाय। अपूर्व ने कहा—'मकान के किराये के अतिरिक्त चार-सौ रुपये तनख्वाह रहेगी और कोशिश करने पर भी यदि छः महीने के अन्दर कम्पनी का ठाट न उलटवा सकूँ तो तनख्वाह और भी दो सौ बढ़ेगी।' यह कहकर वह हँसने लगा।

किन्तु बर्मा का नाम सुनकर माँ का चेहरा फक पड़ गया। वह भिस्समुख कंठ से बोली—तू क्या पागल हो गया अपू क्या उस देश में कोई कभी जाता है? सुना है वहाँ जातपात आचार-विचार कुछ नहीं है। भला मैं तुझे वहाँ भेज सकती हूँ? ऐसे रुपये से मुझे कोई मतलब नहीं।

अपूर्व ने कहा—'रुपयों की जरूरत मुझे भले ही न हो मुझे है तुम्हारी आज्ञा से मैं भिखमंगा होकर भी रह सकता हूँ पर सारी जिन्दगी में भी ऐसा अवसर क्या फिर आयेगा ? बोथा कम्पनी का तो कुछ घटेगा नहीं उसको सैकड़ों व्यक्ति मिल जायेंगे।

माँ फिर भी राजी नहीं हुई बोली—'मैंने तो सुना है वह एकदम म्लेच्छ देश है ? जब माँ का कुछ भी नहीं चला तो बोली—'आगामी बैसाख में मैंने तुम्हारी शादी का निश्चय किया है। अपूर्व बोला—'तुम एकदम निश्चय कर चुकी हो अच्छी बात है। जभी तुम बुला भेजोगी तभी आकर तुम्हारी आज्ञा का पालन कर जाऊँगा।

करुणामयी हारकर अपने बड़े लड़के विनोदकुमार के पास गई कि शायद उधर से कुछ रोक-थाम हो पर वहाँ और भी सूखा जवाब मिला।

अन्त में माँ ने घर के पुराने नौकर तिवारी के साथ अपूर्व को रवाना किया। करुणामयी ने तिवारी को इसलिए चुना कि वह छूत-छात के मामले में बहुत कट्टर था इसी नाते वह करुणामयी का श्रद्धाभाजन हो चुका था। उनको पूर्ण विश्वास था कि ऐसे रसोइया की देख रेख में रहने पर अपूर्व म्लेच्छ देश में रहकर भी धर्म से च्युत नहीं होगा। जहाज पर चूड़ा चबाते हुए, सन्देश खाते हुए तथा हरे नारियल का पानी पीते हुए अर्धमृत हालत में ये दोनों रंगून के घाट पर पहुँचे। वहाँ बोथा कम्पनी के दो दरबान तथा एक मद्रासी मुंशी ने उनका स्वागत किया। उनके लिए तीस रुपए भाड़े पर एक मकान लिया गया था। उनको वहीं ले जाया गया। मकान का चेहरा देखकर अपूर्व सन्नाटे में आ गया। न तो उसमें कोई श्री थी न कोई ढंग था। एक पतली-सी लकड़ी की सीढ़ी ऊपर गई थी। इस सीढ़ी से मकान के छः किरायेदार काम लेते हैं। यह किसी की निजी नहीं थी। अगर इसमें कहीं किसी का पैर फिसलता तो वह पहले राजा के पत्थर जड़े हुए राजपथ पर गिरता फिर उन्हीं के अस्पताल में जाना पड़ता आगे जो तृतीय गति हो सकती है उसे न सोचना

ही अच्छा है।

दरबान ने दाहिनी ओर के दोमंजिले का एक दरवाजा खोलकर कहा—'साहब यह आपका मकान है।' इसी के सामनेवाले बाईं ओर के बन्द किवाड़ों को देखकर अपूर्व ने पूछा—'इसमें कौन रहता है?'

दरबान ने कहा—'सुना है इसमें एक चीनी साहब रहते हैं।' अपूर्व ने जब पूछा कि सिर के ऊपर तिमंजिले पर कौन रहता है? तो उसने कहा—'कोई काला साहब रहते हैं, शायद कोई मद्रासी होंगे।' अपूर्व फिर एक बार सन्नाटे में हो गया। अपने चारों तरफ के पड़ोसियों का यह परिचय पाकर उसने गहरी साँस ली। जिधर देखो उधर म्लेच्छ ही म्लेच्छ हैं। वह अपने कमरे में घुसा तो उसका दिल और भी बैठ गया।

तिवारी को रसोई करते छोड़कर अपूर्व दफ्तर के लिए रवाना हो गया। पकाने के सब सामान साथ ही में थे। करुणामयी ने सभी चीजें बाँधी-जोड़ी गठिया दी थीं। मकान के बाहर निकलते ही अपूर्व को पता चल गया कि यह देशी तथा विलायती मेमों और साहबों का मुहल्ला है। उस दिन ईसाइयों का कोई त्योहार था प्रत्येक मकान पर उसका कोई न कोई चिह्न था। अपूर्व ने जब दरबान से पूछा कि रंगून में बहुत-से बंगाली भी तो रहते हैं उनके मुहल्ले में मकान न चुनकर यह मुहल्ला क्यों चुना गया तो इसके उत्तर में उसने कहा—'अफसर लोग इसी बस्ती को ज्यादा पसन्द करते हैं।' इस बात पर क्या कहा जाता। अपूर्व दफ्तर पहुँचा तो मालूम हुआ कि मद्रासी तारबाबू टिफिन करने गए हैं। घंटा भर बाद जब वे आये तो घड़ी की तरफ देखकर बोले—'आज छुट्टी का दिन है दो बजे के बाद दफ्तर बन्द हो चुका है इस समय दो बजकर पन्द्रह मिनट हो चुका है।'

अपूर्व ने बिलकुल झुँझलाकर कहा—'यह तुम्हारा दोष है मेरा नहीं। मैं तो यहाँ एक घंटे से खड़ा हूँ।' इस पर उसने अपूर्व के मुँह की ओर ताक-कर बिना किसी हिचकिचाहट के कहा—'नहीं मैं तो सिर्फ दस मिनट के लिए गया था।' अपूर्व ने इस पर उसके साथ तर्क किया झगड़ा किया

यहाँ तक कि रिपोर्ट करने का डर दिखाया पर असर कुछ भी नहीं। वह निर्विकार चित्त से अपने कामकाज को दुरुस्त करने लगा और समय नष्ट करना निष्फल समझकर अपूर्व बड़े डाकघर को रवाना हो गया और वहाँ से किसी प्रकार माँ को तार भेज सका। माँ ने बार-बार वादा करवा लिया था इस कारण यह तार उसी दिन भेजना जरूरी था।

जब वह थका-माँदा झल्लाया हुआ अपने किराये के मकान पर पहुँचा तो सीढ़ी पर पैर रखते ही उसने देखा कि तिवारी एक बड़ी लाठी बार बार ठोंक रहा है और बिना रुके हुए बकता जा रहा है और उसका प्रतिपक्षी काली बदन पतलून डाटे हुए तिमंजिले के कोठे से अपने खुले दरवाजे के सम्मुख खड़ा रहकर हिन्दी और अंग्रेजी में उसका जवाब दे रहा है और एक घोड़े का चाबुक उठाकर बीच-बीच में हवा में झटकारता जा रहा है। तिवारी उसको नीचे बुला रहा है और वह तिवारी को ऊपर बुला रहा है। सौजन्य का यह आदान-प्रदान जिस भाषा में हो रहा है उसको न कहना ही अच्छा है।

अपूर्व की समझ में नहीं आया कि इतनी ही देर के अन्दर तिवारी ने ऊपर के साहब से इतनी घनिष्ठता कैसे कर ली। उसको देखकर दोनों पक्षों में नई जान-सी आ गई। तिवारी ने उसे देखकर लाठी और भी जोर से ठोककर एक मधुर सम्भाषण किया साहब ने उसका जवाब देते हुए जोरों से चाबुक फटकारा। अपूर्व बीच में पड़कर तिवारी को कमरे के अन्दर घसीट ले गया तो कमरे के अन्दर जो हाल हुआ था उसे दिखाते हुए तिवारी ने कहा—"यह देखिए उस हरामजादे साहब ने क्या कांड किया है।" सचमुच अपूर्व ने देखा तिपाई की गाँठ से अभी तक मसाले की गुनाह निकल रही है पर उसके ऊपर-नीचे आस-पास पानी बह रहा है। अभी के बिछे हुए साफ बिस्तर पर मैला काला पानी पड़ा है। कुर्सी पर पानी मेज पर पानी किताबें भीगी हुई अजीब हालत थी। उसके कीमती नये सूट पर कई दाग लगे हैं।

अपूर्व ने पूछा— यह सब क्या हुआ? तिवारी ने उँगली से ऊपर

नहीं-नहीं मेम साहब यह सब तुम ले जाओ। बाबू खा चुके हैं, हम लोग यह सब नहीं छूते।—अपूर्व ने समझ लिया यह नहीं ईसाई लड़की होगी। तिवारी फिर कह रहा था—'किसने कहा हम लोगों ने नहीं खाया? खाया है यह सब तुम ले जाओ, बाबू यदि सुनेंगे तो बहुत गुस्सा करेंगे। अपूर्व आगे बढ़ गया और तिवारी से बोला—'उनको बहुतों धन्यवाद पर सचमुच हम खाना खा चुके हैं।—लड़की एक मुहूर्त तक मौन रही फिर बोली—'हाँ जरूर, पर खाना अच्छी तरह न हुआ होगा। और यह सब तो बाजार के फल हैं, इसमें क्या हर्ज है।—अपूर्व कुछ विपन्न बना उसने सरल कंठ से कहा—'नहीं कोई दोष नहीं है। फिर तिवारी की ओर मुँह करके कहा—'इसे लेने में क्या दोष है महाराज?—पर तिवारी महाराज इस बात से खुश नहीं हुआ वह बोला—'बाजार का फल है तो बाजार से लाने से ही चलेगा फिर आज रात को इनकी क्या जरूरत है?—फिर उसने ईसाइन की तरफ रुख करके कहा—मेम साहब यह सब तुम ले जाओ हमें नहीं चाहिए। लड़की थोड़ी देर तक चुपचाप खड़ी रही फिर हाथ बढ़ाकर फलों की टोकरी उठाकर धीरे-धीरे चली गई। जब वह चली गई तो अपूर्व ने कुछ दबी हुई रुलाई के साथ कहा—'खाते चाहे न खाते लेकिन ले तो सकते ही थे। बाद को चाहे उन्हें चुपचाप फेंक ही देते। तिवारी ने कहा—'इससे क्या फायदा था? इस पर अपूर्व ने कहा—'फायदा? मूर्ख गँवार कहीं का' और वह वहाँ से चला गया।

अपूर्व को यह उम्मीद थी कि जब साहब का नशा उतर जायगा तब वह अवश्य ही माफी माँगने आयेगा। फिर वह पुलीस और रत उसे अवश्य ही मजबूर करेगी। इस नाते वह उस लड़की से कुछ एकात्मता का अनुभव कर रहा था पर सबेरा हुआ दिन भी चढ़ गया लेकिन माफी माँगने का कहीं नाम नहीं था। बड़ी देर में साहब आये। वे तिवारी से बोले—'ए, तुम्हारा साहब किधर?' अपूर्व दूर से सुन रहा था उसने मन ही मन कहा —पश्चात्ताप करने वाले का यह कौन-सा लहजा है? अपूर्व धीरे-धीरे

पास आकर खड़ा हो गया। साहब ने उसको सिर से पैर तक देखकर कहा —'तुम अंग्रेजी जानते हो ? —उसने कहा—'हाँ जानता हूँ। साहब बोले— मेरे सो जाने के बाद कल तुम ऊपर गये थे ? अपूर्व ने कहा— 'हाँ। साहब ने कहा—'ठीक तुमने लाठी ठोंकी थी ? अनधिकार प्रवेश के लिए चेष्टा की थी ? —अपूर्व के आश्चर्य का ठिकाना नहीं रहा। साहब ने कहा— अगर कहीं हमारे सिवाय तुम रहते तो तुम शायद हमारी बीबी या लड़की पर आक्रमण करते ! अभी जब तक हम जगते रहे तुम नहीं आये ? अपूर्व ने पूछा—'तुम तो सो रहे थे तुमने यह सब कैसे जाना ? साहब ने कहा—'सब मैंने अपनी लड़की से सुना। इस बात से अपूर्व को बड़ा अचम्भा पहुँचा। साहब ने कहा—'घर में अगर जागता होता तुम्हें लात मारकर रास्ते में डाल देता और तुम्हारे मुँह में एक भी दाँत बिना तोड़े नहीं छोड़ता पर जब उस चीज को मैंने खो ही दिया तब मुझे अब पुलिस की शरण लेनी पड़ेगी जो कुछ भी इन्साफ मिल जाय। हम जा रहे हैं तुम इसके लिए तैयार रहो। अपूर्व ने सिर हिलाकर कहा—'अच्छा —पर उसका चेहरा उतर गया। साहब ने लड़की का हाथ पकड़कर कहा— 'आओ' और उतरते-उतरते कहा—'बाबर्ड ! परकीय स्त्री के बदन पर हाथ डालने की चेष्टा मैं तुम्हें ऐसा सबक सिखाऊँगा कि कभी भूलोगे नहीं।

साहब तो चले गये पर तिवारी का बुरा हाल हुआ। उसने कहा— 'उसी वक्त तो मैंने कहा था जो कुछ हुआ सो हुआ अब उनकी ओर देखने से फायदा नहीं है। वे साहब-मेम हैं न ! अपूर्व ने कहा—'साहब हैं तो क्या ? तिवारी ने कहा—'पुलिस में गये न ? अपूर्व ने कहा—'गये तो क्या ? तिवारी ने घबराकर कहा—'बड़े बाबू को एक तार भेज दें ? अपूर्व ने इस बात को स्वीकार नहीं किया।

शाम समय अपूर्व ने कहा—'पुलिस में गये तो क्या आखिर साहब मेमों को कुछ गवाही भी लगेगी कि ऐसे ही ? तुम्हारा कोई गवाह है ? तिवारी ने कहा—'साहब मेमों को कोई गवाही भी लगती है ? उनका

कहना ही काफी है। अपूर्व ने कहा—'देखा उस लड़की को, कैसी भीगी बिल्ली बनकर फल देने आई थी और ऊपर जाकर ही कितनी झूठी शिकायतें कर डालीं। तिवारी ने कहा—'ताज्जुब क्या है, क्रिस्तान जो हैं। अपूर्व को फौरन स्मरण हो आया कि इनको खाद्याखाद्य का कोई ज्ञान नहीं, फिर सामाजिक हिताहित का क्या हो। उसने कहा—अभागे दुष्ट! इनसे असली साहब कितनी घृणा करते हैं, एक मेज पर बैठकर खाना नहीं खाते। किन्तु तिवारी इतना घबराया हुआ था कि अब आड़ में बैठकर गालियाँ देने की हिम्मत भी नहीं रह गई थी, न उसमें यह दिलचस्पी ही थी कि असली साहब उन्हें क्या समझते हैं।

अपूर्व खा-पीकर दफ्तर गया। वहाँ रामदास तलवलकर नामक कम्पनी के एक कर्मचारी के साथ उसका परिचय हुआ। वे पायजामा तथा लम्बा कोट पहने हुए थे, माथे पर लाल चन्दन का टीका था। अंग्रेजी का उच्चारण सुन्दर था, पर वह बोलता हिन्दी ही था। दोनों बात कर रहे थे तब तक बड़ा मैनेजर स्वयं आ गया। आदमी अच्छा था, अपूर्व पर पूरा भरोसा करने के लिए तैयार था। वे काम समझाकर चले गये। तलवलकर शहर में नहीं रहते थे, कोई दस मील पश्चिम इनसिन में अपनी बीवी तथा नन्ही-सी लड़की के साथ रहते थे।

जिस समय अपूर्व ने अपने मकान पर तिवारी को सही-सलामत पाया तो उसके दिल पर से जैसे एक पत्थर-सा उतर गया। हाँ तिवारी ने यह शिकायत की कि ऊपर का साहब एक जगह पर खड़े होकर बराबर जूता पीटता रहा। अपूर्व के साथ तलवलकर आज टहलते-टहलते आ गया था। अपूर्व ने उसको अपनी परेशानी का सारा हाल कह सुनाया। उसी समय वह लड़की आ रही थी। रामदास ने उसका रास्ता रोककर कहा—'मुझे एक मिनट के लिए माफ करें, मैं इन बाबू साहब का मित्र हूँ। इनके प्रति व्यर्थ का उपद्रव करने के लिए आपको दुःखित होना चाहिये। लड़की ने क्रोध में कहा—'इच्छा हो तो यह बातें आप पिताजी से कह सकते हैं। रामदास ने कहा—'आपके पिता घर पर हैं? लड़की ने

कहा—'नहीं।' रामदास बोला—'तो मैं अब इन्तजार नहीं कर सकता। मेरी ओर से उनको कहिएगा कि उनके उपद्रव के कारण मेरे मित्र का यहाँ रहना मुश्किल हो रहा है।'—लड़की ने पहले की तरह कठोर लहजे में कहा—'तो वे चले न जायें।' रामदास जरा हँसा, फिर बोला—'इससे कुछ भी भला नहीं होगा, क्योंकि वे यदि गये तो मैं उनकी जगह पर आ जाऊँगा। मेरा नाम रामदास तलवलकर है, मैं महाराष्ट्री ब्राह्मण हूँ। तलवार पकड़ का एक धर्म है। गुड इवनिंग।

अपूर्व रामदास को स्टेशन तक पहुँचाकर लौट आया तो उसने सोचा कि रास्ते में एक लकड़ी के बेंच पर बैठा जाय, पर ज्यों ही वह बैठा पीछे से किसी ने जोर का धक्का दिया और वह जमीन पर मुँह के बल गिर पड़ा। जब वह किसी प्रकार सँभलकर उठा तो उसने देखा चारों तरफ एंग्लो-इंडियन छोकरे खड़े हँस रहे हैं, किसी के मुँह में पाइप है तो किसी के मुँह में सिगरेट। बेंच पर कुछ लिखा था, उसकी ओर ध्यान दिलाते हुए उनमें से एक ने कहा—'देखता नहीं साला, यह साहब लोग के वास्ते है।'—क्रोध, क्षोभ तथा लज्जा से अपूर्व बिलकुल बेकाबू हो रहा था, वह शायद एकदम हिताहित भुलाकर इस झुंड पर टूट पड़ता, पर कुछ हिन्दुस्तानियों ने जो वहाँ मौजूद थे, उसे पकड़ लिया। वह इन लोगों के हाथ से छुटकारा पाने के लिए छटपटाने लगा तो इस पर एक ने उसे धकिया कर कहा—'अरे बंगाली बाबू, आप ! किस होश में ? अगर आपने साहबों का बदन छुआ कि गए जेलखाना।'—वहाँ से अपूर्व स्टेशन मास्टर के पास शिकायत लेकर पहुँचा पर वहाँ कोई सुनवाई नहीं हुई। उसने उलटा यह कहा—'तुम दूसरों के बेंच पर बैठ क्यों गये?'—क्या करता अपूर्व दिल मसोसकर घर लौट आया। रात को उसने खाना नहीं खाया। बिस्तरे पर पड़े-पड़े वह सोचता रहा, वहाँ इतने हिन्दुस्तानी मौजूद थे, किसी ने उसकी ग्लानि में हिस्सा नहीं लिया। बल्कि उन लोगों ने अपमान की मात्रा बढ़ा ही दी। देशवासियों के विरुद्ध देशवासियों का यह रुख ? ऐसा क्यों हुआ ? यह कैसे सम्भव हुआ ? वह यही सोचता रहा।

दो-तीन दिन तक कोई नया जुल्म नहीं किया तो अपूर्व ने समझा कि अब मामला सुलझ गया। एक दिन अपूर्व दफ्तर से लौटा तो तिवारी ने रोते हुए कुछ कागजात उसके हाथ में दिये। ये अदालत के सम्मन के कागज थे। रोते हुए तिवारी ने कहा—'बाबू, मैं तो कभी अदालत में नहीं गया!' अपूर्व ने कहा—'तो मैं ही कब गया हूँ? ऐसे हर बात में रोना ही था तो विदेश में क्यों आये?'

जो कुछ भी हो यथासमय अदालत में मुकदमा हुआ। तिवारी का कुछ नहीं हुआ पर अपूर्व को बीस रुपये का जुर्माना हुआ। रामदास भी अदालत में था। अपूर्व को यह जुर्माना बहुत अखरा उसने कहा—'बीस जुर्माना हुआ रामदास क्या किया जाय? अपील? क्यों?' रामदास ने कहा—'नहीं बीस रुपये के बदले दो हजार रुपये का खर्च उठाया जायगा नहीं कभी नहीं।' फिर भी अपूर्व नहीं मान रहा था। तब दोनों टहलने चले गये। रामदास ने कहा—'आप बदनामी की बात कह रहे थे तो बदनामी क्या? यह सभी जानते हैं कि ओसेफ के साथ हवलदार की लड़ाई होने पर अंग्रेजों की अदालत में क्या होता है। रहा बेकसूर क्या? इसी प्रकार बेकसूर होते हुए भी मैंने दो साल की सजा काटी और बेंत खाये—' यह कहकर उसने कहा 'यदि मैं पीठ पर से कपड़ा हटा सकता तो आप अभी दाग देख लेते।' रामदास ने फिर भी पूरी कहानी नहीं कही। जब अपूर्व घर पहुँचा तो देखा कि मुकदमा हो जाने पर भी तिवारी अभी तक पीछे डरा हुआ है। उसने कहा—'बाबू जल्दी में दो नोट आप फर्श पर डाल गये थे।' अपूर्व को बड़ा आश्चर्य हुआ पर ऐसा होना कोई असम्भव नहीं है, यह समझकर उसने उन नोटों को जेब में डाल लिया।

फिर भी तिवारी रोज यही कहता रहा कि यह मकान छोड़ दिया जाय। मुकदमे के हफ्ते भर बाद एक दिन अपूर्व को तिवारी से पता लगा कि ऊपर के साहब टाँग तोड़कर अस्पताल में पड़े हैं। मकानवाला भाड़ा माँगने आया था उसी पर बिगड़ गया और सीढ़ी पर से गिर पड़ा।

एक दिन शाम को अपूर्व घर आया तो अपने किवाड़ बन्द पाये।

बात यह है कि तिवारी को अपने जिले का एक आदमी मिल गया था वह उसी के साथ तमाशे में गया था। पाकेट से चाभी निकाली तो वह नहीं लगी। वह तो कोई नया ताला था। वह दो मिनट तक इसी उधेड़बुन में पड़ा था कि क्या करे, इतने में ऊपर की उस लड़की ने सिर निकाल कर कहा—'ठहरिए, मैं खोलती हूँ।' अपूर्व को बड़ा आश्चर्य हुआ कि यह चाभी उसके पास कैसे पहुँची! वह लड़की आ पहुँची और उसने चाभी खोल दी। वह बोली—'मेरी माँ बड़ी डरपोक है वह तबसे मुझसे लड़ रही है कि कहीं आपने मेरा एतबार न किया तो मुझे चोरी के जुर्म में जेल जाना पड़ेगा। लेकिन मुझको यह डर कतई नहीं है।' अपूर्व ने पूछा कि मामला क्या है? लड़की ने कहा कि भीतर जाकर देखिए। भीतर जाकर देखा कि कमरे का सारा सामान अस्तव्यस्त पड़ा था। अपूर्व ने पूछा कि यह कैसे हुआ। तो मालूम हुआ कि तिवारी के जाने के बाद कमरे में एक प्रकार का सन्देहजनक शब्द निकलता सुनकर लड़की ने ऊपर के छेद से देखा कि चोर लोग बक्स तोड़ रहे थे। वह जोर से चिल्लाई। इस पर चोर भाग गये। तब उसने कमरे में अपना ताला लगा दिया और कहीं चोर फिर से लौट न आएं इसलिए पहरा दे रही है। उस लड़की का नाम भारती था। वह अपूर्व की इजाजत से कमरे में दाखिल हुई। फिर दोनों मिल-मिलाकर देखने लगे कि क्या-क्या चोरी हो गया। मालूम हुआ कि कुछ चीजें गई जरूर हैं यद्यपि अधिक नहीं। जब रुपया का हिसाब होने लगा तो अपूर्व को यह पता नहीं था कि उसके कमरे में कितने रुपये थे। तब भारती ने कहा कि घर से जितने रुपये लेकर चले थे उसका हिसाब किया जाय। तदनुसार अपूर्व गिनाने लगा। इसी दौरान वह बीस रुपये जुर्माने का गिना गया। इस पर भारती बोली—'नहीं इन बीस रुपयों को मैं गिनने नहीं दूँगी। यह जुर्माना तो अन्यायपूर्ण था मैं इसे न पटाऊँगी।'—इस पर अपूर्व ने ताज्जुब करते हुए कहा—'जुर्माना अन्यायपूर्ण हो सकता है पर मैंने रुपये दिये यह तो झूठ नहीं है।' भारती ने इस र फिर कहा—'वह रुपये आपने दिये क्यों? उन रुपयों का नहीं

तिमुँगी दो सौ अस्सी रुपये चोरी हो गये। जाते समय भारती ने कहा—
'मामले को पुलिस में न दीजिए, पुलिस का तजर्बा तो आपको हो चुका।
मैं आपको ऐसा कभी भी नहीं करने दूँगी। कानून तो उस दिन भी था
जिस दिन आपने जुर्माना किया था। अपूर्व ने कहा—'लोग यदि झूठ
बातें मुकदमा चलाएँ तो इसमें कानून का क्या दोष है?

इस प्रकार चोरी को दबा देने की सलाह अपूर्व को अच्छी नहीं लगी।
भारती की बिना माँगी सहायता भी उसे अब अच्छी नहीं लगी और उसके
मन में कुछ अज्ञानित घटना की शंका हुई। यह सभी शायद अभिनय है।
अपूर्व ने तड़ से कह दिया—'चोर को हम उत्साह नहीं दे सकते पुलिस
को खबर करनी ही पड़ेगी। भारती डरकर बोली—'यह क्या बात है!
चोर भी नहीं पकड़ा जायगा समय भी नहीं लौटेगा बीच में मैं खींचा-खींची
फिरूँगी। मैंने देखा ताला लगाना फिर आकर सब चीजों को ढंग से
रखा मैं तो कहीं की न रहूँगी। अपूर्व ने कहा—'इसमें क्या है जो कुछ
जैसा हुआ साफ-साफ कह दीजियेगा। भारती ने व्याकुल होकर कहा—
'कहने से क्या होता है? अभी अभी उस दिन वह झगड़ा हुआ बातचीत
बन्द एकाएक आपके लिए मेरी महब्बत उमड़ पड़ी यह पुलिस क्या
एतबार करने लगी?' अपूर्व के मन का सन्देह और भी दृढ़ हो गया। उसने
कहा—'लेकिन मैं चोर को बिना सजा दिलाये न छोड़ूँगा। उसके मुँह की
ओर हतबुद्धि की तरह ताकती हुई भारती बोली—'आप क्या कह रहे हैं
अपूर्व बाबू? पिताजी अच्छे आदमी नहीं हैं उन्होंने अकारण ही आपके
साथ अन्याय किया मैंने उसका साथ दिया यह भी माना पर इसी कारण
बक्स तोड़कर चोरी करूँगी? इस बदनामी के बाद मैं जी नहीं सकती'—
इतना कहकर वह पौधी की तरह निढाल पड़ी, उसके होंठ फड़क रहे थे।

अपूर्व थाने में रिपोर्ट करने के लिए चल पड़ा। तिवारी की तरह
उसको ध्रुव विश्वास तो नहीं था कि भारती ने ही चोरी की है पर भारती
के अद्भुत चरित्र से उसको घोर सन्देह हो रहा था। थाने में
घुसने ही जा रहा था कि इतने में निमाई बाबू से भेंट हो गई। ये महा-

मय पुलिस में काम करते थे। अपूर्व के पिता ने इन्हें नौकरी दिलाई थी। इस नाते निमाई अपूर्व के पिता को भैया कहता था और अपूर्व आदि उनको निमाई चाचा कहते थे। बातचीत से मालूम हुआ कि वे किसी क्रान्तिकारी दल की खोज में बर्मा आये हैं। इस समय जहाज घाट पर आ रहे थे। सव्यसाची नामक एक भयंकर क्रान्तिकारी के आने की खबर थी। अपूर्व को इतना कौतूहल हुआ कि वह भी उनके साथ हो लिया। निमाई बाबू ने आपत्ति नहीं की। बन्दरगाह पर भीड़ थी। अपूर्व ने सोचा—ऊपर-नीचे जल में स्थल में इतने लोग खड़े हैं, किसी के हृदय में कोई दाग नहीं है केवल जिसने अपने तरुण हृदय का सारा सुख सारा स्वार्थ तथा सब आशाओं का विसर्जन किया है उसी के लिए जेल तथा फाँसी का पथ निमाई बाबू के रूप में यहाँ खड़ा है। निमाई बाबू अपने दलबल सहित ऐसी जगह खड़े हुए, जिससे कि हरेक आने-जाने वाले को वे ध्यान से देख सकें। अपूर्व वहाँ एक निष्प्राण वृक्ष की तरह खड़े होकर मन ही मन कहने लगा अभी तुम्हारे हाथों में हथकड़ियाँ डाली जायेंगी, तमाशे के भूखे लोग तुम्हारे अपमान को आँख खोलकर देखेंगे व जान भी नहीं पायेंगे कि उन्हीं के लिए तुमने अपना सर्वस्व चढ़ा दिया है। × × × जिस विस्मृत भूतकाल में तुम्हारे ही लिए पहली जंजीर बनाई गई थी तथा कारागार का निर्माण तुमको ध्यान में रखकर हुआ था यही तो तुम्हारा गौरव है। कोई तुम्हारी अवज्ञा नहीं कर सकता, यह विपुल सेना तथा पहरा तुम्हारे ही लिए है। दुःख का विपुल बोझ तुम ही उठा सकते थे। तभी भगवान ने यह भारी बोझा तुम पर डाल दिया है। हे मुक्तिपथ के अग्रदूत पराधीन देश के राजविद्रोही तुम्हें सैकड़ों नमस्कार है। निमाई बाबू ने एकाएक आकर कहा—जिस बात का डर था वही होकर रहा चिड़िया भाग गई। अपूर्व ने पूछा—कैसे? निमाई ने कहा—'अगर यहीं आनता तो भाग कैसे जाता। न मालूम किसकी भाषा बोलता हुआ किस भेष में निकल गया।

कुछ आदमी फिर भी अन्देह में गिरफ्तार कर लिये गये थे। इस

में से एक के सिवा सभी जाँच-पड़ताल के बाद छोड़ दिये गये। आखिरी व्यक्ति को निमाई बाबू के सामने हाजिर किया गया। अद्भुत व्यक्ति था। वह आदमी खाँसते-खाँसते आया। उम्र तीस-बत्तीस से अधिक नहीं होगी पर जितना ही दुबला था उतना ही कमजोर था। मालूम नहीं होता था कि अब आयु की कोई अधिक मियाद बाकी है। भीतर कोई दुरारोग्य रोग है। फिर भी उस क्षीण शरीर की दोनों आँखों की दृष्टि अद्भुत थी। वह आँख जल्दी थी कि थोड़ा कुछ पता नहीं चलता था। गहरे तालाब की तरह उसमें फिर भी कुछ था जरूर। उसके कपड़ों की ओर देखकर हँसी आती थी। सामने बड़े-बड़े बाल थे पीछे की ओर के बाल छोटे करके छँटे हुए थे। बीच में माँग कढ़ी हुई थी बाल तेल से खूब तर थे। नींबू के तेल की बू से कमरा महक रहा था बदन पर इन्द्रधनुषी रंग के जापानी रेशम का चुन्नटदार कुर्ता था उसके बुक-पाकेट पर बाघ का चेहरा बना हुआ एक रूमाल का कुछ हिस्सा दिखाई दे रहा था। अपूर्व ने इस अजीब आदमी को जब देखा तो उसने कहा—'चाचा जी यह व्यक्ति हर्गिज वह नहीं है जिसकी आपको तलाश है। उसका नाम पूछा गया तो मालूम हुआ गिरीश महापात्र है। तलाशी लेने पर पाकेट से एक लोहे का कम्पास एक लकड़ी का स्केल कुछ बीड़ियाँ एक दियासलाई तथा एक गाँजे की चिलम निकली। पूछने पर आदमी ने कहा—'वह गाँजा नहीं पीता पर यह चिलम कहीं मिल गयी इसलिए रख लिया कि शायद किसी के काम आये। हाथ देखने पर गाँजे का चिह्न मिला। कह भी हो गिरीश महापात्र छोड़ दिया गया।

लड़कपन में ही अपूर्व स्त्रियों के प्रति श्रद्धाशील नहीं था बल्कि उनके प्रति कुछ वितृष्णा ही था। भाभियाँ यदि उससे परिहास करती तो वह मन ही मन नाराज होता था यदि वे घनिष्ठता करने आती थीं तो वह दूर हट जाता था। माँ के अतिरिक्त किसी स्त्री की सेवा उसे अच्छी नहीं लगती थी। किसी लड़की ने कालेज में पढ़कर परीक्षा पास की इस बात से उसको खुशी नहीं होती थी और अखबारों में यह पढ़

कर कि विलायत की औरतें राजनीतिक अधिकारों के लिए लड़ रही हैं उसके बदन में आग लग जाती थी। फिर भी उसका हृदय बड़ा भद्र तथा कोमल था। इस नाते वह स्त्री-पुरुष सभी प्राणियों से प्रेम करता था किसी को कष्ट देने में हिचकता था। इसी कमजोरी के कारण वह भारती को अपराधी समझकर भी सजा नहीं दिला सका था। पर पुरुष के यौवनपूर्ण हृदय के बीच और भी बहुत-सी दुर्बलतायें गुप्त रूप से एकान्त में निवास करती हैं इसका उसे अभी पता नहीं था।

दफ्तर के काम के सिलसिले में अपूर्व कई हफ्ते तक रंगून के बाहर दौरा करता रहा। जब वह रंगून लौटा तो देखा कि मकान के सामने गाड़ी ठहरी फिर भी तिवारी का कहीं पता नहीं। कमरे के किवाड़ों पर जोरों से धक्का देता रहा तो धीरे से किवाड़ खुला और उसके सामने—अरे! यह कौन है? भारती। उसकी यह क्या मूर्ति थी। पैर में जूते नहीं पहिनने में काले रंग की साड़ी थी बाल सूखे तथा बिखरे हुए थे, मुँह पर शान्त गम्भीर विषाद की छाया थी यह जैसे बहुत दूर से आई हुई तीर्थयात्री थी धूप में सिककर, पानी में भीगकर, अनाहार, अनिद्रा में दिन-रात चलकर यहाँ आई थी किसी भी मुहूर्त में रास्ते पर गिर कर मर सकती है। इस पर कोई कभी क्रोध कर सकता है अपूर्व इसकी कल्पना ही नहीं कर सकता था। भारती ने सिर नवाकर जरा-सा नमस्कार कर धीरे से कहा—'आप आये हैं, अब तिवारी बच जायेगा।' —पूछने पर अपूर्व को मालूम हुआ कि इधर चेचक फैल रहा है तिवारी भी उसी का शिकार हुआ है। भारती फिर बोली—'चलिए ऊपर के कमरे में यहाँ आपका घुसना ठीक न होगा।' अपूर्व ने आश्चर्य के साथ कहा—'ऊपर के कमरे में? भारती ने कहा—'कमरा अभी हमीं लोगों के कब्जे में है, पर मैं अब वहाँ से चली गई हूँ। साफ है नल में पानी है आपको कोई कष्ट न होगा। साथ का सामान वहीं ले चलिए। अपूर्व राजी हो गया। इसके बाद सामान रखवाकर नहाने गया फिर वहाँ से लौटा तो भारती ने उसके सामने रखा हुआ गिलास दिखाकर कहा—'लीजिए

में से एक के सिवा सभी जाँच-पड़ताल के बाद छोड़ दिये गये। आखिरी व्यक्ति को निमाई बाबू के सामने हाजिर किया गया। अद्भुत व्यक्ति था। वह आदमी खाँसते-खाँसते आया। उम्र तीस-बत्तीस से अधिक नहीं होगी पर जितना ही दुबला था उतना ही कमजोर था। मालूम नहीं होता था कि अब आयु की कोई अधिक मियाद बाकी है। भीतर कोई दुरारोग्य रोग है। फिर भी उस क्षीण शरीर की दोनों आँखों की दृष्टि अद्भुत थी। वह आँख लम्बी थी कि गोल कुछ पता नहीं चलता था। गहरे तालाब की तरह उसमें फिर भी कुछ था जल। उसके कपड़ों की ओर देखकर हँसी आती थी। सामने बड़े-बड़े बाल थे पीछे की ओर के बाल छोटे करके कटे हुए थे। बीच में माँग कढ़ी हुई थी बाल तेल से खूब तर थे। नींबू के तेल की बू से कमरा महक रहा था बदन पर इन्द्रधनुषी रंग के जापानी रेशम का धारीदार कुर्ता था उसके बुक-पाकेट पर बाघ का चेहरा बना हुआ एक रूमाल का कुछ हिस्सा दिखाई दे रहा था। अपूर्व ने इस अजीब आदमी को जब देखा तो उससे कहा—'चाचा जी यह व्यक्ति हर्गिज वह नहीं है जिसकी आपको तलाश है।' उसका नाम पूछा गया तो मालूम हुआ गिरीश महापात्र है। खानातलाशी लेने पर पाकेट से एक लोहे का कम्पास एक लकड़ी का स्केल कुछ बीड़ियाँ एक दियासलाई तथा एक गाँजे की चिलम निकली। पूछने पर आदमी ने कहा—'वह गाँजा नहीं पीता पर यह चिलम कहीं मिल गयी इसलिए रख लिया कि शायद किसी के काम आवे।' हाथ देखने पर अफीम का चिह्न मिला। कुछ भी हो गिरीश महापात्र छोड़ दिया गया।

लड़कपन से ही अपूर्व स्त्रियों के प्रति श्रद्धाशील नहीं था बल्कि उनके प्रति कुछ वितृष्ण ही था। भाभियाँ यदि उससे परिहास करतीं तो वह मन ही मन क्रुद्ध होता था यदि वे घनिष्ठता करने आती थीं तो वह दूर हट जाता था। माँ के अतिरिक्त किसी स्त्री की सेवा उसे अच्छी नहीं लगती थी। किसी लड़की ने कालेज में पढ़कर परीक्षा पास की इस बात से उसको खुशी नहीं होती थी और अखबारों में यह पढ़

कर कि विलायत की औरतें राजनैतिक अधिकारों के लिए लड़ रही हैं उसके बदन में आग लग जाती थी। फिर भी उसका हृदय बड़ा भद्र तथा कोमल था। इस नाते वह स्त्री-पुरुष सभी प्राणियों से प्रेम करता था किसी को कष्ट देने में हिचकता था। इसी कमजोरी के कारण वह भारती को अपराधी समझकर भी सजा नहीं दिला सका था। पर पुरुष के यौवनपूर्ण हृदय के नीचे और भी बहुत-सी दुर्बलतायें गुप्त रूप से एकान्त में निवास करती हैं इसका उसे अभी पता नहीं था।

दफ्तर के काम के सिलसिले में अपूर्व कई हफ्ते तक रंगून के बाहर दौरा करता रहा। जब वह रंगून लौटा तो देखा कि मकान के सामने गाड़ी ठहरी फिर भी तिवारी का कहीं पता नहीं। कमरे के किवाड़ों पर जोरों से धक्का देता रहा तो धीरे से किवाड़ खुला और उसके सामने—अरे! यह कौन है? भारती। उसकी यह क्या मूर्ति थी। पैर में जूते नहीं पहिनने में काले रंग की साड़ी थी बाल सूखे तथा बिखरे हुए थे मुँह पर शान्त गम्भीर विषाद की छाया थी यह जैसे बहुत दूर से आई हुई तीर्थयात्री थी धूप में झिलककर, पानी में भीगकर अनाहार, अनिद्रा में दिन रात चलकर यहाँ आई थी किसी भी मुहूर्त में रास्ते पर गिर कर मर सकती है। इस पर कोई कभी क्रोध कर सकता है अपूर्व इसकी कल्पना ही नहीं कर सकता था। भारती ने सिर झुकाकर जरा-सा नमस्कार कर धीर से कहा—'आप आये हैं अब तिवारी भी जायेगा। —पूछने पर अपूर्व को मालूम हुआ कि इधर चेचक फैल रहा है तिवारी भी उसी का शिकार हुआ है। भारती फिर बोली—'चलिए ऊपर के कमरे में यहाँ आपका घुसना ठीक न होगा। अपूर्व ने आश्चर्य के साथ कहा—'ऊपर के कमरे में? भारती ने कहा—'कमरा अभी हमीं लोगों के कब्जे में है पर मैं अब वहाँ से चली गई हूँ। साफ है नल में पानी है आपको कोई कष्ट न होगा। साथ का सामान वहीं ले चलिए। अपूर्व राजी हो गया। इसके बाद सामान रखवाकर नहाने गया फिर वहाँ से लौटा तो भारती ने उसको सामने रखा हुआ गिलास दिखाकर कहा—'लीजिए

यह मिलाप बँगले के ऊपर कागज की पुड़िया में रखकर है उसे हाथ में लेकर मेरे साथ मल पर आइए, और इस प्रकार शरबत बनाइए। कहकर उसने इशारे से अपूर्व को शरबत बनाने का तरीका बतलाया। इसके बाद उसी के हाथ से खिचड़ी पकवाई। जब अपूर्व खिचड़ी पका रहा था तो वह चौखट के बाहर से उसे पकाने की शिक्षा दे रही थी। अपूर्व ने पूछा—'आप कब खायेंगी कहाँ जायेंगी। तो उसने बात टाल दी कि हम दोनों के खाने में क्या झंझट है। अपूर्व पकाने में बराबर गलती कर रहा था। खाना खतम हो जाने पर अपूर्व ने पूछा कि तिवारी तक तो मैं समझ गया पर आपके पिता ने उसमें आपकी इस दिलचस्पी पर आपत्ति नहीं की ? भारती ने कहा—'ओह हाँ उनका तो देहान्त हो गया वे अस्पताल ही में मर गये। अपूर्व कुछ देर तक चुप रहा फिर उसने कहा—'आपके काले कपड़े देखकर मुझे ऐसी ही भयानक दुर्घटना का अनुमान कर लेना चाहिए था। भारती ने उसी साँस में कह डाला—'इससे भी बड़ी दुर्घटना तब हुई जब माताजी अचानक मर गईं। माँ मर गई। सुनकर अपूर्व स्तब्ध हो रहा। भारती ने आँखें दूसरी ओर कर ली। अब दो मिनट बाद उसने अपूर्व की ओर मुँह फेरा तो देखा कि उसकी आँखों में भी आँसू छलक पड़े हैं और वह एकटक भारती की ओर देख रहा है। भारती ने फिर मुँह फेरा पर थोड़ी ही देर में शान्त होकर बोली—तिवारी बड़ा अच्छा आदमी है। उसने विपत्ति के समय बड़ा उपकार किया। अब मैं इस मकान को छोड़कर जाने लगी तो यह रोने लगा पर इतना किराया मैं देती कैसे ? फिर कुछ ठहरकर बोली—'आपकी चोरी का सब माल बरामद हो गया है पुलिस में जमा है। तिवारी को जो लोग उस दिन तमाशा दिखाने ले गये यह उन्हीं के गिरोह का काम है।' धीरे धीरे उसने यह भी बता दिया कि कैसे वह एक दिन तिवारी को देखने आई तो उसको बुखार में बेसुध पाया और तब से वह दिन रात यहीं रहकर उसकी परिचर्या करती है।

अपूर्व इस पर अफसोस करता रहा कि उसे खबर क्यों नहीं दी

गई। उसने शिकायत के स्वर में कहा— आप नहीं देख रही हैं आपका चेहरा कितना बिगड़ गया है ?

भारती जरा हँसकर बोली—'अर्थात् पहले इससे बहुत अच्छा था ?

अपूर्व को इसका कोई उत्तर न सूझ पड़ा पर उसकी आँखों की मुग्ध दृष्टि जैसे श्रद्धा और कृतज्ञता के अंजाजल से इस तरुणी के सर्वांग की सब ग्लानि तथा क्लान्ति को धोये दे रही थी। तिवारी के लिए उसने जो कुछ किया था उससे अपूर्व के मन पर बड़ा प्रभाव पड़ा वह इस बात के लिए तैयार नहीं था कि भारती का स्वास्थ्य एकदम ही खराब हो जाय। बस' यह तय हुआ कि उसे अब छुट्टी दी जाय पर जब अपूर्व जाकर रोगी के पास खड़ा हुआ तो रोगी की हालत देखकर उसकी सिट्टी पिट्टी गुम गई। वह बिलकुल बच्चे की तरह व्याकुल होकर बोल उठा—'मुझसे न होगा! भारती कुछ देर तक मौन रही फिर बोली—'आपसे न होगा ? अच्छा! उसके कण्ठस्वर में विस्मय के आभास के अतिरिक्त कुछ भी नहीं था पर यह कैसा उत्तर था। क्या उसने अपूर्व के निकट यही आशा की थी ? अकस्मात् जैसे मार खाकर अपूर्व की नींद छूट गई। उधर तिवारी बेहोश पड़ा था। भारती ने कहा—'दिन रहते-रहते कुछ करना चाहिए, आप कहें तो मैं जाते वक्त अस्पताल में टेलीफोन कर दूँ। अपूर्व बोला—'आपने कहा था वहाँ जानेवाले सब मर जाते हैं ?

भारती बोली—'कोई नहीं जीता ऐसा तो मैंने नहीं कहा था।

अपूर्व बोला—'यानी अधिकतर तो मर ही जाते हैं। हाँ तभी तो होश रहते वहाँ कोई जाना स्वीकार नहीं करता।

अपूर्व ने पूछा—'क्या तिवारी हमेशा बेहोश ही रहता है ? भारती बोली—'नहीं अक्सर होश में आ जाता है। इतने में तिवारी एकाएक चीख पड़ा। इस पर अपूर्व चौंक पड़ा यह भारती से छिपा नहीं रहा। तिवारी ने इसके बाद गिड़गिड़ाकर कुछ कहा। अपूर्व नहीं समझा पर भारती समझ गई और उसने फौरन पानी का लोटा उठाकर उसे स्नेह के साथ पानी पिला दिया। भारती ने तिवारी से कहा—'तुम्हारे बाबू

आ गये। इस पर तिवारी हाथ उठाना चाहता था पर न उठा पाया। उसकी आँखों में आँसू उमड़ पड़े। अपूर्व की आँखों से भी झड़ी लग गई, कई बार इसे उसने रोका पर न रुकी। उसने आँखों पर धोती का एक फटा हुआ हिस्सा रख लिया। भारती पास आकर बोली—'तो भेज दीजिए अस्पताल ही न।' अपूर्व ने बिना आँखें खोले ही सिर हिलाकर कह दिया—'नहीं।' भारती ने कहा—'अच्छी बात है, मैं जाती हूँ कल समय मिला तो आऊँगी।' भारती जाने लगी तो अपूर्व एकाएक बोल उठा—'यदि तिवारी पानी माँगे तो?' भारती बोली—'पानी दीजियेगा।' अपूर्व ने कहा—'यदि करवट बदलना चाहे तो?' भारती बोली—'करवट बदल दीजियेगा।' अपूर्व फिर भी बोला—'मैं सोऊँगा कहाँ?' भारती बोली—'क्यों तिवारी के कमरे में एक बिस्तरा है उस पर।' फिर भी अपूर्व बोला—'मेरे खाने-पीने का क्या बन्दोबस्त होगा?' भारती ने ध्यान से उसके मुँह की ओर देखा और धीरे से बोली—'यानी आपको इस प्रकार दूसरी बातें न कहकर मुझसे यह कहना चाहिए कि कृपा कर मेरा सारा बन्दोबस्त कर दीजिये।' अपूर्व ने कहा—'ऐसा कहने में कोई हर्ज नहीं।' भारती बोली—'तो फिर कहिए।' अपूर्व किसी तरफ न ताक कर बोल उठा—'यही कह रहा हूँ।' यह कहकर उसने मुँह बना लिया। थोड़ी देर ठहरकर भारती बोली—'पर तिवारी ने तो मेरे हाथ का पानी पी लिया।' अपूर्व ने कहा—'होश रहते नहीं पिया मुमूर्षावस्था पर पिया न पीने पर शायद मर जाता। शायद ऐसी हालत में नहीं होता। इसलिए जाति नहीं जाती शायद कोई प्रायश्चित्त करने से काम चल जाय।' भारती भौंह तानकर बोली—'और शायद उसका खर्चा आपको ही देना पड़े। नहीं तो फिर आप उसके हाथ से खायेंगे कैसे?' अपूर्व ने कहा—'जरूर दूँगा ईश्वर उसका अच्छा तो कर दे।' भारती बोली—'और मैं ही उसकी सेवा कर उसे अच्छा करूँ? क्यों? अर्थात् यदि प्राणदान करे तो कुछ नहीं पर यदि उसके मुँह में पानी दे दिया तो बस प्रायश्चित्त की जरूरत हो गई क्यों?' वह जाने लगी। पर जाने के पहले लौटकर

बोली—'कल मैं आऊँगी और यदि मैं न आऊँ तो तिवारी के अच्छे हो जाने पर उससे कह दीजियेगा कि यदि आप न आते तो मैं न जाती। म्लेच्छ लोगों का एक समाज है आपके साथ एक कमरे में रात कैसे बिताऊँ? कल सवेरे तलवरकर बाबू को बुला लीजियेगा वे सब व्यवस्था कर देंगे। यह कहकर जब भारती निकल गई, तो एकाएक अपूर्व सम्हाल न सका उसकी तबीयत आने लगी हो गई, वह बाहर निकला और जोर से पुकारा—'भारती! भारती ने जब पीछे मुँह फेरा तो उसने इशारे से कहा—एक बार आइये। और उससे कुछ कहा न गया। जब भारती ने लौटकर अपूर्व को कमरे में नहीं पाया तो कुछ मिनट ठहरकर गुसलखाने की ओर झाँका देखा अपूर्व जमीन पर लेटकर उलटी कर रहा है और उसका सारा शरीर पसीने से तरबतर हो रहा है। भारती एक मिनट के लिए हिचकिचाई, फिर वह अपूव के पास बैठकर उसके सिर पर हाथ रखकर बोली—'उठ बैठिये। भारती का उस समय जाना न हो सका।

इस घटना के बाद एक महीना बीत चुका है। तिवारी अच्छा हो गया पर उसमें अभी ताकत नहीं आई। भारती उस दिन चली गई थी तब से लौटकर नहीं आई थी। तलवरकर की देखरेख में तिवारी तथा अपूर्व की सेवा हुई थी। तिवारी के लिए यह तय हुआ था कि वह जरा अच्छा होते ही देस लौट जायगा। एक सप्ताह में ऐसा हो सकेगा यही प्रतीत होता था। तिवारी के मन में यह विचार आता था कि कहीं ऐसा न हो कि म्लेच्छ लड़की के हाथ से पानी पीने की बात देस तक पहुँच जाय और उसकी नौकरी भी चली जाय। साथ ही उसके विचारों की एक दूसरी भी दिशा थी। दुपहर के समय मोढ़ा डालकर सड़क की उसी ओर ताकता रहता था जिधर से भारती आ सकती थी। एक दिन दफ्तर से लौटकर अपूव ने अकस्मात् पूछा—'भारती का क्या मकान कहाँ है तिवारी?

तिवारी कह उठा—'मैं क्या जानूँ? अपूर्व ने बात को साफ करते

कान के हरे पत्थर के कर्णफूल पर रोशनी पड़ने से पत्थर साँप की आँख की तरह चमक रहे थे। उस समय जो बातचीत चल रही थी जब उससे लोगों को छुट्टी हुई तो सुमित्रा ने अपूर्व की तरफ ध्यान दिया। वह बोल उठी—'अपूर्व बाबू!' अपूर्व ने चौंककर सिर उठाया। सुमित्रा बोली—'आप हम लोगों को नहीं जानते पर भारती की बदौलत हम सभी आपको जानते हैं। सुना कि आप हम लोगों की समिति का सदस्य होना चाहते हैं।' अपूर्व से ना नहीं कहा गया। जो आदमी कोने में बैठकर लिख रहा था उसकी तरफ मुँह करके सुमित्रा बोली—'डाक्टर साहब, जरा अपूर्व बाबू का नाम तो लिख लीजिए।

पलक मारने के पहले ही उसका नाम एक मोटी कापी पर चढ़ गया, देखकर वह मन ही मन बेचैनी का अनुभव करने लगा। उससे रहा न गया, वह बोल उठा—'लेकिन लेकिन समिति का उद्देश्य कुछ मालूम नहीं हुआ। सुमित्रा बोली—'तो क्या भारती ने आपको नहीं बताया? अपूर्व ने कुछ देर सोचकर कहा—'कुछ बताया है, पर मैं पूछना यह चाहता हूँ कि अभी-अभी नवतारा के पति त्याग कर आप लोगों में आकर काम करने पर बातचीत हो रही थी तो क्या सचमुच आप लोग उसके आचरण को अन्यायपूर्ण नहीं समझतीं?

सुमित्रा बोली—'कम से कम मैं तो नहीं समझती क्योंकि मेरी आँखों में देश से बढ़कर कुछ नहीं है। अपूर्व ने श्रद्धा के साथ कहा—'और देश को तो मैं भी प्राणों से अधिक प्यार करता हूँ। यह भी मानता हूँ कि देश सेवा करने का अधिकार स्त्री-पुरुष दोनों का बराबर है, फिर भी दोनों के कर्मक्षेत्र तो अलग-अलग हैं ही। हम पुरुषगण बाहर जाकर काम करेंगे पर स्त्री घर के अन्तःपुर में रहकर ही पति-पुत्र की सेवा से ही अपने को सार्थक करेंगी। वहाँ रहकर संसार का जितना वास्तविक कल्याण कर सकती बाहर आने पर पुरुषों की भीड़ से तो उसमें बाधा ही पहुँचेगी।

सुमित्रा हँसी, फिर बोली—'अपूर्व बाबू, यह जानने की बात है। जिन्होंने कभी देश का कोई काम नहीं किया है वे ही ऐसी बात कह सकते

हैं, या जिनके निकट अपना स्वार्थ देश के स्वार्थ से कहीं बढ़कर है वे ऐसी बात कह सकते हैं। यदि आप स्वयं कभी देश-सेवा करें तो आपको यह अनुभव होगा कि जिसे आप आज पुरुषों की भीड़ में खड़ा होना कहते हैं जब वही होगा तभी देश का काम सम्भव होगा।

अपूर्व ने फिर भी कहा—'पर क्या इससे दुर्नीति नहीं बढ़ेगी? क्या चरित्र कलुषित होने का भय नहीं रहेगा?

सुमित्रा बोली—'क्या भीतर कम भय रहता है?

अपूर्व बोला—'आप मुझे क्षमा करें नारीत्व का जहाँ परम उत्कर्ष है उसी सतीत्व तथा पातिव्रत्य धर्म को आप लोग अवहेलना की दृष्टि से देखती हैं, क्या इससे देश का कोई कल्याण होगा?

सुमित्रा बोली—'जो बात मैंने कही थी वह कुछ और थी। खैर जिसे आप सतीत्व कह रहे हैं वह तो केवल शरीर तक ही सीमित नहीं है उसमें मन की भी तो जरूरत है अपूर्व बाबू। शरीर और मन दोनों से जब प्रेम हो तभी न प्रेम है? मन्त्र पढ़कर शादी करा देने से ही क्या कोई किसी से प्रेम कर सकता है? क्या यह पोखर का पानी है कि चाहे जिस पात्र में डाल दो बस काम चल जायगा?

अपूर्व को कुछ जवाब न सूझ पड़ा तो वह बोल उठा—'हमेशा से चला तो आ रहा है।

सुमित्रा फिर हँसकर सिर हिलाते हुए बोली—'हाँ सो तो चल रहा है। प्राणनाथ कहकर वह पत्र भी लिखती है और असामयिक भी करती है। पर यह वैसे हो है जैसे कोई अतिपुष्ट धूप में बदल चावल की पीठी का पानी पीते थे। चाहे जो कुछ भी हो नकली को असली कहकर कोई गर्व नहीं कर सकता।'

अपूर्व को यह आलोचना बहुत बुरी लगी उसने कहा—क्या इससे अधिक किसी को नहीं मिलता?

सुमित्रा बोली—'नहीं, ऐसा तो मैं नहीं कहती। अकस्मात् भी तो सम्भव है।'

इस प्रकार जब यह बहस खूब जोर पकड़ रही थी उस समय वह आदमी जो अब तक कोने में बैठकर लिख रहा था एकाएक उठा। सभी साथ-साथ खड़े हो गये। अपूर्व ने देखा अरे यह तो वही गिरीश महापात्र है। गिरीश अपूर्व के पास आकर बोले— हमें आप भूल तो न गये होंगे हमको यहाँ सब डाक्टर कहते हैं। यह कहकर वे हँसे। अपूर्व ने कहा—'मेरे चाचाजी के नोटबुक में कोई दूसरा ही भयंकर-सा नाम लिखा है'

गिरीश ने उसके दोनों हाथ अपने हाथों में ले लिए और कहा—'सव्य साची न ?' इतना कहकर फिर वह हँसे। फिर वे अपूर्व को कुछ दूर तक पहुँचाने के लिए घर से निकल पड़े। रात अधिक हो रही थी।

डाक्टर ने अपूर्व को भारती के घर पहुँचा दिया। रास्ते में कुछ बात चीत हुई जिससे अपूर्व अस्पष्ट रूप से समझ गया कि जिन लोगों के संसर्ग में वह आ चुका है वे सब के सब रहस्य से आवृत हैं। सुमित्रा का पति है कि नहीं आदि प्रश्नों का डाक्टर से उसे कोई उत्तर नहीं मिला। डाक्टर अजीब आदमी था कि किसी अटपटे प्रश्न का उत्तर ही नहीं देता था साथ ही उसका व्यवहार घुमा घुमा था। भारती के यहाँ पहुँचकर डाक्टर को भारती से मालूम हुआ कि एक परिचित परिवार किसी भयंकर आफत में फँसा है बस वे अंधकार में वैसे ही छू मन्तर हो गये। भारती ने कुछ बनाकर उसके खाने-पीने की व्यवस्था कर दी। खाने-पीने के बाद अपूर्व ने जब भारती को उसके कष्ट के लिए धन्यवाद दिया तो वह बोल पड़ी—'जब ईश्वर ने बोझ दिया है तो उसे ढोना ही पड़ता है इसकी शिकायत मैं किससे करूँ ?

अपूर्व ने आश्चर्य के साथ कहा—'इसका अर्थ ?

भारती कुछ काम कर रही थी उसी प्रकार काम करते-करते बोली—'इसका अर्थ क्या साफ है क्या मैं खुद ही जानती हूँ ? किन्तु देख रही हूँ कि जबसे आप बर्मा आए हैं तब से बराबर आपका बोझा मैं किसी न किसी रूप में ढो रही हूँ। पिताजी के साथ झगड़ा आपका हुआ पर जुर्माना अदा मैंने किया। घर पर पहरे के लिए आप छोड़ गये तिवारी को वह बीमार

पड़ा उसकी सेवा मुझे करनी पड़ी। बुलाकर आपको डाक्टरजी लाये, और तमाम टंटे मुझे करने पड़ रहे हैं। अब डर यह हो रहा है कि कहीं सारी जिन्दगी आपका बोझ मुझे न उठाना पड़े। खैर अब रात अधिक हो चुकी है अब आप सोयेंगे कहाँ यह कहिये?

अपूर्व ने कहा—'वाह इसको मैं क्या जानूँ? —भारती बोली—'होटल में डाक्टर बाबू के कमरे में आपके सोने की व्यवस्था हो जायगी।

अपूर्व तैयार तो हो गया पर उसने जरा संकोच के साथ कहा—'ठीक है, लेकिन आपका तकिया और बिस्तरे की चादर मैं ले जाऊँगा मर जाने पर भी मैं दूसरे के बिस्तरे पर नहीं सो सकता।

भारती का मलिन गंभीर चेहरा स्निग्ध हँसी से भर गया बोली—'यह भी तो दूसरे का ही बिस्तरा है अपूर्व बाबू! इससे घृणा नहीं होती बड़े आश्चर्य की बात है! जो कुछ भी हो आप इसी खाट पर सो सकते हैं'—यह बात उसने इच्छापूर्वक ही नहीं कही कि अभी कुछ देर पहले उसके दिये हुए वस्त्र को पहनकर भगवान की उपासना करने में भी उसे घृणा हो रही थी।

अपूर्व अत्यधिक संकुचित होकर बोला—'आप कहाँ सोयेंगी? आपको तो कष्ट होगा?

भारती ने उँगली से इशारा करते हुए कहा—'उस छोटे से कमरे के एक कोने में जो चाहे सो बिछाकर मैं मजे में सो जाऊँगी। तिवारी के समय में कितनी रातें हाथ को तकिया बनाकर मैंने काट दीं यह आप भूल गये?

अपूर्व कुछ देर तक सोचकर बोला—'उस समय तिवारी कठिन रोग में था पर इस समय लोग क्या समझेंगे?

—'कुछ भी नहीं क्योंकि यहाँ लोगों को दूसरों की बात लेकर व्यर्थ ही मन को कष्ट देने की आदत नहीं है।

अपूर्व बोला—'नीचे के बेंच पर भी तो मैं मजे में सो सकता हूँ?

भारती बोली—'हाँ पर ऐसा मैं करने न दूँगी क्योंकि उसकी जरूरत ही न रहेगी मैं आपके लिए अस्पृश्या हूँ आपसे मेरी कोई क्षति हो सकती

है, ऐसा मैं नहीं समझती।

अपूर्व ने आवेग के साथ कहा—'यह भय मुझमें भी नहीं है पर आप जब अपने को अस्पृश्या कहती हैं तो दुःख होता है क्योंकि इसमें घृणा है पर मैं आपसे घृणा तो करता नहीं। हमारी जाति अलग है आपका छुआ नहीं खाता पर उसका कारण घृणा नहीं है।' यहीं पर बातचीत खत्म हो गई और भारती को कम्बल रैक से खींचकर उस छोटे कमरे की ओर बढ़ गई।

सवेरे भारती की पुकार से अपूर्व की नींद खुली। वह बोली—'आपको दफ्तर जाना है न? जल्दी तैयार हो जाइए। कल अतिथि सत्कार में त्रुटि रह गई थी सो आज पूरी करती हूँ।'

अपूर्व ने हँसते हुए कहा—'डाक्टर बाबू कहाँ हैं? वे तो शायद अभी तक पड़े-पड़े सोते होंगे?'

इस पर भारती उस हँसी में भाग न लेकर बोली—'अभी तो वे अस्पताल से लौटे। सोने न सोने का उनके निकट कोई मूल्य नहीं है।'

अपूर्व ने इस पर आश्चर्य प्रकट करते हुए कहा—'इससे वे बीमार नहीं पड़ते?'

भारती ने कहा—'कभी देखा तो नहीं। उनके पास से दुःख तथा असुख दोनों हार मानकर भाग गए हैं। मनुष्य के साथ उनकी तुलना नहीं होती।'

जाने के पहले अपूर्व एक बार डाक्टर से मिलने गया। देखा तो डाक्टर एक ऐसे कमरे में हैं जो बहुत ही छोटा है। महीने में केवल दस आने किराये का कमरा था। सुमित्रा भी वहीं थी पर अस्पष्ट रोशनी के कारण पहले-पहल वह पहचानने में नहीं आई। डाक्टर पलथी मारे हुए एक [illegible] मेज पर थे। सुमित्रा के स्वर से ज्ञात हुआ कि वह कुछ विचलित थी पर डाक्टर का स्वर वैसा ही दृढ़ था। डाक्टर बोले—'अब मैं चलता हूँ, यह नाम रहे, आप देखिएगा।'

अपूर्व पूछ बैठा—'आप कहाँ जा रहे हैं?' तो इसके उत्तर में डाक्टर ने बताया कि वे भामो और उसके उत्तर में जा रहे हैं। इस पर सुमित्रा

एकाएक बोल पड़ी—'तुम जानते हो तुम्हें यहाँ बहुत-से लोग पहचानते हैं यहाँ तुम किसी की आँख में धूल नहीं झोंक सकते अब कुछ दिन उस तरफ नहीं गये तो क्या ?'—अन्त की ओर सुमित्रा का स्वर जाने कैसा मालूम हुआ। डाक्टर ने केवल मुस्कराते हुए कहा—'तुम तो जानती हो न जाऊँ तो सारा खेल ही बिगड़ जाय। सुमित्रा आगे न बोली। डाक्टर ने कहा—'अब समय हो रहा है मैं चलता हूँ। अपूर्व का तालू सूख रहा था क्योंकि डाक्टर जिस विपत्ति का सामना कर रहा है वह उसे सोच रहा था। उसने झट से पैर छूकर डाक्टर को प्रणाम किया डाक्टर ने उसके सिर पर हाथ रख दिया फिर जल्दी से निकल गया। अपूर्व जब उठकर खड़ा हुआ तो उसने देखा कि वह भारती के बगल में अकेला खड़ा है और पीछे उस टूटे कमरे के बन्द किवाड़ों की आड़ में कर्तव्य-कठिन अमोघ-बुद्धि-शालिनी पथ के दावेदार की मयमेपहीना तेजस्विनी अध्यक्षा क्या कर रही है यह पता नहीं चला।

कुछ दिनों के बाद सुमित्रा के नेतृत्व में क्वार-मैदान में जो सभा बुलाई गई उसमें अधिक भीड़ नहीं हुई और जिन लोगों ने व्याख्या देने का वादा किया था उनमें से बहुतेरे आ नहीं पाये। सुमित्रा की वक्तृता ही एक उल्लेख योग्य बात रही और रोशनी का बन्दोबस्त न रहने के कारण इस सभा को भी जल्दी खतम कर देना पड़ा। फिर भी इस प्रथम प्रयास को व्यर्थ नहीं कहा जा सकता। अपूर्व जैसे अनाड़ी को भी अनुरोध के कारण खड़े होकर दो-चार शब्द कहने पड़े। फिर एक दिन अपूर्व को एक सभा में वक्तृता के लिए बुलाया गया। अपूर्व ने पहुँचकर देखा कि सभा में बड़ी भीड़ है। विपुल जनता के बीच में मंच बना हुआ था। मंच के सामने खड़े होकर कोई पंजाबी बड़े जोर से बोल रहा था। शायद वह कोई बरखास्त किया हुआ मिस्त्री था और कोई था। वक्ता जोरों के साथ बोलते ही गये। लोग भी जोश में हो रहे थे इतने में कोई भयानक विघ्न हुआ। बात यह थी कोई बीस-पचीस गोरा पुलिस घुड़सवार लोगों की बिना परवाह किये ही भीड़ के अन्दर घुस पड़े थे। बात की बात में लोग

तितर-बितर हो गये और वक्तृता बन्द हो गई।

गोरा सरदार मंच के पास आकर बोला—'मीटिंग बन्द करो।

सुमित्रा बीमारी से हाल ही में उठी थी पर उसने तड़पकर कहा—क्यों?

गोरे ने कहा—'हुक्म। सुमित्रा बोली—'किसका हुक्म? गोरा बोला—'सरकार का हुक्म। सुमित्रा बोली—'ऐसा क्यों? गोरे ने कहा—'ऐसा इसलिये कि मजदूरों को हड़ताल करने के लिए भड़काना निषिद्ध है।

सुमित्रा बोली—'व्यर्थ में किसी को भड़काना हमारा उद्देश्य नहीं है, पर यूरोप की तरह संगठित होने के लिए उन्हें समझाना हमारा उद्देश्य है।

गोरे ने कहा—'संगठित करना? मालिक के विरुद्ध! इससे तो शान्ति भंग हो सकती है, यह बिलकुल ही गैरकानूनी है। सुमित्रा बोली—'शान्तिभंग हो क्यों नहीं सकती जिस देश में सरकार का अर्थ ही अंग्रेज व्यापारी है और समस्त देश के रक्त-शोषण के लिए ही जहाँ यह विराट यन्त्र खड़ा है' । वह अपना वक्तव्य समाप्त भी नहीं कर पाई कि गोरे की आँखें लाल हो गईं और वह तड़पकर बोला—'फिर यह बात कही कि मैंने गिरफ्तार किया। सुमित्रा के आचरण से जरा भी चंचलता नहीं व्यक्त हुई। सुमित्रा को आज ज्वर था कई दिन से संचय हो रहा था। फिर भी वह तैयार थी। गोरे ने उसकी दृढ़ता से सहमकर घड़ी देखते हुए कहा—'दस मिनट समय देता हूँ इस बीच अपने लोगों को समझा कर शान्त कर दीजिये। सुमित्रा स्वयं बोलने में असमर्थ थी। उसने चिल्लाकर अपूर्व बाबू से कहा—'अपूर्व बाबू चिल्लाकर सबसे कह दीजिए उपद्रव हुए बगैर इसका न्याय नहीं है। मालिकों ने हमारा जो अपमान किया है यदि वे मनुष्य हों तो इसका बदला लें। आगे वह कुछ बोल न सकी। अध्यक्षा का आदेश सुनकर अपूर्व का चेहरा फक पड़ गया। विह्वल नेत्रों से सुमित्रा की ओर देखकर वह बोल पड़ा—'क्या इस

तरह भड़काना गैरकानूनी न होगा ?' सुमित्रा विस्मित मृदुकण्ठ से बोली—'क्या पिस्तौल के जोर से सभा को तोड़ देना ही कानूनी है ? अर्थ का रक्तपात मैं नहीं चाहती फिर भी सारी ताकत से इस बात को समझा दीजिये कि इस अपमान को वे न भूलें। अपूर्व ने शुष्क कण्ठ से कहा—'मैं तो अच्छी हिन्दी जानता नहीं। सुमित्रा को बोलना नहीं पड़ा फिर भी उसने कहा—'जो कुछ आती है उसी में दो-चार शब्द कह दीजिये। डरता डरता अपूर्व खड़ा हो गया पर उसके मुँह से बात ही नहीं निकल रही थी। तब रामदास तलवलकर उठकर खड़ा हो गया। उसने पुलिस के घुड़सवारों की ओर उँगली से दिखाते हुए डरी हुई जनता से कहा—'इन कुत्तों को जिन्होंने हमारे, तुम्हारे, सब के ऊपर छोड़ दिया है, वे तुम्हारे ही कारखानों के मालिक हैं। वे किसी भी प्रकार नहीं चाहते कि तुम्हारी दुःख-दुर्दशा की ओर कोई तुम्हारी आँख खोल दे। फिर भी तुम उन्हीं की तरह आदमी हो, वैसे ही पेट भरकर खाने का तथा दिल खोलकर चैन करने का जन्मगत अधिकार तुमने भी ईश्वर के पास से पाया है इस बात को वे सारी शक्ति तथा बदमाशी का उपयोग करके तुमसे छिपाना चाहते हैं। क्या इस सत्य को तुम नहीं समझोगे ? यह केवल शोषकों के विरुद्ध शोषितों की आत्मरक्षा की लड़ाई है। इसमें न देश है न जाति है, न धर्म है, न मतवाद है इसमें केवल दो ही पक्ष हैं एक तरफ धनोन्मत्त मालिक है और दूसरी तरफ उसके द्वारा प्रवंचित भूखा मजदूर है।' इत्यादि।

गोरे ने जितनी हिन्दी सीखी थी उससे वह समझ न पाया कि क्या कहा जा रहा है पर जनता के मुँह पर उत्तेजना के लक्षण देखकर वह स्वयं भी उत्तेजित हो गया। वक्तृता चलती रही इतने में एक पंजाबी ने गोरे के कान में कुछ कहा जिससे उसका चेहरा तमतमा गया। वह गरज कर बोला—'डाइमप यह सब न चलेगा इससे शान्तिभंग होगा। अपूर्व चौंक उठा वह रामदास के कुर्ते का किनारा पकड़कर खींचने लगा। बोला—'याद रखो कि इस मित्रहीन देश में तुम्हारी स्त्री तथा नन्ही

भी हों, ये तलवरकर के पैर की धूल के योग्य नहीं हैं। मैं इसे साफ कहता हूँ। ये उसकी वस्तुस्थिति तथा निर्भीकता पर मन ही मन जलते हैं इसलिए तुम्हें यहाँ आने न दिया और मुझे चालाकी से रोक लिया। भारती ने कहा—'आपको मैं गलत समझी थी। भय से जिस व्यक्ति को हिताहित ज्ञान नहीं रहता उस पागल का यहाँ कोई स्थान नहीं है। आइए, किसी बहाने से अब मेरे यहाँ आने की चेष्टा न कीजिएगा।' अपूर्व के इस पर चुपचाप उठते ही डाक्टर ने उसका हाथ पकड़ लिया और कहा—'थोड़ी देर ठहरिए, स्टेशन जाने के रास्ते में मैं आपको घर पहुँचा दूँगा।' फिर डाक्टर ने लिखी हुई चिट्ठियों को भारती के हाथ में देते हुए, हँसकर कहा—'एक सुमित्रा की, एक तुम्हारी, एक पथ के दावेदारों की है। मेरा उपदेश, आदेश सब इसी में पाओगी।' चिट्ठियों को मुट्ठी में लेकर भारती बोली—'कितने दिन के लिए चल दिये?' डाक्टर ने मुस्कराकर कहा—'देवा न जानन्ति'। इसी समय एक घोड़ागाड़ी आकर किवाड़ के पास ठहरी। एक के पहनावे में ऊपर से नीचे तक सूट था। डाक्टर के अलावा उसे कोई नहीं जानता था और दूसरा व्यक्ति स्वयं तलवरकर था। सूटवाले सज्जन ने कहा—'जमानत में इतनी देर हुई, मुकदमा दायर न चले।' रामदास ने डाक्टर से कहा—'उस दिन स्टेशन पर मैंने आपको पहचान लिया था। पूना की जेल में मेरे जाने के बाद ही आप चले गए। नीलकान्त जोशी को फाँसी हुई न आपको भी फाँसी ही होती यदि आप दीवार न फाँद जाते।' डाक्टर ने कहा—'हाँ बात तो ऐसी ही है।' अपूर्व ओठ दबाकर अपने को सँभालने की चेष्टा कर रहा था। वह यह सुनकर जल्दी से बाहर निकल गया।

उस सारी रात भारती को नींद नहीं आई थी। वह चाहती थी जल्दी सो जाय। सन्ध्या समय वह इसी उद्देश्य से ताला जल्दी लगा लेने में व्यस्त थी, इतने में सुमित्रा का एक पत्र मिला कि जिस अवस्था में भी हो चली आओ। उसने पत्र-वाहक से पूछा—'क्या बात है हीरासिंह?' यह हीरासिंह ...दावेदार का सदस्य न होने पर भी बड़ा विश्वासी था। पंजाबी

सिक्ख था, हांगकांग की पुलिस में रह चुका था। उसने धीरे से कहा—'चार-पांच मील पर एक जरूरी सभा हो रही है जाना ही पड़ेगा।' रात दस बजे एक खंडहर में आकर सुमित्रा की गाड़ी रुकी। हीरा का हाथ पकड़कर अंधेरे में टटोलते-टटोलते वह सभास्थल में पहुंचकर डाक्टर के बगल में धम से बैठ गई। हीरासिंह कमरे के बाहर ही रह गया। अज्ञात भय से भारती का दिल धड़क रहा था। भारती ने देखा जो लोग बैठे हैं उनमें से चार-पांच को वह कतई नहीं पहचानती। परिचितों में सुमित्रा तलवरकर तथा वह सूटधारी व्यक्ति कृष्ण ऐयर थे। पहले ही एक भीषणाकृति व्यक्ति के ऊपर आंख पड़ती थी उसके पहनने में गेरुआ रंग की लुंगी थी और सिर पर बड़ी-सी पगड़ी। मुंह हंडिया की तरह गोल और देह मंदार की तरह स्थूल मांसल और कर्कश थी। रंग तांबे की तरह था। यह व्यक्ति मंगोल जाति का है यह देखते ही साफ हो जाता था। इस बीभत्स व्यक्ति को भारती ताककर देख ही न सकी। सुमित्रा बोली—'बोथा कम्पनी ने आज रामदास को बर्खास्त कर दिया अपूर्व की भी यही दशा होती यदि वह पुलिस के निकट हम लोगों की सारी बातें सुनकर बता न देता।' वह भीषण व्यक्ति चिल्लाकर कह उठा—'शेम!' रामदास ने कहा—'सव्यसाची ही डाक्टर हैं यह खबर वे जानते हैं होटल में कमरे में उन्हें पकड़ा जा सकता है यह भी अपूर्व बता चुका है। यहां तक कि मुझे इससे पहले राजनैतिक अपराध में दो साल की सजा हुई थी, यह भी बता दिया।'

सुमित्रा बोली—'यदि डाक्टर पकड़े जायं तो उन्हें या तो फांसी होगी या काला-पानी, सज्जनो आप इसकी क्या सजा तजवीज करते हैं?'

सब ने एक स्वर से कहा—'शेम!' सुमित्रा ने पूछा 'भारती तुम्हें कुछ कहना है?' भारती ने कुछ कहा नहीं केवल सिर हिलाकर बता दिया कि उसे कुछ नहीं कहना है।

उस भयंकर आदमी ने जब बात की उच्चारण सुनकर मालूम हुआ कि वह चटगांव की तरफ का मग है। बोला—'एक्जिक्यूशन का भार मुझ

अपराधी और सुमित्रा की आँखों में छोटी हो गई है। अपूर्व ने कहा—'इतनी उम्र में इतनी बड़ी नौकरी कितनों को नसीब होती है पर मैं सुखी नहीं। और देश में वापस जाकर कुछ कह दूँगा। बचपन से हाथ टूट गया है, पता नहीं कैसे अच्छा होगा कभी होगा भी या नहीं', इत्यादि। भारती को आश्चर्य हो रहा था कि अपने परम मित्र तलवरकर के प्रति इस के प्रति और विशेषकर डाक्टर के प्रति उसने कितना बड़ा अपराध किया था इसकी उसे मानो चिन्ता ही नहीं थी नौकरी गई, हाथ टूट गया बस यही उसका सारा रोना था। भारती सोचती रही। प्रभात की प्रथम रश्मि के साथ ही वह उस जगह से भाग निकली जैसे शराबी का नशा टूटते ही जब वह देखता है कि किसी गन्दे स्थान में पड़ा है तो वहाँ से भाग निकलता है।

अगले दिन डाक्टर और भारती में बात हो रही थी। डाक्टर कह रहे थे—'देश का धर्म नर नारी पहचान नहीं है। एक अपूर्व से ही तुम को जीवन से घृणा हो गयी वैराग्य लेना चाहती हो और देश में एकाध अपूर्व नहीं सैकड़ों अपूर्व हैं। अरे पराधीन देश का सबसे बड़ा अभिशाप तो कृतघ्नता और विश्वासघात है। श्रद्धा नहीं सहानुभूति नहीं कोई पास न बुलायेगा कोई सहायता न करेगा विषधर साँप समझकर लोग तुमसे दूर हट जायेंगे। देशप्रेम के लिए हमें मिलनेवाला यही पुरस्कार है इससे अधिक दावा करना चाहो तो परलोक में करना। इतनी बड़ी परीक्षा तुम क्योंकर देने लगी? बल्कि मेरा आशीर्वाद है अपूर्व को लेकर तुम सुखी होओ। मैं जानता हूँ एक न एक दिन वह अपनी सारी दुविधा और सब संस्कारों को हटाकर तुम्हारा मूल्य समझ जायगा। भारती की दोनों आँखें आँसू से भर गई, वह पूछ बैठी—'तुम हमारा विश्वास नहीं कर पाते हो तभी हमें समिति से अलग कर देना चाहते हो दादा। डाक्टर ने हँसकर कहा—'क्या कोई ऐसी लक्ष्मी की माया काट सकता है? पर तुमने तो देखा इसमें कितना धोखा छिपी हिंसा तथा कितना भयंकर खून संलग्न है। मालूम होता है इन सबके लिए तुम नहीं हो। भारती की

आँखों में फिर आँसू आ गये, वह बोली—'तुम भी अब इनमें न रहो।' डाक्टर हहराकर हँसते हुए बोले—'अब की तुमने बड़ी बेवकूफी की बात कही भारती।' भारती बोली—'यह तो है पर मे तो सभी बड़े निर्दयी हैं।' इस प्रकार बातचीत करते हुए काफी समय हो गया तो डाक्टर चले गये।

अपूर्व भारत चला गया। जाते समय उसने भारती को खबर भी नहीं दी। भारती दुखी थी। डाक्टर एक बार और उसे तसल्ली देने के लिए पहुँचे। सुमित्रा पर बात चल पड़ी। भारती पूछ बैठी—'सुमित्रा तुम्हारी कौन है उसे तुम कहाँ से ले आये?' —प्रश्न सुनकर डाक्टर चुप हो रहे, फिर मृदु हँसी हँसकर बोले—'वह स्वयं इसका उत्तर दे तभी मालूम हो सकता है कि वह कौन है, पर अब मैं उसे करीब-करीब पहचानता नहीं था उस समय मैंने एक मौके पर उसे अपनी स्त्री बताकर परिचय दिया था। सुमित्रा नाम मेरा ही दिया हुआ है। सुना है उसकी माँ यहूदिन थी पर बाप बङ्गाली ब्राह्मण था। वे पहले सर्कस पार्टी के साथ जावा गये थे फिर सुरबाया के रेल स्टेशन में नौकर थे। जब तक वे जीवित थे सुमित्रा मिशनरियों के स्कूल में शिक्षा प्राप्त करती थी। उनके मरने के बाद पाँच-छः वर्ष का इतिहास सुनने की तुम्हें जरूरत नहीं! मैं भी सब नहीं जानता, केवल इतना ही जानता हूँ कि माँ दो मामा, लड़की एक चीनी तथा दो मद्रासी मुसलमान मिलकर जावा में चोरी से अफीम गाँजा मँगाने का काम करते थे अक्सर सुरबाया और बैटेविया के रास्ते में सुमित्रा को देखता था पर तब यह नहीं जानता था कि वह किस सूत्र में घूमती है। अत्यन्त सुन्दर होने के कारण उसको मैंने लक्ष्य किया था। एक दिन अकस्मात् उस स्टेशन के वेटिङ्ग रूम में परिचय हो गया। बङ्गाली की लड़की है यह मुझे तभी ज्ञात हुआ। पर तब भी कुछ घनिष्ठता नहीं हुई। एक दिन बेंकुलाम शहर की जेटी में अकस्मात् भेंट हो गई। एक बक्स अफीम चारों तरफ पुलिस और बीच में सुमित्रा थी। मुझे देखकर वह भर-भर रोने लगी यह सन्देह नहीं रहा कि मुझे ही उसे

यदि हम कभी अपूर्व को पा जायें तो मैं उसका...' डाक्टर ने वाक्य को सम्पूर्ण करते हुए कहा—'उसे खतम करोगे न ? क्यों सुमित्रा तुम लोग सब इससे सहमत हो ?' सुमित्रा ने आँखें नीची कर लीं। सब चुप रहे। डाक्टर ने कहा—'इसका अर्थ है इसके पहले आलोचना भी हो चुकी है ? याद होगा एक मौके पर यह तय हुआ था कि मेरे पीछे मेरे किसी काम की आलोचना नहीं चलेगी। दूसरा यह कि मेरे विरुद्ध विद्रोह की सृष्टि करना महान् अपराध है। इन जुर्मों की सजा मौत है।'—डाक्टर ने झट पिस्तौल तान ली। सुमित्रा के होंठ काँप रहे थे, बोली—'आपस में यह क्या ?'—तलवलकर ने मौन भंग करते हुए कहा—'अपूर्व जीवित है इससे मैं दुखी हूँ पर आपने इसमें अन्याय किया।' कृष्ण ऐयर ने कन्धा हिलाकर इस बात का समर्थन किया। ब्रजेन्द्र ने इस सहानुभूति से ताकत पाकर कहा—'जब एक का प्राण जाना ही है तो मेरा ही जाय। मैं तैयार हूँ।' सुमित्रा बोली—'एक ट्रेटर के बदले अब आपको एक ट्रायड कामरेड की जान की जरूरत है डाक्टर, तो मैं भी प्राण दे सकती हूँ।' डाक्टर इससे विचलित नहीं हुए, बोले—'तुम्हें मैं व्यर्थ का भय नहीं दिखाता ब्रजेन्द्र ! सुमित्रा तुम्हारे दल में रहो तो रहने दो 'आई विश यू गुड लक' पर मेरा रास्ता तुम छोड़ दो।'—इसके बाद डाक्टर भारती का हाथ पकड़कर उठ गये। जाते समय कवि से दो-चार बात करते गये। रास्ते में नाव पर भारती बोली—'हमें तो मजदूरों की भलाई, शिक्षा आदि से मतलब है इस रक्तपात से क्या वास्ता ?' डाक्टर बोले—'केवल कुछ कुली मजदूरों की भलाई के लिए मैंने 'पथ के दावेदारों' की सृष्टि नहीं की। इसका लक्ष्य बहुत बड़ा है। इस लक्ष्य के सामने शायद इनको भेड़ बकरी की तरह बलिदान करना पड़ेगा। विप्लव शान्ति नहीं है। महा मानव के मुक्ति-सागर में मनुष्य की रक्तधारा लहरें मारकर दौड़ चलेगी यही मेरा स्वप्न है। नहीं तो इतने युग का पर्वत-प्रमाण पाप धुलेगा कैसे ? अशान्ति पैदा करने का अर्थ अकल्याण पैदा करना नहीं है। शान्ति ! शान्ति ! शान्ति ! सुनते-सुनते कान परेशान हो गये। इस मिथ्यामन्त्र के

यदि वे ही लोग हैं जो दूसरों का शोषण कर हवेलियों में रहते हैं। नहीं भारती। यह सभ्यता जितनी भी पुरानी तथा पवित्र हो उसे बहा देना ही पड़ेगा। हड़ताल जरूर एक तरीका है पर निरुपद्रव हड़ताल का कोई अर्थ नहीं होता। उसके साथ उपद्रव तो भया ही है। कोई भी हड़ताल तब तक नहीं होगी जब तक उसके पीछे बाहुबल नहीं है। अन्तिम परीक्षा उसी में होती है। भारती ने कहा—'तो क्या मैं किसी काम नहीं आ सकती ? डाक्टर ने सोचकर कहा—'क्यों नहीं भारतों की रोगग्रस्तों की बाढ़ पीड़ितों की सेवा को उपलक्ष्य कर संस्थाएँ चल रही हैं पर इन सब कामों को मैं बच्चों का खेल समझता हूँ। भारत की स्वतन्त्रता ही मेरा एकमात्र लक्ष्य है मुझे तुम और न बाँधो भारती।

इसके कुछ दिन बाद कवि और नवतारा की शादी हो रही थी। कवि की यह सानुरोध प्रार्थना थी कि किसी समय डाक्टर भारती के साथ आकर आशीर्वाद दे जायें। डाक्टर और भारती रवाना हुए पर भारती को कोई उत्साह न था बोली—'कितना गंदा मामला है? डाक्टर कुछ देर तक चुप रहे फिर बोले—'शशी और नवतारा की शादी शायद बहुत से लोगों के संस्कार को बाधा पहुँचाये पर यह दोष शशी का नहीं है। यह दोष उनका है जो कानून बनाते हैं। मेरा एकमात्र क्षोभ यह है कि शशी ने नवतारा को प्यार किया।

फिर शान्ति पर बात चीत चली डाक्टर बोले—'शान्ति माने मार-काट नहीं है शान्ति माने अत्यन्त द्रुत आमूल परिवर्तन है। शत्रु का सैन्य बल तथा विराट युद्धोपकरण देखकर हम घबड़ाते नहीं। आज जो उनका आदमी है कल वह हमारा आदमी भी तो हो सकता है। नीलकान्त शत्रु को मित्र बनाने के लिए ही छावनी में गया था। हाय नीलकान्त! कौन उसका नाम जानता है? आग को एक चिनगारी पूरे मुहल्ले को इसलिए जला सकती है कि वह जलती जाती है और साथ ही अपना ईंधन आप ही संग्रह करती जाती है। नहीं मैं अग्निकांड से घबड़ाता नहीं। क्या प्रायश्चित्त केवल मुँह की बात है? पूर्वपुरुषों के युगान्त-संचित पाप का

परिमेय स्तूप आखिर खतम कैसे होगा ? करुणा से न्याय का क्रम कहीं बढ़कर है भारती ! लज्जाहीन नग्न स्वार्थ और पशुशक्ति ही इस यूरोप की ईसाई सभ्यता का असली स्वरूप है जो हमारे ऊपर लदी है। हाँ सदी-शाह वगरह का किसोर हुआ इतिहास में तो और बहुत कुछ कहा जाता है। एक कृत्रिम इतिहास लड़कों को कोरना पड़ता है और उदरान्न के लिए मास्टरों को इसे पढ़ाना पड़ता है। अन्य राजतन्त्र की यही नीति है। रहा मैं सो मैंने देश की भलाई करने का बीड़ा नहीं बल्कि उसको स्वतंत्र करने का बीड़ा उठाया है। यों जो लोग धनाश्रम विधवाश्रम आदि खोलकर उसकी भलाई कर रहे हैं उनको मैं महान् मानता हूँ। मेरे हृदय की अग्नि तो तभी बुझेगी जब सुनूँगा कि यूरोप की बौनी सभ्यता नीति धर्म समुद्र के अतल गर्भ में डूब गया है। इस विष कुम्भ को लेकर यूरोप जब सौदा करने चला था तो उसको केवल जापान ने पहचाना था तभी तो वह आज यूरोप के समकक्ष हो रहा है

इस तरह बात करते हुए वे कवि के घर पर पहुँचे पर वहाँ नवतारा नहीं थी। कवि ने कहा—'नहीं शादी मेरे साथ नहीं हुई, वह जो अहमद है मौरा-सा भूट साहब की मिल का टाइमकीपर है आज दुपहर को उसी के साथ नवतारा की शादी हुई। सभी पहले से ठीक-ठाक था मुझे नहीं बताया था। —भारती ने डाक्टर को अलग ले जाकर बताया कि अपूर्व लौट आया है। बात-बात में डाक्टर ने भारती से कहा—'अब तुम्हारी नवतारा धर्म पर कविता है उसी की साधना करो, पर मजदूरों का कवि बनने की व्यर्थ चेष्टा न करो। तुम बंगाली मध्यवित्त समाज के कवि थे। फिर इसी प्रकार बातों के सिलसिले में डाक्टर ने कहा—'पुराना माने ही पवित्र नहीं है भारती। मनुष्य सत्तर साल का हो चुका है इसी लिए वह दस वर्ष के शिशु से पवित्र नहीं हो जाता। × × × जिस संस्कार के मोह से अपूर्व तुम्हें अलग हटा सकता है क्या वह प्राचीन होने पर भी पवित्र हो सकता है ? तुम्हारा ईसाई धर्म भी आज उसी प्रकार असत्य हो गया है इसका प्राचीन मोह तुम्हें त्यागना ही पड़ेगा यद्यपि सभी धर्म

मिथ्या है, प्राचीन कुसंस्कार है। विश्व-मानवता का इतना बड़ा शत्रु और कोई नहीं है।

भारती का चेहरा फक पड़ गया, उसने कहा—'तुम्हारा पथ और हमारा पथ आज से अलग है, मेरा स्नेह का पथ है, करुणा का पथ है, धर्म-विश्वास का पथ है, यही पथ मेरे लिए श्रेय है, यही पथ मेरे लिए सत्य है।

भारती जब घर लौट गई तो उसको डाक्टर की यह बात बार-बार याद आने लगी कि इस परिवर्तनशील जगत में सत्योपलब्धि नामक कोई वस्तु नहीं है, उसका जन्म है, मृत्यु है—युग-युग में काल-काल में मानव के प्रयोजन में उसे नया होकर आना पड़ता है। अतीत के सत्य को वर्तमान में सत्य समझना पड़ेगा यह भ्रान्त विश्वास है, यह धारणा कुसंस्कार है। फिर सव्यसाची ने यह भी कहा था—'पराधीन देश में शासक और शासित की नैतिक बुद्धि जब एक हो जाती है तो उससे बढ़कर देश का और दुर्भाग्य नहीं है, भारती! उस दिन इसका तात्पर्य समझ में नहीं आया था, आज जैसे वह अर्थ भारती के निकट परिस्फुट हो गया।

सवेरे ही होटल के सरकार ठाकुर ने आकर खबर दी कि अपूर्व बाबू कल रात से ही भारती को खोज रहे हैं। भारती का मुँह एक मुहूर्त के लिए सूख गया, बोली 'उनको मेरी क्या जरूरत पड़ी?' सरकार ने कहा—शायद अपनी माँ की बीमारी के सम्बन्ध में कुछ कहें। भारती ने कहा—मुझे फुर्सत नहीं। टालने को तो टाल दिया, पर वह बराबर यह सोचती रही कि अपूर्व क्यों मिलना चाहता है। शाम को वही सामान सहित आ धमके। भारती ने उनको घर में नहीं लिया, पर हँसकर होटल के डाक्टर वाले कमरे में ठहरा दिया।

अकस्मात् भारती को यह खबर मिली कि अपूर्व की माँ जो बर्मा आई थीं मर गई। फिर भारती से न रहा गया। वह जिस धर्मशाला में अपूर्व टिका था वहाँ पहुँची। देखा तो अभी-अभी कमरा पानी से धुला है। अपूर्व बैठा है, उसके मुँह पर सद्य मातृवियोग की छाया है। भारती

की आँखों में आँसू आ गये। भारती ने कहा—'समय हुआ था, माँ स्वर्ग में चली गईं, पर तुम्हें ऐसे रहने न दूँगी, चलो हमारे यहाँ।' वह फिर रोने लगी। बोली—'नहीं मैं नहीं सुनती, शनिवार के जहाज से देश लौट जाना, पर तब तक तो मेरी आँखों के सामने रहो, नहीं तो मैं जहर खाकर मरूँगी।' अपूर्व राजी हो गया।

फिर एक दिन उसी मकान में जहाँ अपूर्व का मुकदमा हुआ था पथ के दावेदारों की सभा हो रही थी। तलवलकर अत्यन्त घायल हालत में गिरफ्तार हुआ था, सम्भावना यह थी कि यदि की जाय तो लम्बी सजा होगी। भारती ने पूछा—'उसके असहाय परिवार का क्या होगा?' डाक्टर ने कहा—'क्या होगा? अकस्मात् मनुष्य मर जाने पर उसके परिवार का जो होता वही उनका होगा। विदेशी कानून के अनुसार अपनी जन्मभूमि में भी हमारा कोई हक नहीं है। जंगली पशुओं की तरह हम मुख ही जान लिए मारे-मारे फिरते हैं। गृहस्थ का दुःखमोचन कर सकें इसकी कोई सामर्थ्य नहीं है। पर तलवलकर शिकायत करनेवाला जीव नहीं है। क्रान्तिकारी की यही तो परम शिक्षा है। मैं अनर्थक कष्टभोग या रक्तपात में विश्वास नहीं करता, पर यह भी नहीं मानता कि दूर से आकर जिन्होंने हमारी जन्मभूमि पर अधिकार जमा लिया, भूख का अन्न, तृष्णा का वारि चुरा लिया, उन्हीं की हत्या करने का मुझे अधिकार है मेरे लिए और कुछ भी नहीं रहा। यह धर्मबुद्धि भूल रही। यूरोप की ईसाई सभ्यता से बढ़कर, कहते हैं कोई सभ्यता नहीं है, पर इससे बढ़कर झूठ भी कुछ नहीं है। बाक्सर विद्रोह में इसी सुसभ्य यूरोपीय सेना ने जो अत्याचार किया था उसके सामने चंगेज खाँ फीका पड़ जाता है। सूर्य के निकट दीपक की तरह वह तुच्छ है। उद्देश्य-सिद्धि के लिए उनके लिए तो सब जायज है, नीति की बाधा केवल हमारे ही लिए है, क्यों?' बात बढ़ गई पर बीच में सुमित्रा ने टोक दिया। ऊपर से कहा—'सभा का कार्यारंभ होना चाहिये।' डाक्टर ने सुमित्रा से पूछा—'तो तुमने पथ के दावेदारों का संसर्ग छोड़ दिया?' सुमित्रा बोली—'हाँ मैं जावा और

जाऊँगी। इतने में डाक्टर के सामने एक तार पेश हुआ जिसमें खबर थी कि कई जगह के बम पुलिस के द्वारा तोड़ लिये गये हैं। डाक्टर का सन्देह ब्रजेन्द्र पर था।

इसके कई दिन बाद की बात है अपूर्व ने तय किया था कि अब गाँव में रहकर गाँववालों की सेवा करेगा। डाक्टर ने इस पर कोई उत्साह नहीं दिखलाया। उन्होंने कहा—'किसान की भलाई करना चाहते हो करो पर यह न समझो कि इस प्रकार मेरी सहायता कर रहे हो।' इस पर भारती बोली—'गाँव के प्रति तुम्हारी सहानुभूति कुछ कम है तुम्हारी दोनों आँखें केवल शहर के कुली-मजदूरों पर हैं। तुम यहीं इन्हीं के बीच पथ के दावेदार खोलना चाहते थे। डाक्टर ने कहा—'जो भी हो यही मेरा कर्म है। डाक्टर के सामने अब दो काम थे एक अमेरिका क्लब का जो अंश सिंगापुर में है उसे बचाना और ब्रजेन्द्र को खोज निकालना। डाक्टर सिंगापुर के लिए रवाना हो गये। सुमित्रा बोल पड़ी—'तुम्हें तो वहाँ सभी पहचानते हैं। वहाँ न जाओ। भारती तो रो पड़ी बोली—'तुम तो हमें डुबाना चाहते हो। सीढ़ी से नीचे उतरते-उतरते भारती बोली—'जो अंतरंग मित्र थे वे सब छूट गये अब तुम एकदम अकेले हो। डाक्टर ने कहा—बिलकुल नहीं पर अकेले ही शुरू किया था भारती। बाहर धारा की वर्षा हो रही थी फिर भी डाक्टर निकल पड़े। अपूर्व ने कहा—'एक दिन मुझे प्राणदान मिला था यह मैं हमेशा याद रखूँगा' अँधेरे से जवाब आया—'तुच्छ पाना ही आपको याद रहा जिसने दिया उसे आपने याद न रखा। अपूर्व बाबू ने कहा—'इस जीवन में कभी भूलूँगा नहीं यह ऋण मृत्यु तक मैं भूल नहीं सकता। दूर अँधेरे से प्रत्युत्तर आया—'यही हो प्रार्थना करता हूँ। वास्तविक दाता को तुम एक दिन पहचान सको अपूर्व बाबू उसी दिन सव्यसाची के ऋण से मुक्त होगे' बात खतम न हो पाई। अस्फुट स्वर वायु में विलीन हो गया। सब ने हाथ उठाकर इस विलीयमान 'पथ के दावेदार' को नमस्कार किया। भारती उसी प्रकार पाषाण मूर्ति की तरह अंधकार में ताकती

की आँखों में आँसू आ गये। भारती ने कहा—'समय हुआ था माँ स्वर्ग में चली गई पर तुम्हें ऐसे रहने न दूँगी, चलो हमारे यहाँ।' वह फिर रोने लगी। बोली—'नहीं मैं नहीं सुनती शनिवार के जहाज से देश लौट जाना पर तब तक तो मेरी आँखों के सामने रहो नहीं तो मैं जहर खाकर मरूँगी।' अपूर्व राजी हो गया।

फिर एक दिन उसी मकान में जहाँ अपूर्व का मुकदमा हुआ था पथ के दावेदारों की सभा हो रही थी। तलवरकर अत्यन्त घायल हालत में गिरफ्तार हुआ था संभावना यह थी कि यदि बच जाय तो लम्बी सजा होगी। भारती ने पूछा—'उसके असहाय परिवार का क्या होगा?' डाक्टर ने कहा—'क्या होगा? अकस्मात् मनुष्य मर जाने पर उसके परिवार का जो होगा वही उसका होगा। विदेशी कानून के अनुसार अपनी जन्मभूमि में भी हमारा कोई हक नहीं है। जंगली पशुओं की तरह हम खुद ही जान लिये मारे-मारे फिरते हैं। गृहस्थ का दुखमोचन कर सकें इसकी कोई सामर्थ्य नहीं है। पर तलवरकर शिकायत करनेवाला जीव नहीं है। क्रांतिकारी की यही तो परम शिक्षा है। मैं अनर्थक कष्टभोग या रक्तपात में विश्वास नहीं करता पर यह भी नहीं मानता कि दूर से आकर जिन्होंने हमारी जन्मभूमि पर अधिकार जमा लिया भूख का अन्न तृष्णा का वारि छीन लिया उन्हीं की हत्या करने का मुझे अधिकार है मेरे लिए और कुछ भी नहीं रहा। यह धर्मबुद्धि खूब रही! यूरोप की ईसाई सभ्यता से बढ़कर कहते हैं कोई सभ्यता नहीं है, पर इससे बढ़कर झूठ भी कुछ नहीं है। बक्सर विद्रोह में इसी सुसभ्य यूरोपीय सत्ता ने जो अत्याचार किया था उसके सामने अंग्रेज तो फीका पड़ जाता है। सूर्य के निकट दीपक की तरह वह तुच्छ है। उद्देश्य-सिद्धि के लिए उनके लिए तो सब जायज है नीति की बाधा केवल हमारे ही लिए है क्यों?' बात बढ़ गई पर बीच में सुमित्रा ने टोक दिया। ऐयर ने कहा—'सभा का कार्यारंभ होना चाहिए।' डाक्टर ने सुमित्रा से पूछा—'तो तुमने पथ के दावेदारों का संसर्ग छोड़ दिया?' सुमित्रा बोली—'हाँ मैं जावा लौट

जाऊँगी। इतने में डाक्टर के सामने एक तार पेश हुआ, जिसमें खबर थी कि कई जगह के दल पुलिस के द्वारा तोड़ दिये गए हैं। डाक्टर का सन्देह ब्रजेन्द्र पर था।

इसके कई दिन बाद की बात है, अपूर्व ने तय किया था कि अब गाँव में रहकर गाँववालों की सेवा करेगा। डाक्टर ने इस पर कोई उत्साह नहीं दिखलाया। उन्होंने कहा—'किसान की भलाई करना चाहते हो करो, पर यह न समझो कि इस प्रकार मेरी सहायता कर रहे हो।' इस पर भारती बोली—'गाँव के प्रति तुम्हारी सहानुभूति कुछ कम है, तुम्हारी दोनों आँखें केवल शहर के कुली-मजदूरों पर हैं। तुम यहीं इन्हीं के बीच पथ के दावेदार खोजना चाहते थे।' डाक्टर ने कहा—'जो भी हो, यही मेरा पथ है।' डाक्टर के सामने अब दो काम थे, एक जामैका क्लब का जो अब सिगापुर में है, उसे बचाना और ब्रजेन्द्र को खोज निकालना। डाक्टर सिगापुर के लिए रवाना हो गए। सुमित्रा बोल पड़ी—'तुम्हें तो वहाँ सभी पहचानते हैं। वहाँ न जाओ।' भारती तो रो पड़ी, बोली—'तुम तो हमें रुलाना चाहते हो।' सीढ़ी से नीचे उतरते उतरते भारती बोली—'जो अंतरंग मित्र थे वे सब छूट गए, अब तुम एकदम अकेले हो।' डाक्टर ने कहा—'बिलकुल नहीं, पर अकेला ही शुरू किया था भारती!' बाहर जोरों की वर्षा हो रही थी, फिर भी डाक्टर निकल पड़े। अपूर्व ने कहा—'एक दिन मुझे प्राणदान मिला था, वह मैं हमेशा याद रखूँगा।' अँधेरे से जवाब आया—'तुच्छ प्राण ही आपको याद रहा, जिसने दिया उसे आपने याद न रखा।' अपूर्व बाबू ने कहा—'इस जीवन में कभी भूलूँगा नहीं, यह ऋण मृत्यु तक मैं चुका नहीं सकता।' दूर अँधेरे से प्रत्युत्तर आया—'यही हो, प्रार्थना करता हूँ। वास्तविक दाता को तुम एक दिन पहचान सको अपूर्व बाबू, उसी दिन सव्यसाची के ऋण से मुक्त होग' बात खतम न हो पाई। अस्फुट स्वर वायु में विलीन हो गया। सब ने हाथ उठाकर इस विलीयमान 'पथ के दावेदार' को नमस्कार किया। भारती उसी प्रकार पाषाण मूर्ति की तरह अंधकार में ताकती

हुई खड़ी रही। किसी की बात उसे सुनाई नहीं पड़ी वह यह भी नहीं जान सकी कि उसी की तरह एक और नारी की दोनों आँखें आँसू से भर उठी थीं।

## संक्षिप्त समालोचना

संक्षेप में यही 'पथेर दाबी' की कहानी है। ४०० से अधिक पृष्ठों पर विस्तृत सामग्री का इतने थोड़े से पृष्ठों में संकलन करने से स्पष्ट है कि उसके बहुत से अच्छे अंश यहाँ नहीं आ सके। फिर भी कहानी के सम्बन्ध में पाठक को एक अच्छा अन्दाज हो गया। डाक्टर या सव्यसाची इस पुस्तक का नायक है। वह लौह स्नायु का व्यक्ति है। वह न तो कभी थकता है न घबड़ाता है न पीछे हटता है इसके लिए उसे जरा भी डर नहीं आता। साथ ही वह भारती के लिए अपूर्व जैसे विश्वासघाती व्यक्ति को (जिसने दल की सारी खबर पुलिस को दे दी) बचा लेता है और किसी भी प्रकार उसे क्रान्तिकारी प्रतिहिंसा का शिकार नहीं होने देता। यह स्पष्ट है कि सुमित्रा डाक्टर को प्यार करती है केवल एक शिष्या की तरह नहीं प्रेमिका की तरह पर डाक्टर उसके प्रेम का प्रतिदान नहीं देता। इसका अर्थ यह नहीं कि डाक्टर प्यार ही नहीं करता बल्कि स्पष्ट है कि वह अपने को संयत मात्र करता है। सुमित्रा अत्यन्त रूपवती स्त्री है साथ ही उसकी बुद्धि भी बड़ी प्रखर है इस कारण उसके प्यार का प्रतिरोध करना डाक्टर की प्रबल शक्ति का परिचायक है। सुमित्रा पथेर दाबी का काम करती है बड़े जोरों से करती है उस पथेर दाबी की अध्यक्षता करती भी है पर जिस प्रकार वह एकाएक अपने उठाये हुए इस काम को परित्याग कर जावा चल देती है या जावा जाने का फैसला करती है उससे ज्ञात होता है कि वह केवल डाक्टर के प्रेम में दल में आई थी या अधिक से अधिक उसके साथ रोमांटिकता का लाभ भी था। उपरोक्त बात के सम्बन्ध में यह याद रहे कि सुमित्रा पहले चोरी से अफीम-गांजा बेचने वालों के दल में थी। अपूर्व

एक सुशिक्षित पर दुर्बलचित्त व्यक्ति है, उच्च शिक्षा पाने पर भी धार्मिक कुसंस्कारों से उसका छुटकारा नहीं हुआ। यह हमारी शिक्षा की पोल है। अपूर्व बंगाल का ही क्यों आम निम्नमध्यम वर्ग का हूबहू चित्र है। जरा सी बात में वह सब साथियों को पुलिस के हवाले कर देता है। फिर जब डाक्टर की दया से उसका प्राण बचता है, तो वह एक तरह से वैराग्य लेकर मौत में काम करने के बहाने अपना निम्नमध्यम वर्गीय आत्मग्लानि को तृप्त करके बैठ जाता है। भारती एक अच्छी लड़की है वह विश्वासघात नहीं करती पर अपनी जगह पर अपूर्व की तरह अपने वर्ग की प्रतिनिधि है। उसकी उच्छ्वासमयी भावुकता जिसका आधार अक्सर हवा में रहता है उसे किसी क्रान्तिकारी दल के अयोग्य बनाती है। अपूर्व से उसका दर्जा केवल इतना ही ऊँचा है कि वह विश्वासघात नहीं करती बस। पथेर दाबी में ये ही चार मुख्य पात्र हैं इन्हीं के चरित्रों का परिस्फुटित करने के लिए अन्य पात्र-पात्रियों की अवतारणा होती है।

यह बताया जा चुका है कि पथेर दाबी पुस्तक बहुत दिनों तक जब्त थी। इससे यह स्पष्ट है कि इस पुस्तक को सरकार ने राजनैतिक महत्त्व दिया। जनता ने भी इसकी हजारों कापियाँ इस पुस्तक का राजनैतिक समझकर ही खरीदीं। सन्देह नहीं कि शरत् बाबू की सब पुस्तकों में यह अधिक राजनैतिक है। डाक्टर या सव्यसाची का चरित्र ठीक वैसा ही है जैसा साधारण भारतीयों के मन में क्रान्तिकारियों का चित्र है। यही कारण है कि इस पुस्तक की जनप्रियता इतनी अधिक हुई। इस पुस्तक में शरत् बाबू ने मानो जनमन के उसी चित्र को साकार रख दिया। मैंने दिखाने के लिए इस पुस्तक के चार पात्र गिना तो दिये पर यदि किसी उपन्यास को एकपात्र का उपन्यास कहा जा सकता है तो यही है। डाक्टर या सव्यसाची ही यह पात्र है। जिन लोगों ने शरत् बाबू के अन्य उपन्यासों को पढ़ा है वे जानते हैं कि सव्यसाची का चरित्र शरत् बाबू के पाठकों के लिए अपरिचित नहीं है। 'चरित्रहीन' के सतीश तथा 'श्रीकान्त' के श्रीकान्त से इसकी विशेष समता है सच बात तो यह है कि राजनैतिक रूप के

अलावा कोई साधारणत प्रभेद नहीं है। हाँ साथ में यह भी है कि सव्य साची नारी के प्रेम के प्रति उदासीन है। रोमांचिकता में सव्यसाची श्रीकान्त से कुछ पीछे ही होंगे। श्रीकान्त तो निश्चित मृत्यु के मुँह में बार-बार जाता है और उससे निकलता है। अवश्य सव्यसाची जिन विपत्तियों में बार-बार पड़ते हैं उनका दायरा विस्तृततर तथा राजनैतिक है। सुमित्रा का बखान वाली घटना को राजनैतिक कहाँ तक माना जाय इसके सम्बन्ध म तर्क उठ सकता है। प्रेम के प्रति उदासीनता यानी प्रेम होते हुए भी उदासीनता शरत् बाबू के पाठकों के लिए कोई नई चीज नहीं है। 'चरित्रहीन' की सावित्री में भी हम यही चीज पाते हैं। यदि केवल इसी कारण तुलना करनी हो तो सावित्री सव्यसाची के मुकाबले म कम महत्त्व नहीं समझी जायगी। पर हाँ ऐसी तुलना में अक्सर गलती हो जाती है। इस क्षेत्र म एक प्रभेद यह है कि सावित्री के लिए यद्यपि सामाजिक बन से अप्राप्य था और कम से कम सावित्री उस बन्धन को तोड़ने के लिए तैयार न थी पर सुमित्रा और सव्यसाची के दर्मियान ऐसी कोई बाधा थी तो सव्यसाची के मन म यानी उसकी इस धारणा में कि नारी का प्रेम एक क्रान्तिकारी के लिए वर्जित है। क्रान्तिकारित्व की यह धारणा भी एक आम धारणा थी यानी उस समय जब यह पुस्तक लिखी गई थी।

अब इस पुस्तक के सम्बन्ध म एक प्रश्न यह है कि क्या इसमें भारत के विशेषकर बङ्गाल के आतंकवादी क्रान्तिकारी आन्दोलन का सही चित्र आ जाता है। सव्यसाची का चरित्र एक क्रान्तिकारी का सही चरित्र है पर पुस्तक इतनी बड़ी होते हुए भी क्रान्तिकारी आन्दोलन का कोई सही या समग्र चित्र हमारे सामने नहीं आता।

'पथ के दावेदार' में क्रान्तिकारी चरित्र का जो उद्घाटन किया गया है वह नितान्त अपूर्ण है और वह बहुत कुछ रोमांचिकता में ही पर्यवसित होकर रह गया है। इस बात की ओर अक्रान्तिकारी आलोचकों का ध्यान भी आकृष्ट हुआ है। श्री सुबोध सेनगुप्त कहते हैं—

'सव्यसाची का चरित्र विस्मयजनक है और उसकी भावनाएं तथा

विचारों का चित्र बड़ी निपुणता के साथ अंकित किया गया है। फिर भी उपन्यासकार उसके जीवन के रहस्य को पूर्ण रूप से उद्घाटित नहीं कर पाये। अन्त तक हम देखते हैं कि वे कभी भी अपनी कर्म-पद्धति की पूरी व्याख्या नहीं करते। वे बर्मा में कुछ दिनों के लिए आये थे और उन्होंने वहीं पर सुमित्रा की सहायता से एक समिति बनाई थी पर उनकी असली कर्म-पद्धति क्या थी इसे जानने का कोई उपाय नहीं है। एक हीरासिंह इस कर्मधारा से परिचित है पर हीरासिंह भी केवल समाचार देता है असली तथ्य खोलता नहीं है। पथ के दावेदार के सदस्यों में कृष्ण ऐय्यर और सुमित्रा डाक्टर के पुराने मित्र हैं। वे कुछ कुछ जानते हैं। पर मालूम होता है कि उनका ज्ञान भी ऊपरी है। एक उदाहरण से ही बात स्पष्ट हो जायगी। डाक्टर ने एक बार कहा था—'भामो के कुछ उत्तर में इस समय रास्ता चालू है। पर सफेद अफीम का माल है सिपाहियों के पास अच्छे दामों पर बिकेगा।

उन्होंने नीलकान्त जोशी के प्रसंग में बताया है कि यदि पलटन के सिपाहियों के नाम बता दिये जाते तो उसे फांसी नहीं होती और वह उनसे मित्रता करने गया था। उद्देश्य शक्ति-परीक्षा नहीं थी। डाक्टर भारती को यह कहकर तसल्ली देते हैं कि आज जो शत्रु हैं कल वे मित्र भी हो सकते हैं। अन्यत्र हम देखते हैं कि उनके शिष्य महातप और सूब सिंह रेजिमेंट में थे और वहां से आकर लड़ाई में पकड़े गये थे। इन आभासों तथा इंगितों से यह पता लगता है कि सव्यसाची के काम का प्रधान लक्ष्य है भारतीय सेना में विद्रोह का प्रचार करके उन्हें षड्यन्त्र में खींचना पर इस कर्मजाल का कोई चित्र नहीं है। जो आभास तथा इंगित हैं वे भी अस्पष्ट हैं।

श्री सेनगुप्त ने जो बातें कही हैं उनके सही होते हुये भी आप हो यह मानते हैं कि 'पथ के दावेदार' में क्रांतिकारी दल की योजना की कोई स्पष्ट रूपरेखा सामने नहीं आती हम यह भी कहेंगे कि उपन्यास का उपन्यास होने के नाते ही यह सम्भव नहीं हो सकता था कि उसमें उक्त सारी बातें

या जायें। आलोचक ने जो बातें पथ के दावेदार के विरुद्ध कही हैं वे ही बातें क्रांतिकारी कलाकार गोर्की की पुस्तकों के संबंध में भी कही जा सकती हैं। गोर्की का तो सारा साहित्य ही विशेषकर 'माँ' तो क्रांतिकारी आंदोलन को उपजीव्य बनाकर चलता है। पर इसमें भी क्रांतिकारियों के कार्यों का इंगितों और आभासों से ही वर्णन है।

बंगाल का आतंकवादी क्रान्तिकारी आन्दोलन अनिवार्य रूप से नौजवानों का एक आंदोलन था पर इसमें के मुख्य पात्र या पात्री कोई भी नौजवान नहीं है। भारती एक नवयुवती जरूर है पर पता नहीं वह 'पथेर दाबी' समिति के साथ कैसे संयुक्त हो गई है। वह एक विद्यालय चलाती है पर इतने ही से वह केन्द्र की अन्तरङ्ग कमेटी में कैसे बैठती है यह समझ में नहीं आता। ऐय्यर बैरिस्टर है तलवरकर मुन्शी है सुमित्रा की जीविका क्या है न तो यही मालूम है और न यही पता चलता है कि दल में उसने क्या काम किया? हाँ जब भी दल की अन्तरङ्ग कमेटी की सभा होती है वह अध्यक्षा के रूप में नजर आती है। इस प्रकार का चित्र नौजवान आंदोलन का कदापि नहीं है। अपूर्व को हम इस सम्बन्ध में गिनती में ही नहीं लाते। जब पथेर दाबी के काम देखिये तो भी कुछ समझ में नहीं आता। पथेर दाबी वाले किसी राजकर्मचारी की हत्या नहीं करते न उनका षड्यन्त्र करते हैं कोई डकैती नहीं करते न मालूम उनको धन कहाँ से मिलता है कोई क्रांतिकारी पर्चा नहीं बँटवाते। इस प्रकार वे उन कामों में से एक भी नहीं करते जो क्रांतिकारी आंदोलन की विशेषतायें थी। समिति के नेतृत्व में मजदूरों की एक सभा होती है पर वह लाठी चार्ज करके भंग कर दी जाती है फिर आगे क्या होता है इसका कुछ पता नहीं चलता। फिर मजदूरों की सभा से दल के आम कार्यक्रम से क्या सम्बन्ध है यह भी पता नहीं लगता। शरत् बाबू इस चीज को नहीं समझे इसलिए हम उन्हें दोष नहीं दे सकते क्योंकि उस जमाने के क्रांतिकारी ही इस च को नहीं समझते थे।

भारती एक ईसाइन होते हुये भी सम्पूर्णरूप से मध्यम श्रेणी की

बङ्गाली लड़की है। वह बड़ी भावुक है पर उसकी भावुकता का अवसर व्यक्तिगत के अलावा कोई गम्भीर अर्थ नहीं होता। अपूर्व के मुखबिर हो जाने के बावजूद वह उसके प्रति मन ही मन जितनी आसक्त रहती है वह एक ऐसी बात है जो समझ में नहीं आती और वह तब जबकि वह अनुभव कर सकती है कि वह कितने तुच्छ व्यक्ति के साथ प्रेम में पड़ी है और वह कितना स्वार्थपर है कि उसे केवल नौकरी की ही फिक्र है किसी और बात की नहीं जैसे उसकी मुखबिरी से कितने लोग फँस रहे हैं इसकी उसे कुछ परवाह नहीं है। ऐसी हालत में भी उसके लिए भारती का आँसू बहाते रहना समझ में नहीं आता विशेषकर जब अपूर्व बराबर उसे अस्पृश्या समझता है और भूलकर भी उसका छुआ हुआ नहीं खाता है। ऐसी हालत में प्रेम का होना एक मोह के रूप में ही है। इससे अधिक और क्या कहा जा सकता है। इसके लिए भारती के प्रति श्रद्धा घटती ही है बढ़ती नहीं। फिर भी देखा जाय तो सारी पुस्तक में अपूर्व के प्रति उसके प्रेम को ही हम उसके विचारों के केन्द्रस्थल के रूप में पाते हैं। इससे न तो क्रांतिकारिणी के रूप में उसके प्रति श्रद्धा बढ़ती है न नारी के रूप में ही। एक दृष्टि से देखा जाय तो अपूर्व के प्रति भारती का प्रेम न केवल भारती के जीवन की बल्कि इस पुस्तक की ही केन्द्रीय घटना है। यदि यह प्रेम न होता तो इस पुस्तक की कई बड़ी-बड़ी घटनायें नहीं घटतीं। उस हालत में न तो अपूर्व की जान ही बचती न ब्रजेन्द्र ही बहककर मुखबिर हो जाता न डाक्टर सुमित्रा ही पाया जाती न इस के कई केन्द्र पुलिस के शिकार होते, न डाक्टर अन्तिम दृश्य में अज्ञात पथ की ओर रवाना होते। इस प्रकार यह प्रेम अपनी जगह पर बहुत ही बड़ा है। इस सम्बन्ध में एक बात का पता पुस्तक के अन्त तक नहीं लगता कि इस प्रेम का हश्र क्या होता है समाज का छुआछूत का व्यवधान तो इनके बीच से नहीं हटता। ऐसी अवस्था में अपनी जगह पर यह भी एक दुःखान्त घटना ही है। इस प्रेम से पथेर दाबी की हानि ही होती है।

शरत् बाबू की पुस्तकों में पथेर दाबी की विशेषता यही है कि यह

राजनैतिक रङ्ग में रंगी हुई है और भारतीय आतंकवादी क्रान्तिकारी आन्दोलन का एक सही या गलत पर सजीव चित्र है। कला की दृष्टि से शरत् बाबू की पुस्तकों में इसका स्थान कोई उच्च नहीं है। मनोवेगों के चित्र घातप्रतिघात के कारण उनके उपन्यास उच्चकोटि के स्थान हो चुके हैं इस पुस्तक म यदि सर्वथा नहीं तो तुलनात्मक रूप से उसका अभाव है। 'देवदास' का देवदास एक व्यक्तिमात्र है पर उसके मनोवेगों के साथ पाठक जिस तादात्म्यता का अनुभव करता है उसे अपूर्व के साथ या भारती के साथ नहीं अनुभव कर सकता। इस कारण इस उपन्यास का वह चिरन्तनीन आवेदन नहीं है जो उनकी दूसरी पुस्तकों को प्राप्त है। किसी न किसी समय प्रत्येक मनुष्य अपने को देवदास की अवस्था में पाता है पर अपूर्व या सव्यसाची के विषय में यह बात नहीं कही जा सकती। सव्यसाची की कोई प्रशंसा करेगा तो दूर ही से करेगा देवदास की तरह आत्मवत् समझकर नहीं करेगा। इस कारण वह प्रशंसा कितनी भी उच्छ्वसित हो उतनी गम्भीर नहीं हो सकती।

इस उपन्यास की नायिकाओं की ओर देखा जाय तो वे भी शरत् बाबू की दूसरी पुस्तकों के मुकाबले में कम दिलचस्प हैं। सुमित्रा की तुलना चरित्रहीन की सावित्री से की जा सकती है पर जैसा कि मैंने पहले ही कह दिया दोनों में बहुत अन्तर है। सावित्री से सुमित्रा को हर हालत में अधिक उज्ज्वल होना चाहिए पर क्या वह ऐसी है ? सुमित्रा हर समय अपने प्रेम को प्रकट करने के लिए लालायित रहती है उसकी तरफ से कोई बाधा नहीं है पर सावित्री का संयम कितना सौम्य है। यह हम मानते हैं कि सावित्री का संयम एक कुसंस्कारपूर्ण धार्मिक विचार की नींव पर स्थित है पर इससे क्या उसमें उसके चरित्र की सौम्यता बिखर जाती है ? यदि इस संयम में अपेर दासी का कोई पात्र सावित्री का मुकाबला कर सकता है तो वह डाक्टर है। बल्कि डाक्टर का संयम सावित्री से सौम्यतर है पर उसकी भी नींव बंगाल के आतंकवादी क्रान्तिकारियों में प्रचलित न्य धाम संस्कार पर है कि क्रान्तिकारी का नारी के प्रेम से

परहेज करना चाहिये। फिर भी इस सत्कार का आधार केवल परम्परा न होने के कारण इसको हम एक दीवानगी के रूप में देख सकते हैं। सुमित्रा को जिस आसन पर उपन्यास में बार-बार बैठाया गया है यानी 'पथेर दाबी' की अध्यक्षता के आसन पर वहाँ से उसे ज्यादा उज्ज्वल होकर हमारे सामने आने का मौका है फिर भी बौद्धिक रूप से वह 'चरित्रहीन' की किरणमयी से कहीं पीछे है। उसके क्रान्तिकारित्व पर श्रद्धा होती है पर जब यह मालूम हो जाता है कि वह किसी भी कारण से हो बाद को दल छोड़कर जावा चली जायगी तो इस क्रान्तिकारी जीवन की भी कलई खुल जाती है। तब यह स्पष्ट हो जाता है कि यह तो केवल डाक्टर के प्रति आत्मनिवेदन करने का एक तरीका मात्र था। यदि डाक्टर क्रांतिकारी होने के बजाय चारी से अफीम की आमदनी और रफ्तनी करनेवाला होते तो सुमित्रा भी उसी में हो जाती। यह तो एक आकस्मिक बात थी कि डाक्टर क्रांतिकारी निकला। कहीं भी यह जाहिर नहीं होता कि सुमित्रा देशभक्तिवश या किसी और उच्चतर उद्देश्य से 'पथेर दाबी' में आई है। उस रोमांस में प्रेम भी है और विपत्तियों को कनपटी के पास से सांय-सांय करके निकलती हुई देखकर उसे खुशी ही होती है पर इससे मेरी कही हुई बात कदापि नहीं पुष्ट ही होती है।

इस पुस्तक की दूसरी पात्री भारती है पर जैसा कि मैं पहले ही कह चुका हूँ शरत् बाबू की पात्रियों में उसका कोई भी उच्च स्थान नहीं हो सकता। वह तो सौड़ के गोबर की तरह न लखाय है न बर्माय है। उसकी भावुकता बहुत ही निम्नकोटि की है। वह तो मानो हवा में उड़ती है पर यह कोई विशेषता नहीं है। यह नारीमात्र का एक अविभाज्य गुण है।

फिर भी इसमें कोई सन्देह नहीं कि कला की दृष्टि से न सही भारतवर्ष के राजनैतिक जीवन के एक महत्वपूर्ण अध्याय को सजीव रूप में पेश करने की एक जबरदस्त चेष्टा के रूप में इस पुस्तक को एक अपनी ही विशिष्टता प्राप्त है। इस दृष्टि से यह बराबर पढ़ी जायगी पर अन्त में मैं फिर एक बार कह दूं कि चरित्र-सृष्टि तथा कला की दृष्टि से यह

पुस्तक शरत् बाबू की सर्वोत्तम कृतियों में नहीं है। हाँ एक बात तो मैं कहना ही भूल गया कि चरित्र-सृष्टि तथा कला की दृष्टि से इसी पुस्तक के तिवारी अपूर्व की माँ हीरासिंह आदि गौण पात्र बल्कि अधिक परिस्फुट हुए हैं। हाँ जैसा कि मैं कह चुका हूँ सव्यसाची का चरित्र बड़े ही उज्ज्वल तरीके से खींचा गया है और वह शरत् के चरित्रों में एक मौलिक चरित्र भी है।

## श्रीकान्त

'श्रीकान्त' शरत्चन्द्र का बहुत ही बड़ा उपन्यास है। उसे पूरा पढ़ना चाहिये। इसलिये हम उसका संक्षिप्त सार न देकर इस सम्बन्ध में शरत्चन्द्र के विचार ही देते हैं। यों तो श्रीकान्त की आलोचना अमलन हमारी सारी पुस्तक में ही आ गई है।

१२.११.१५ को प्रकाशक हरिदास चट्टोपाध्याय को पत्र लिखते हुए शरत् बाबू ने श्रीकान्त के सम्बन्ध में लिखा था— 'श्रीकान्त की भ्रमण कहानी सचमुच 'भारतवर्ष' पत्रिका में छपने योग्य है ऐसा मैं नहीं समझता था और अब भी नहीं समझता पर कोई कहीं छापे इसी पर मैं सोच रहा था। इसमें प्रारम्भ में ही जो स्केच है उनके कारण इसका स्थान आपके पत्र में नहीं हो सकता यह तो जानी हुई बात है पर दूसरी तरह के किसी पत्र को शायद इस पर कोई आपत्ति न हो यही मनशा था इसीलिये आपके मार्फत इसे भेजा था। यदि आप कहें तो और भी लिखूं। बहुत-सी बातें कहने की हैं पर वैयक्तिक रूप और विद्रूप वहीं तक है पर अन्त तक सभी बातें सत्य रूप में ही लिखी जाएँगी। पर मेरा नाम किसी तरह मालूम न हो' यहाँ तक कि आप और उपेन्द्र बाबू के अलावा और किसी को पता न लगे। 'श्रीकान्त' की आत्मकथा के साथ कुछ सम्बन्ध तो रहेगा ही इसके अलावा यह भ्रमण वृत्तान्त है पर इसका

१ स्मरण रहे कि शरत्चन्द्र का 'श्रीकान्त' पहले-पहल उनके नाम से नहीं छपा था।

"मैं" माने में नहीं। अमुक के साथ बकझक किया अमुक के साथ सटकर बैठा यह सब इसमें नहीं है।"[1] × × × जो कुछ भी हो 'श्रीकान्त' पढ़कर लोग किस तरह छी-छी करते हैं, यह कृपया मुझे सूचित कीजिये तब तक 'श्रीकान्त' में प्राण एक भी पंक्ति नहीं लिखूंगा।"

९ अगस्त १९३४ को उन्होंने दिलीपकुमार राय को लिखा— 'पंचम पर्व लिखकर 'श्रीकान्त' खतम कर दूँगा जो समस्या आदि के सम्बन्ध में होगा और यदि तुम लोग कहो कि चतुर्थ पर्व अच्छा नहीं रहा तो बस यहीं कथासमापन होती है।"

१० मार्च १९३४ को श्री दिलीपकुमार राय को ही उन्होंने लिखा— 'तुम्हें 'श्रीकान्त' का चौथा पर्व इतना अच्छा लगा जानकर कितनी खुशी हुई मैं नहीं बता सकता क्योंकि मैंने इस पुस्तक को सचमुच मन देकर सहृदय पाठकों का अच्छा लगने के लिए लिखा था। श्रीकान्त के भाग्य में तुम्हारी तरह का एक भी पाठक जुटा यह मेरे लिए परम आनन्द की बात है। दूसरे पाठक की मुझे इच्छा नहीं है। कम से कम न हो तो मुझे कोई दुख नहीं है।"

इसके बाद ७ चैत्र १९४१ को उन्होंने लिखा— 'अब तुम श्रीकान्त का अनुवाद शुरू करो। जीते हुए इसका अनुवाद देख जाऊँ।

बाद को चलकर उन्होंने श्रीकान्त को किस प्रकार अपनी सर्वश्रेष्ठ रचना मान लिया और वे यह चाहते थे कि इसका सर्वश्रेष्ठ अनुवाद पता हो यह अन्य प्रसंग में बताया गया है।

## शेष प्रश्न

शरत्चन्द्र के उपन्यासों में 'शेष प्रश्न' अपने ढंग की निराली कृति है। सभी मतों के अनुसार शरत्चन्द्र इस उपन्यास में अपने किसी अन्य उपन्यास से अधिक प्रचारक रूप में दृष्टिगोचर होते हैं यहां यह कि कथा

[1] यहाँ शरत् बाबू ने उन दिनों चलने वाले समय प्रश्नों पर हुए चीखपुकार की ओर इशारा किया है।

कार शरत्चन्द्र इससे क्षुब्ध तथा कुण्ठित हुए हैं या नहीं यह दूसरी बात है। कुछ समालोचकों का कथन है कि प्रचारक शरत्चन्द्र के दबाव के मारे इसमें कलाकार शरत्चन्द्र का कहीं पता ही नहीं मिलता है कुछ लोगों का मत है कि इस उपन्यास में दोनों का कलामय समन्वय है।

शरत्चन्द्र ने स्वतन्त्र 'शेष प्रश्न' पर कुछ लिखा है, जिससे पता चलता है कि वे यह समझते थे कि 'शेष प्रश्न' लोगों को आनन्द देने के लिए नहीं बल्कि चाबुक लगाने के लिए लिखा गया है। २३ माघ १३३४ में श्रीमती राधारानी देवी को उन्होंने लिखा था— 'अन्त तक चलकर 'शेष प्रश्न' मे शायद मैं बहुतों को व्यथित करूँगा फिर भी जो कुछ ठीक है उसे कहना जरूरी है। इसके बाद जो होगा सो देखा जाएगा।

इसके चार साल बाद १० वैशाख १३३८ को उन्होंने उक्त देवीजी को लिखा—"मुझे यह जानकर बहुत खुशी हुई कि 'शेष प्रश्न' तुम्हें अच्छा लगा। मैंने सोचा था कि शायद सारे बंगाल में यह पुस्तक किसी को अच्छी न लगे। मैंने सोचा था कि सिर्फ गालियाँ ही मिलेंगी पर देखता हूँ भय का कोई विशेष कारण नहीं है। मरुभूमि के बीच-बीच में नखलिस्तान भी मिल रहे हैं। कई चिट्ठियाँ आई हैं। एक महिला ने लिखा है कि उनके पास यथेष्ट रुपये होते तो इस पुस्तक को छापकर बिना मूल्य बाइबल की तरह वितरित करती। यह एक दिशा है दूसरी दिशा अभी प्रकट नहीं हुई है जब आँधी चल निकलेगी तभी उसका परिचय मिलेगा।

"यदि आधुनिक साहित्य क्या होना चाहिए इसमें उसी का थोड़ा सा इंगित दिया गया है। वृद्ध होता जा रहा हूँ। और यह अनुभव कर रहा हूँ कि अस्तायमान हूँ इसलिये जो लोग इस समय शक्तिमान नवीन साहित्यिक हैं उनके सामने मैं नम्रतापूर्वक यह रचना रखे जा रहा हूँ। आगे उनका काम है कि उसे पुष्पित-पल्लवित करें और उसमें चार चाँद लगा उसे समृद्ध करें। हमेशा से भाषा पर मेरा अधिकार बहुत कम रहा है। मेरा शब्द-भण्डार बहुत छोटा है यह अभ्यास और चाहे किसी से छिपा

हो पर तुम लोगों से छिपा नहीं है। साथ ही कहने को बहुत-कुछ रह गया दे जाने का समय नहीं रहा उसी को थोड़ा सा अभिव्यक्त करने की चेष्टा 'प्रेय प्रश्न' में की गई है।"

इसके लगभग एक सप्ताह के अन्दर ४ ज्येष्ठ १३३८ को उन्होंने उस समय जेलवासी एक क्रान्तिकारी को लिखा— 'प्रेय प्रश्न' उपन्यास तुम्हें इतना अच्छा लगा इससे मुझे बहुत खुशी हुई, इसमें बहुत से सामाजिक प्रश्नों पर विचार किया गया है, पर समाधान का भार तुम लोगों पर है शायद भविष्य की इस कठिन जिम्मेवारी की सम्भावना ही तुम लोगों को इतना आनन्द दे सकी है। दूसरी तरफ मेरी यह धारणा है कि इस पुस्तक से लोग बहुत निराश होंगे और उन्हें आनन्द नहीं मिलेगा। एक तो गल्पांश बहुत कम है तिस पर छोच-छोचकर पढ़ना पड़ता है, पढ़कर समय काटना या नींद की खुराक के रूप में निश्चिन्त होकर आराम से आँखें आधी बन्द करके उपभोग करने की वस्तु यह नहीं है। ऐसी बात अच्छी नहीं लगती फिर भी मैंने यह समझकर लिखा था कि शायद किसी-किसी को पसन्द आये तो उतने ही से मेरा काम बनेगा। सब के लिए सब तरह का रस उपयुक्त नहीं है। मैं इस सम्बन्ध में अधिकार भेद मानता हूँ।"

इसके बाद उन्होंने पूर्व पत्र की बातों की पुनरावृत्ति सी करते हुए लिखा कि यह पुस्तक अति आधुनिक साहित्य के लिए इंगित है उन्होंने लिखा—"इससे शायद तुम लोगों को यह आभास मिले कि गन्दगी के बिना भी अतिआधुनिक साहित्य का सृजन हो सकता है। केवल कोमल मधुर रसानुभूति ही नहीं आधुनिक काल के रस-साहित्य का यह भी एक कार्य है कि इन्टलेक्ट के लिए चमत्कारक रसद पहुँचाई जाय। इसके बाद जब तुम लिखोगे तो तुम लोगों को भी बहुत कुछ पढ़ना पड़ेगा बहुत कुछ चिन्तन करना पड़ेगा। केवल चित्तविनोद की जिम्मेदारी निभाने से ही साहित्यकार की छुट्टी नहीं होगी।"

'प्रेय प्रश्न' एक नायिका-प्रधान उपन्यास है। सच बात तो यह है कि

इस उपन्यास की नायिका कमल ही इस उपन्यास की एकमात्र पात्र या पात्री है। अन्य पात्र-पात्रियाँ भी इस उपन्यास में हैं पर वे न केवल गौण हैं बल्कि ऐसा ज्ञात होता है जैसे कमल के चरित्र को स्पष्टतर करने के लिए ही उनकी सृष्टि हुई है मानो इसी स्पष्टीकरण रूपी कर्तव्य को निभाने में उनकी चरम सार्थकता है। हमने शरत् बाबू के अन्य उपन्यासों की समालोचना में जिस पद्धति का अवलम्बन किया है कि पहले पाठक के सम्मुख उपन्यास के कथानक को संक्षिप्त रूप से पेश कर दिया और फिर उसकी समालोचना की जाए, 'शेष प्रश्न' की समालोचना में हम उस का अनुसरण नहीं करेंगे। 'शेष प्रश्न' का कथानक अपेक्षाकृत इतना कम है कि हमें इस उपन्यास के विषय में इस पद्धति का प्रयोग समीचीन ज्ञात नहीं होता। पात्र-पात्रियों के कथोपकथन के ही जरिये यह उपन्यास आगे की ओर बढ़ता गया है फिर भी कथानक हो ही नहीं ऐसी बात नहीं।

डाक्टर सुबोध सेन का कहना है कि "कमल ने बहुत बातचीत की है तथा राजेन्द्र के अतिरिक्त वह और सब पर जादू की सकड़ी फेर देती है। तर्कबहुल प्रचारमूलक उपन्यास का मानदंड जासूसी उपन्यास और प्रेतभूत की कहानियों के मानदंड से भिन्न है। प्रचारमूलक साहित्य के कथानक को युक्ति-तर्क से विच्छिन्न करके नहीं देखा जा सकता और उसमें आए हुए युक्ति-तर्कों को घटना के विन्यास से पृथक करने पर वे प्राणहीन हो जाते हैं। किसी भी प्रचारधर्मी श्रेष्ठ उपन्यास या नाटक की आलोचना करने पर यह ज्ञात होगा कि इस श्रेणी के साहित्य में तर्क और कथानक का सम्बन्ध अच्छेद्य होता है। सच बात तो यह है कि इस तरह के साहित्य का उद्देश्य है कुछ घटनाओं के घातप्रतिघात के बीच से होकर किसी विशिष्ट विचारधारा की परिणति को चित्रित करना। इस दृष्टिकोण से विचार करने पर 'शेष प्रश्न' उपन्यास में कथानक की कमी या अप्राचुर्य नहीं है। आम तौर पर इस प्रकार के उपन्यास-नाटकों में जितना कथा नक होता है 'शेष प्रश्न' में उससे कम कथानक नहीं है बल्कि इसमें जैसा

गठित और सुविन्यस्त कथानक है वैसा कथानक बहुत कम उपन्यास नाटकों में होता है। कथोपकथन में भी कमल की बातचीत की प्रधानता है और इसमें सन्देह नहीं कि कमल की बातचीत बहुत ही विदग्धतापूर्ण चुभती हुई और प्रति पग पर नवनव उन्मेषशालिनी है। शिक्षित बंगाली मध्यवित्त वर्ग के लिए कमल की बातें केवल नवीन ही नहीं तिलमिला देनेवाली हैं। यों तो शरत् बाबू के अन्य उपन्यासों से भी हिन्दू सनातन समाज पर चोटें की गई हैं 'ब्राह्मण की बेटी' में यह चोट शायद सबसे भयंकर क्रूरता और अपरिहार्यता धारण करती है पर 'शेष प्रश्न' से भारतीय सनातन समाज पर जो चोट पहुँचती है, वह बिलकुल दूसरी ही तरह की है। 'शेष प्रश्न' में जो चोट पहुँचती है वह घटनाओं की या तथ्यों की चोट उतनी नहीं है जितनी कमल की बातों की है। 'ब्राह्मण की बेटी' में कुलीन ब्राह्मण कन्या को भाई की लड़की प्रमाणित कर शरत्चन्द्र ने सनातन समाज को जो मर्मभेदी चोट पहुँचायी है उसके महत्त्व को हम कम करना नहीं चाहते वह चोट इतनी प्रचंड है कि उससे यह सारा हिन्दू समाज उसकी वर्ण-व्यवस्था आचार तथा निष्ठा एकदम खोखली हो जाती है 'ब्राह्मण की बेटी' पढ़ने के बाद ऐसा ज्ञात होता है मानो हिन्दू-समाज का यह सारा ताना-बाना एक ऐन्द्रजालिक सृष्टिमात्र है उसकी तह में कुछ तत्त्व नहीं है। जिसे हम हजारों वर्षों से एक सुरम्य सुन्दर कृति समझे बैठे थे वह एक कंकाल मात्र है और जिसको हम सुलसित नूपुर-शिंजन समझकर फूले नहीं समाते थे वह कंकाल के अन्दर से प्रवाहित वायु का हाहाकारमात्र है पर 'शेष प्रश्न' की चोट दूसरी ही तरह की है। 'ब्राह्मण की बेटी' में जो चोट है उसको समझने के लिए हमें अपने चारों ओर की नित्यप्रति की सदियों वर्षों से चली आती हुई घटनाओं की ओर देखने भर की आवश्यकता पड़ती है पर 'शेष प्रश्न' की चोट मुख्यतः विचारों तथा तर्कों की चोट है, इसलिए उसको समझने के लिए हमें सोचने की अपने अन्तर्लोक में पैठकर अपने को टटोलने की जरूरत पड़ती है यही 'शेष प्रश्न' की विशेषता है, इसी में

उसका तुलनात्मक उत्कर्ष तथा अपकर्ष सफलता तथा विफलता है। उत्कर्ष अपकर्ष सफलता विफलता शब्दों को हमने कोई आलंकारिक असर पैदा करने के लिए ही एक साथ इस्तेमाल नहीं किया है। 'ब्राह्मण की बेटी' को ही लिया जाय कोई सोचने का कष्ट गवारा करे या न करे, केवल आँख खोलकर देखे तो वह 'ब्राह्मण की बेटी' का अर्थ समझ जायगा पर 'शेष प्रश्न' की विषयवस्तु को हृदयंगम करने के लिए सोचने की जरूरत है या और स्पष्टता के साथ कहें तो देखने के बनिस्बत सोचने की कहीं अधिक जरूरत है। प्रत्येक व्यक्ति सोच नहीं सकता है इसी में 'शेष प्रश्न' की विफलता है सफलता यह है कि इसकी समालोचना 'ब्राह्मण की बेटी' से कहीं विस्तृत गहराई तक पैठी हुई और तीक्ष्ण है। 'ब्राह्मण की बेटी' केवल 'ब्राह्मण-प्रधान सनातन धर्म की जड़ हिलाकर उसकी नैष्ठिक वर्णव्यवस्था को धराशायी कर देता है, पर 'शेष प्रश्न' ने पूँजीवादी पद्धति की सबसे काम्य वस्तु प्रेम पर ही हमला बोल दिया यानी नर-नारी का वह प्रेम जिसके लिए यह कहा जाता है कि वह चिर स्थायी है।"

प्रेम पर प्रहार, शरत् साहित्य के लिए कोई नई बात नहीं थी 'चरित्रहीन' में किरणमयी और दिवाकर की स्मरणीय बातचीत में यत्र-तत्र प्रेम पर बौछारें हैं पर 'शेष प्रश्न' में आकर यह आक्रमण और भी प्रत्यक्ष तथा स्पष्ट हो जाता है। यों तो शरत् बाबू की प्रत्येक पुस्तक की पृष्ठभूमि में नारी का विद्रोह है कहीं यह विद्रोह की धारा बहुत ही सूक्ष्म रूप में फल्गु की तरह अन्तःसलिला होकर बहती है जैसे 'देवदास' और 'बड़ी दीदी' में और कहीं यह सरस्वती की तरह कुछ दूर तक बहकर फिर लुप्त हो जाती है जैसे 'गृहदाह' की अचला में। पर 'शेष प्रश्न' में आकर यह विद्रोहधारा बंगाल की पद्मा की तरह तुमुल गर्जन करती हुई अपने वजन के साथ उचित-अनुचित किसी की न सुनती हुई अपने दाहिन और बाम दोनों तटों को ढाहती किलकारियाँ करती सब बुतों को तोड़ती हुई आत्मचेतना-सम्पन्न होकर बहती है। 'शेष प्रश्न' में नारी

का यह विद्रोह व्यक्ति-विशेष या व्यवस्था-विशेष के विरुद्ध नहीं है बल्कि इसकी लपटें सर्वबन्धनमुक्त होकर सभी दिशाओं में दौड़ पड़ती हैं। हम किरणमयी को उसके विद्रोह के बावजूद तथा प्रेम के विरुद्ध उसके कटाक्षों के बावजूद अन्त में जिस समय 'चरित्रहीन' उपन्यास का पर्दा गिरता है उपेन्द्र के प्रेम में तल्लीन पाते हैं। उपेन्द्र तो मर जाता है, पर किरणमयी की प्रेमतल्लीनता एकलव्य जैसी है। विवाह से उसका पति हाराण है, किरणमयी उसके भ्रम से हट जाती है। सच बात तो यह है कि वह कभी उससे प्रेम करती ही नहीं थी वह उसकी शिष्या ही रही कभी प्रेयसी नहीं हो पाई। फिर किरणमयी ने डाक्टर से गुप्त प्रेम किया पर वह स्वयं ही उसको प्रेम नहीं समझती थी बाद को उसे आत्मग्लानि हुई इसके बाद दिवाकर को लेकर वह बर्मा भाग गई पर अन्त में वह उपेन्द्र के प्रेम में पड़ गई। इस प्रकार विद्रोह की जो धारा सर्वबन्धनविमुक्ति के प्रवाह सागर की ओर दौड़ पड़ी थी वह घूम-घामकर फिर अपने उद्गमस्थल की ओर लौट आई। फिर शरत् बाबू ने इस उपन्यास में किरणमयी के लिए पापिष्ठा शब्द का व्यवहार करके समाज को यह इत्मीनान दिलाया कि इस विद्रोह से उनकी सहानुभूति नहीं है। 'शेष प्रश्न' की कमल के सम्बन्ध में यह बात नहीं है उसका विद्रोह न केवल आरम्भ घटना-सम्पन्न है, बल्कि वह अन्त तक उस पर डटी रहती है। फिर भी एक बात साफ कर देनी चाहिए कमल के चरित्र में नारी का विद्रोह सर्वाङ्गसुन्दर परिपक्वता तक नहीं पहुँच सका। इसका एकमात्र कारण यह है कि शरत् बाबू अन्त तक मध्यवित्त समाज के विद्रोही रह गये वे नर-नारी के सामाजिक सम्बन्ध के पीछे समाज की उत्पादन पद्धति में उनका जो स्थान छिपा होता है उसको कभी न समझ पाये। इसलिए शरत् बाबू की कमल बहुत कुछ बीच रास्ते में त्रिशंकु की तरह लटककर रह गई। शरत् बाबू ने कमल की जो पृष्ठभूमि बनाई है उससे कमल के प्रति अधिकारी पाठक के मन में सहानुभूति पैदा न होकर, उसको यह कहने का अवसर मिलता है कि कमल जैसी स्त्री के लिए ऐसा रहना बहुत

स्वाभाविक है। कमल के पूर्वेतिहास से कमल की बातों का मर्म साधारण पाठकों के निकट घटेया ही बढ़िया नहीं। इस बात को शरत् के किसी समालोचक ने समझा नहीं है, इसलिये इसके और भी स्पष्टीकरण की जरूरत है।

संक्षेप में कमल का परिचय यह है कमल की माँ रूपवती थी। कमल के शब्दों में 'उनमें रूप था पर रुचि नहीं थी। ब्याह के बाद कोई बदनामी हो जाने के कारण उनके पति उन्हें लेकर आसाम के चाय बागान में भाग गये पर वहाँ वे जिये नहीं—कुछ ही महीनों में बुखार से मर गये। इसके तीन साल बाद मेरा जन्म चाय-बागान के बड़े साहब के घर हुआ। यह तो कमल के जन्म की बात हुई। यह हम मानते हैं कि इस जन्म में कमल का न तो दोष है और न कोई जिम्मेदारी है (यदि यह खराब भी हो तो) कर्ण की तरह वह कह सकती है 'दैवायत्त कुले जन्म ममायत्तं तु पौरुषम्।' फिर भी शरत् बाबू ने जिस बंगाली मध्यवित्त समाज के लिए यह उपन्यास लिखा है उस पर इस जन्म का क्या प्रभाव होगा यह अनुमेय है। फिर कमल का पूर्वेतिहास यहीं खतम नहीं होता। कमल जिस समय उपन्यास में पदार्पण करती है उस समय तक उसका एक के बाद एक दो पुरुषों से विवाह हो चुका है। पहला पति एक आसामी ईसाई था मालूम होता है उसके पिता बड़े साहब ने उसकी यह शादी कराई थी। प्रथम पति मर गये। 'उनके मरने के बाद ही मेरे पिता भी अकस्मात् घोड़े से गिरकर मर गये। उस समय शिवनाथ के एक चाचा चाय-बागान के हेड क्लर्क थे। उनकी स्त्री नहीं थी माँ को उन्होंने अपने यहाँ आश्रय दिया।" जरा हम अन्तिम वाक्य को देखिये स्त्री नहीं थी माँ को आश्रय दिया था। कमल अपनी माँ के साथ उनके घर आई थी।

यहीं पर शिवनाथ के साथ कमल का परिचय हुआ। कमल रूपवती थी शिवनाथ के साथ उसका कैसे विवाह हुआ हुआ या नहीं इस पर उन्हीं की बात सुनिये "बिलकुल कोई विवाह हुआ ही नहीं ऐसी बात

नहीं। विवाह जैसी कोई बात हुई जरूर थी। जो लोग देखने आये थे व लगे हँसने। बोले—'यह ब्याह ब्याह ही नहीं होता है। इनसे (शिवनाथ से) पूछने पर इन्होंने कहा 'शैवमत से विवाह हुआ है।' मैंने कहा 'यही ठीक है, शिव के साथ अगर शैवमत से विवाह हुआ तो इसमें चिन्ता की कौन-सी बात है?' "

अब शिवनाथ कौन था यह सुन लीजिये। शिवनाथ की पहली स्त्री अभी मौजूद है। वह रोगिणी है। शिवनाथ कहता है कि इसीलिए उसने पत्नी को त्याग दिया। एक महाशय उसकी तरफ से वकालत करते हुए शिवनाथ से कहते हैं—बीमार रहना तो कोई अपराध नहीं शिवनाथ बाबू बिना किसी अपराध के"।

शिवनाथ—बिना किसी अपराध के भला मैं ही क्यों दुख सहता रहूँ? मेरा ऐसा विश्वास नहीं है कि एक का दुख और किसी के सिर पर भार देने से न्याय होता है।

इस पर जिन्होंने यह प्रश्न पूछा था वे चुप हो गये पर एक समाज के स्तंभ महाशय प्रश्न कर बैठे—'यह ब्याह हुआ कहाँ था?

—'गाँव ही में।

—'शैव के होते हुए लड़की दे दी। शायद उस लड़की का कोई है नहीं।

—'नहीं हमारे यहाँ की विधवा महरी की विधवा लड़की है।

—'घर की नौकरानी की लड़की है! बहुत खूब! जात क्या है?

—'ठीक नहीं मालूम। जुलाहिन-उलाहिन होगी।'

अक्षय बहुत देर से बोला नहीं था अब पूछ उठा—'उसको अक्षर-बोध भी न हो शायद?

शिवनाथ ने कहा—'अक्षर-ज्ञान के लोभ से तो ब्याह नहीं किया था किया है रूप के लिए, सो इस पदार्थ का शायद उसमें अभाव नहीं है।

हरेन्द्र ने कहा—तो यह शायद सिविल ब्याह ही हुआ था?

शिवनाथ ने गर्दन धीरे से हिलाकर जवाब दिया—'पंचमत से ब्याह हुआ था।'

अविनाश ने कहा—'यानी धोखा देने का रास्ता दसों दिशाओं से खुला रखा, क्यों न शिवनाथ जी?

शिवनाथ ने हँसकर कहा—'यह तो लोगों का उद्गार है अविनाश बाबू! नहीं तो, पिताजी खुद अपनी मौजूदगी में मेरा ब्याह कर गये हैं उसमें तो धोखे की रंचमात्र गुंजाइश नहीं थी फिर भी तो धोखा रह ही गया था। उसे कुछ निकालने की आँखें भर चाहिये।

शिवनाथ के साथ कमल की शादी कैसे हुई, इसके तुरन्त बाद ही शरत् बाबू यह दिखलाते हैं कि कैसे शिवनाथ ने अभी हाल ही में अपने स्वर्गीय मित्र योगीन्द्र बाबू के लड़कों की नाबालिगी का फायदा उठाकर उनके सारे कारोबार को ही हड़प कर लिया।

अविनाश ने कहा—'और जो कुछ भी हो। शिवनाथ अब अकेले जब तुम्हीं को सारा कारोबार सँभालना पड़ेगा तो उसमें अपना कुछ हिस्सा रखने का क्यों दावा करते हो? बतौर मालिक के कुछ लेना लो ।

शिवनाथ ने बात को बीच में ही काट कर कहा—'हिस्सा काहे का? कारोबार मेरा अकेले का है।

अभ्यागतों का दल मानो आसमान से गिरा। अक्षय ने पूछा—'पत्थर का कारोबार अचानक आपका कैसे हो गया शिवनाथ बाबू?

शिवनाथ ने गम्भीर होकर जवाब दिया—'मेरा तो है ही।

अक्षय ने कहा—'किसी तरह नहीं हम सभी जानते हैं योगीन्द्र बाबू का है।

शिवनाथ ने जवाब दिया—'जानते हैं तो अदालत में जाकर गवाही क्यों नहीं दे आये? कोई दस्तावेज था या गुना भर था?

अविनाश ने चौंककर प्रश्न किया—'नहीं गुना तो कुछ भी नहीं पर मामला क्या अदालत तक पहुँच गया था?

शिवनाथ ने कहा—'हाँ योगीन्द्र के साले ने नालिश की थी डिग्री मेरे ही पक्ष में हुई है।

शिवनाथ का परिचय यह है इसके अतिरिक्त वह शराबी भी है, शराबी होने के कारण ही वह आगरा कालेज की प्रोफेसरी से निकाला गया है और कभी-कभी शायद वेश्यागमन भी करता है। हाँ वह गवैया बहुत ऊँचे दर्जे का है इस लिए इन तमाम कारणों के बावजूद वह सब मित्रों में आदर के साथ बुलाया जाता है।

इस उपन्यास में शिवनाथ और कमल ये ही दो मुख्य पात्र-पात्री हैं परन्तु बाबू ने इनकी जो पृष्ठभूमि बनाई है उसको भी हम बता चुके हैं।

कमल—'शेष प्रश्न' की कमल को शरत् बाबू ने नारी-विद्रोह की प्रवक्त्री बनाया है यह बात बहुत आश्चर्य की है। रवीन्द्रनाथ ने अपने 'गोरा' नामक उपन्यास में बंगाली मैध्यिक परिवार में प्रतिपालित एक जन्मना अंग्रेज का सनातन धर्म का परिपोषक बनाया है। गोरा के जन्म की वह पृष्ठभूमि उस उपन्यास के रस के परिपाक में सहायक हुई न कि बाधक पर कमल की यह सारी पृष्ठभूमि 'शेष प्रश्न' के वांछित रस के परिपाक में बाधक होती है। पता नहीं शरत् बाबू ने कमल की जान बूझकर ऐसा बनाया या नहीं—शरत् बाबू की तरह आत्मचेतना-सम्पन्न कलाकार के लिए तो यही समझना चाहिये कि उन्होंने जान-बूझकर ऐसा किया—इस हालत में यही कहना पड़ेगा कि उन्होंने कमल की बातों का मूल्य घटाने के लिए ही ऐसा किया।

और आगे चलिये। शिवनाथ की पुकार अक्सर आशु बाबू के घर गाने की मजलिस में होती है। आशु बाबू एक गतयौवन विधुर हैं स्वास्थ्य सुधारने के लिए पश्चिम में आकर आगरे में अपनी एकमात्र सन्तान कुमारी मनोरमा के साथ रहते हैं। रुपये-पैसे का उन्हें अभाव नहीं घर में नौकर-चाकर, दरबान शोफर सभी हैं। अन्य धनियों की तरह वे गर्वित नहीं हैं आगरे के बंगाली परिवारों से साथ उन्होंने जान-बूझकर कोशिश करके परिचय प्राप्त किया है। मनोरमा की शादी विलायत से

शिवनाथ ने गर्दन धीरे से हिलाकर जवाब दिया—'शैवमत से ब्याह हुआ था।'

अविनाश ने कहा—'यानी धोखा देने का रास्ता शुरू दिनों से खुला रखा क्यों न शिवनाथ जी ?

शिवनाथ ने हँसकर कहा—'यह तो भोग का अनुमान है अविनाश बाबू ! नहीं तो पिताजी खुद अपनी मौजूदगी में मेरा ब्याह कर गये हैं उसमें तो धोखे की रंचमात्र गुंजाइश नहीं थी फिर भी तो धोखा रह ही गया था। उसे कुछ निभाने की कोशिश कर चाहिए।

शिवनाथ के साथ कमल की शादी कैसे हुई इसके तुरन्त बाद ही शरत् बाबू यह दिखलाते हैं कि इसने शिवनाथ ने अभी हाल ही में अपने स्वर्गीय मित्र योगीन्द्र बाबू के लड़कों की नाबालिगी का फायदा उठाकर उनके सारे कारोबार को ही हड़प कर लिया।

"अविनाश ने कहा—खैर जो कुछ भी हो। शिवनाथ अब अकेले जब तुम्हीं को सारा कारोबार सँभालना पड़ेगा तो उसमें अपना कुछ हिस्सा रखने का क्यों दावा करते हो ? बल्कि मालिक से कुछ वेतन लो ।

शिवनाथ ने बात को बीच में ही काट कर कहा—हिस्सा कहाँ का ? कारोबार मेरा अकेले का है।

अध्यापकों का दल मानो आसमान से गिरा। अक्षय ने पूछा—'पत्थर का कारोबार अचानक आपका कैसे हो गया शिवनाथ बाबू ?

शिवनाथ ने गम्भीर होकर जवाब दिया—'मेरा तो है ही।

अक्षय ने कहा—'किसी तरह नहीं हम सभी जानते हैं, योगीन्द्र बाबू का है।

शिवनाथ ने जवाब दिया—'जानते हैं तो अदालत में जाकर गवाही क्यों नहीं दे आये ? कोई दस्तावेज था या जुबानी भर था ?

अविनाश ने चौंककर प्रश्न किया—'नहीं सुना तो कुछ भी नहीं पर मामला क्या अदालत तक पहुँच गया था ?

शिवनाथ ने कहा—'हाँ योगीन्द्र के साले ने शादी की थी किन्तु मेरे ही पक्ष में हुई है।

शिवनाथ का परिचय यह है इसके अतिरिक्त वह शराबी भी है शराबी होने के कारण ही वह आगरा कालेज की प्रोफेसरी से निकाला गया है और कभी-कभी शायद वस्त्रागमन भी करता है। हाँ वह गवैया बहुत ऊँचे दर्जे का है इस लिए इन तमाम कारणों के बावजूद वह मज लिसों में आदर के साथ बुलाया जाता है।

इस उपन्यास में शिवनाथ और कमल ये ही दो मुख्य पात्र-पात्री हैं शरत् बाबू ने इनकी जो पृष्ठभूमि बनाई है उसको भी हम देख चुके हैं।

कमल—'शेष प्रश्न' की कमल को शरत् बाबू ने नारी-विद्रोह की अग्रदूती बनाया है यह बात बहुत आश्चर्य की है। रवीन्द्रनाथ ने अपने 'गोरा' नामक उपन्यास में बंगाली नैष्ठिक परिवार में प्रतिपालित एक जन्मना अंग्रेज का सनातन धर्म का परिपोषक बनाया है। गोरा के जन्म की यह पृष्ठभूमि उस उपन्यास के रस के परिपाक में सहायक हुई न कि बाधक पर कमल की यह सारी पृष्ठभूमि 'शेष प्रश्न' के वांछित रस के परिपाक में बाधक होती है। पता नहीं शरत् बाबू ने कमल को जान बूझकर ऐसा बनाया या नहीं—शरत् बाबू की तरह आत्मचेतना-सम्पन्न कलाकार के लिए तो यही समझना चाहिये कि उन्होंने जान-बूझकर ऐसा किया—इस हालत में यही कहना पड़ेगा कि उन्होंने कमल की बातों का मूल्य घटाने के लिए ही ऐसा किया।

और आगे चलिये। शिवनाथ की पुकार अक्सर आशु बाबू के घर गाने की मजलिस में होती है। आशु बाबू एक गतयौवन विधुर हैं स्वास्थ्य सुधारने के लिए पश्चिम में आकर आगरे में अपनी एकमात्र सन्तान कुमारी मनोरमा के साथ रहते हैं। रुपये-पैसे का उन्हें अभाव नहीं घर में नौकर-चाकर, दरबान शोफर सभी हैं। अन्य धनियों की तरह वे गर्वित नहीं हैं, आगरे के बंगाली परिवारों के साथ उन्होंने जान-बूझकर कोशिश करके परिचय प्राप्त किया है। मनोरमा की शादी विलायत से

लौटे हुए अजित नामक एक युवक के साथ एक तरह से तय भी है। अब कहिए तो अजित के विलायत जाने के पहले से ही यह शादी तय-सी है पर विलायत रहते समय अजित ने बहुत दिनों तक कोई पत्रादि नहीं भेजा तो आशु बाबू ने अन्य वर ढूंढना प्रारम्भ किया। पर मनोरमा ने इशारे से मना कर दिया। पिता सुशिक्षिता कन्या की बात समझ गये पर चुप ही रहे। अजित बाबू विलायत से लौटे अब कुछ दिनों से वे आगरे में आकर आशु बाबू के यहाँ टिके हुए हैं। घटनाओं का रंग स्पष्ट है। शिवनाथ ने मनोरमा के साथ सम्बन्ध बढ़ाया है। उधर अजित कमल के यहाँ जाना शुरू करता है। एक दिन वह मोटर लेकर कमल के यहाँ पहुँचा तो कमल ने प्रस्ताव किया कि मोटर में सैर की जाय। वह खुद गाड़ी में बैठ गई और बोली—'आइये मैं बहुत दिनों से मोटर पर नहीं चढ़ी लेकिन आज मुझे बहुत दूर घुमा लाना होगा।

अजित को कुछ सूझा नहीं कि क्या करना चाहिये। संकोच के साथ बोला—'ज्यादा दूर जाने से रात बहुत हो जायगी। शिवनाथ बाबू घर लौटकर आपको न देखेंगे तो शायद कुछ बुरा मानें।

कमल ने कहा—'नहीं, बुरा मानने की कोई बात नहीं।'

असल में बात यह थी कि कई दिन से शिवनाथ रात को घर नहीं आ रहा था। शायद शैवमत से विवाहिता पत्नी कमल के प्रति उसका मोह दूर हो चुका था। रूप ही का उसका नशा था वह शायद उतर चुका था अब उसके नशे को कायम रखने के लिए दूसरे ईंधन की जरूरत थी। जो कुछ भी हो कमल और अजित मोटर में उस दिन बहुत दूर तक निकल गये और बहुत रात बीते लौटे। शिवनाथ जो कई दिन से घर नहीं आता था इसका कारण कमल को यह मालूम था कि वह जयपुर में पत्थर खरीदने गया है पर अजित से ही कमल को मालूम हो गया कि वह जयपुर-वयपुर कहीं नहीं गया है, इसी शहर में है, और रोज आशु बाबू की सान्ध्य मजलिस में उपस्थित रहता है।

जब अजित घर लौटा तो रात गहरी हो गई थी, सड़क सुनसान थी

सन्नाटा छाया हुआ था, दुकानें बन्द हो चुकी थीं। यह देखने के लिए कि अब तक मनोरमा के कमरे में बत्ती क्यों जल रही है अजित उस तरफ से घूमकर आशु बाबू के पास आ रहा था। इतने में खिड़की से आदमी की आवाज सुनाई दी। अति परिचित कंठ का स्वर था। बात हो रही थी किसी एक गान के सुर के विषय में। कोई बात नहीं थी—फिर भी उसके लिए यहाँ के झुरमुट में इतनी रात गये बैठना जाने कैसा लगा। क्षणभर के लिए अजित के दोनों पैर निर्जीव-से हो गये। मनोरमा और शिवनाथ में बातें हो रही थीं। अजित जैसे दबे पाँव आया था वैसे ही लौट गया। इन दोनों में से किसी ने नहीं जाना कि अजित उनको इस प्रकार बातें करते देख गया है।

अन्त में शिवनाथ और मनोरमा में इतनी घनिष्ठता बढ़ती है कि आशु बाबू मनोरमा को काशी भेज देते हैं पर शिवनाथ के पैरों में कोई जंजीर थोड़े ही बँधी है। उनका सम्बन्ध कायम रहता है। मनोरमा ने अंत में शिवनाथ से शादी करने की अनुमति माँगते हुए अपने पिता को एक पत्र डाला। उधर अजित एक [illegible] आश्रम में जाकर बैठ गया पर अन्त में कमल और उसमें एक तरह का बिना विवाह किये साथ रहने (companionate-marriage) की बात तय होती है। अजित ने बाकायदा शादी करनी चाही पर कमल ने अस्वीकार कर दिया।

[redacted] इस प्रकार लगभग तीन सौ पृष्ठ की पुस्तक के दौरान कमल एक आसामी ईसाई की परित्यक्ता पत्नी थी फिर शिवनाथ की 'शैवमत से विवाहिता' पत्नी हुई, अन्त में अजित की साथिन (*companion*) हुई। आसामी ईसाई पति के मर जाने के बाद उसने शिवनाथ से शैवमत से विवाह किया यह तो समझ में आता ही है पर तीसरे अवसर पर कमल ने शिवनाथ के मौजूद रहते ही अजित से जो साथिन का सम्बन्ध स्थापित किया यह समझ में न आता हो ऐसी बात नहीं क्योंकि एक शिवनाथ मनोरमा के साथ गया तो वह भी स्वतन्त्र हो गई। फिर भी इस सम्बन्ध में एकाध बात बिलकुल समझ में नहीं आती है, और उन बातों

के समझ में न आने से कमल का सारा चरित्र ही अस्वाभाविक और काल्पनिक हो गया है। ऐसा होने से उसकी बातें भी बहुत काल्पनिक हो जाती हैं। शरत् बाबू ने कमल को एक तरफ तो प्रचंड क्रांतिकारिणी बनाया है उसके मुँह की प्रत्येक बात से समाज का कोई न कोई बुत टूटता है पर शरत् बाबू ने यह दिखलाया है कि कमल मामूली पति के मरने के बाद से सिवा हविष्यान्न के कुछ खाती नहीं और एकाहारिणी है। इस कर्तव्य (अजित के शब्दों में कृच्छ) का वह इतनी कट्टरता से पालन करती है कि आश्चर्य होता है। दूसरा पति कर लिया तीसरे की तैयारी है (जैसा कि मैं लिख चुका कमल की परिस्थितियों में इसे गर्हित नहीं कहा जा सकता) पर यह कृच्छ जारी रहता है। यह क्या तमाशा है? फिर चायबागान के बड़े साहब की रखैली से उत्पन्न कमल में यह संस्कार कहाँ से पैदा हुआ कि पति के मरने (और सो भी ईसाई पति) के बाद एकाहार करना चाहिये। यह यदि उपन्यास की कोई तुच्छ घटना होती तो हम इस पर ध्यान न करते पर कई बार इस घटना की ओर पाठक की दृष्टि आकर्षित की जाती है इसलिए यहाँ पर इसका उल्लेख करना जरूरी था।

अभी-अभी हमारे देखने में आया कि क्रांतिकारी विद्वान् एम० एन० राय ने जेल से पत्र लिखते हुए १९३१ में लिखा था—"शेष प्रश्न की तुलना इस युग के किसी भी लेखक की पुस्तकों से नहीं हो सकती किन्तु अनातोल फ्रांस, ज़ोला और इब्सन से उसकी तुलना अच्छी तरह हो सकती है। अभी तक किसी भी विदेशी भाषा में इसका अनुवाद नहीं हुआ। इस पुस्तक का मध्यबिन्दु एक लड़की है जो सचमुच एक डायोनिसस है। जिस प्रकार वह [illegible] से आवृत सारे युगों रिवाजों तथा परम्पराओं को ठुकरा देती है तथा रवीन्द्रनाथ और गांधी को धार्मिक रूप से अनुसरण करनेवाले नौजवान भारत को सबक देती है। जो कुछ भी हो जो कोई भी शरत् बाबू की डायोनिसीय लड़की को पश्चिम में परिचित कर देगा वह एक भारतीय को फिर से नोबल पुरस्कार दिलाने का मार्ग प्रशस्त कर देगा। मेरा विश्वास करो रवि बाबू से शरत् बाबू नोबल पुरस्कार के लिए

कम हकदार नहीं है। वैयक्तिक रूप से मैं 'शेष प्रश्न' को गीतांजलि से बढ़कर समझता हूँ। हो सकता है उच्च साहित्य का मूल्यन की मेरी योग्यता संदिग्ध हो। पर यह रुचि की बात है। शेष प्रश्न भारतीय पुनरुज्जीवन (Renaissance) की एक कोणशिला है। इसने बंगाली रोमांसवाद तथा रहस्यवादी भावविह्वलता के रोगी तथा स्थिर वातावरण को दूर कर दिया। शरत् बाबू की अन्य रचनाओं की नायिकाएँ कुलमुखाली थीं यहाँ तक कि विद्रोह भी कर बैठती थीं पर अन्त में वे 'खुशी से' सिर झुका देती थीं। शरत् बाबू के लिए दो रास्ते थे एक तो यह कि वे निष्ठुर प्रतिक्रिया की ओर जाकर अपनी पहली कृतियों का गला घोंट देते पर नहीं उन्होंने दूसरे मार्ग को अपनाया वे क्रमशः आगे बढ़ते गये और अन्त में जाकर उन्होंने इस कायानिर्लोम कन्या की सृष्टि की जिसके हाथों में विद्रोह का नहीं बल्कि क्रान्ति का झंडा है। हाँ यह कृति भी आदर्शवादी (idealistic) है। देश की वर्तमान अवस्था में ऐसा होना अनिवार्य है। पर यह आदर्शवादिता 'कला कला के लिए' दृष्टिकोण से ही है और यह दृष्टिकोण भाववाद का निकृष्टतम रूप है।"[1]

कामरेड राय एक साहित्यमर्मज्ञ के नाते मशहूर नहीं हैं। उनके इस पत्र में ही कम से कम एक प्रमाण ऐसा है जिससे ज्ञात होता है कि उनकी साहित्य समालोचना हर समय विश्वसनीय नहीं है। उन्होंने इबसेन जोला और अनातोल फ्रांस को सिक्सपियर जिविस से कम दर्जे का लेखक बतलाया है पर विश्व-साहित्य का कोई भी ज्ञाता कम से कम इबसेन और अनातोल को सिक्सपियर से कम दर्जे का न समझेगा न ऐसा किसी ने लिखा है। इबसेन तो आधुनिक यूरोपीय नाटक के जनक हैं। शा और पश्चवर्ती इबसेन-मार्गी हैं। मालूम होता है कामरेड राय ने शा की 'इबसेनवाद' नामक पुस्तक नहीं पढ़ी। क्या शा से भी बढ़कर कोई पुस्तकीटक है? फिर अनातोल फ्रांस उनकी दया के चेहरे पर व्यंग्य की हँसी जमी हुई है फ्रांस में वास्त-

1 Letters from Jail by M N Roy p 4-5-7

पर के बाद कोई ऐसा युगप्रवर्तक तो हुआ हो नहीं और उसकी कला का क्या कहना ? जिसने पढ़ा है वह उसकी कला पर कैसे सन्देह करेगा ? फिर कामरेड राय जिस क्रान्ति का झंडा बढ़ा गये हैं उसके भी इबसेन से बढ़कर प्रतिपादक विरले थोड़े ही हैं। सच बात तो यह है कि गत दो शताब्दी के यूरोपीय लेखकों में इबसेन से बढ़कर क्रान्तिकारी कम ही हुए होंगे। सड़े-गले बुर्जुआ समाज पर उसकी सरकार पर उसकी शासन-प्रणाली उसकी संस्थाओं—एक शब्द में उसके प्रत्येक अंग पर जिस तरह कस-कसकर चाबुक इबसेन तथा उसके अनुकरणकारियों ने लगाये हैं वह *विश्वसाहित्य के इतिहास में अभूतपूर्व ही नहीं अद्भुततर* है। अस्तु।

कामरेड राय 'शेष प्रश्न' को गीतांजलि से बढ़कर मानते हैं यदि ऐसा इस दृष्टि से है कि गीतांजलि समाज को छोड़कर उसकी समस्याओं की जमीन से अपना पैर बिल्कुल हटाकर सातवें आसमान के रहस्यलोक में नृत्य करती है तब तो यह बात ठीक है 'शेष प्रश्न' अशरीरी आत्मा की अलौकिक लीला नहीं बल्कि उसमें पग-पग पर धड़कते हुए रक्त मांसमय हृदय का स्पन्दन है पर यदि यही एकमात्र मानदंड है तब तो 'शेष प्रश्न' ही क्यों कोई भी सामाजिक उपन्यास गीतांजलि से अच्छा है। उस हालत में हमें कुछ कहना नहीं है। इस मानदंड को कट्टर तरीके से माननेवाले *गीतांजलि* को साहित्य ही न मानें तो क्या है ?

अब हमें यह देखना है कि कमल के हाथ में जो झंडा है वह क्रांति का झंडा है या नहीं। राय साहब की समालोचना का यही सबसे मुख्य बिन्दु है (बाकी बातें अपनी रौ में कथाप्रसंगेन लिख गए हैं) इसलिये इसी की अच्छी तरह आलोचना करनी है। राय साहब साहित्य-मर्मज्ञ न सही समाजमर्मज्ञ तो हैं ही इसलिये उनकी इस समालोचना का मूल्य और भी बढ़ जाता है। यह तो हम पहले ही बता चुके हैं कि जहाँ हम शरत्-सृष्ट ग्रन्थ नायिकाओं में जैसे पार्वती किरणमयी अथवा अभया बीबी रमा आदि में विद्रोह को या तो बिल्कुल पृष्ठभूमि में या वाक्यों में मूर्त

जाते हैं, वहीं कमल में आकर यह विद्रोह क्रियाशील हो गया है। यही नहीं उसकी क्रिया प्रचण्ड है। कमल की जो पहली शादी आसामी ईसाई से हुई थी उसके लिए हम उसे जिम्मेदार नहीं कह सकते पर एक के बाद एक उसने जो ग्रहण शिवनाथ का और फिर अजित को ग्रहण किया वह सम्पूर्ण स्वेच्छाकृत है और हम इन दोनों घटनाओं के लिए उसे जिम्मेदार समझ सकते हैं। पर कमल के हाथ में क्रांति का झंडा है या उच्छृंखलता का इस बात के किसी निर्णय पर पहुँचने के लिए हमें कमल को और गहराई से जानने की जरूरत है।

ताजमहल की छाया में बैठकर कमल ताजमहल की आलोचना कर रही है। आशु बाबू सरल प्रकृति के वृद्ध बैरिस्टर हैं स्त्री के मरने के बाद से गृहवासी संन्यासी के रूप में रहते हैं, कल्याणकामी हैं। वे उच्छ्वसित होकर कह रहे हैं—"मैं देखता हूँ सम्राट् शाहजहाँ को मैं देखता हूँ उनकी असीम व्यथा को जो इसके प्रत्येक प्रस्तरखण्ड के अणु-अणु में समाई हुई है। मैं देखता हूँ उनके एकनिष्ठ पत्नीप्रेम को जो इस मर्मर-काव्य की सृष्टि करके चिरकाल के लिए अपनी प्रियतमा को विश्व के सामने अमर कर गया है।'

कमल ने उनके चेहरे की तरफ देखकर अत्यन्त स्वाभाविक कंठ से कहा—'मगर सुना है उनकी तो और भी बेगमें थीं। बादशाह को मुमताज पर जैसा प्रेम था वैसा औरों पर भी तो था। हो सकता है कि उन पर कुछ ज्यादा रहा हो पर एकनिष्ठ प्रेम तो उसे नहीं कहा जा सकता आशु बाबू उनमें यह बात नहीं थी।

इस अप्रत्याशित भयानक मन्तव्य से सब चौंक उठे। आशु बाबू या और कोई इसका जवाब खोजकर भी न पा सका।

कमल ने कहा—'सम्राट् कवि थे। वे अपनी शक्ति ऐश्वर्य और धैर्य से इतनी बड़ी विराट् सौन्दर्य की वस्तु प्रतिष्ठित कर गये हैं। मुमताज तो एक आकस्मिक उपलक्ष्य मात्र थी। वह न होती तो भी ऐसे सौन्दर्य सौध किसी भी घटना को लेकर रचे जा सकते थे। धर्म के नाम पर होता

तो भी कोई नुकसान नहीं था और हजारों-लाखों मनुष्यों की हत्या करके दिग्विजय प्राप्ति की स्मृति के रूप में होता तो भी इसी तरह बन जाता। यह एकनिष्ठ प्रेम का दान नहीं है, यह तो सम्राट् के निजी मानसतोष का प्रत्यक्ष दान है। बस इतना ही हमारे लिए यथेष्ट है।

शशु बाबू के दिल पर चोट-सी लगी। बार-बार सिर हिलाकर कहने लगे—'यथेष्ट नहीं कमल, हर्गिज ऐसा नहीं था। तुम्हारी बात ही यदि सत्य हो, यदि सम्राट् के मन में एकनिष्ठ प्रेम नहीं था तो इस विशाल स्मृति-मन्दिर का कोई अर्थ ही नहीं रह जाता।

कमल ने कहा—'यदि न रहे तो मनुष्य की मूढ़ता है। मैं नहीं कहती कि निष्ठा का कोई मूल्य नहीं, पर जो मूल्य युग-युग से लोग उसे देते आये हैं, वह उसका प्राप्य मूल्य नहीं है। एक दिन जिससे प्रेम किया है फिर किसी दिन किसी भी कारण से उसमें किसी परिवर्तन का कोई गुंजाइश नहीं, मन का यह अचल अडिग जड़धर्म न तो स्वस्थ है न सुन्दर ही है।

यह स्मरण रहे कि अन्तिम वाक्य में कमल ने अपने हृदय की अन्तरतम बात को स्पष्ट कर दिया है। कमल का जीवन मानो इसी वाक्य का मूर्त रूप है। यह बात तो सही है कि एक दिन जिससे प्रेम किया है उससे हमेशा प्रेम करना ही पड़ेगा ऐसी कोई कसम नहीं है, न होनी चाहिए, पर यह भी स्वाभाविक नहीं है, न उचित ही है कि जिससे प्रेम है उससे तोड़कर दूसरे से स्थापित करना फिर उससे तोड़कर तीसरे से स्थापित करना इसे परम पुरुषार्थ माना जाय। सोवियट रूस में शुरू-शुरू में विवाह-विच्छेद आसान कर दिये जाने के कारण विवाह-विच्छेद बहुत हुए—ऐसा स्वाभाविक था क्योंकि शताब्दियों के बाद जब मुक्ति होती है तो वह भले-बुरे सब बन्धनों की मुक्ति के रूप में आती है, उसमें मात्राज्ञान नहीं रह जाता। पर बाद को रूस में साम्यवादी दल ने बिना कारण विवाह-विच्छेद को बुरी दृष्टि से देखना शुरू किया जिसका नतीजा यह हुआ कि कानून वही का वही रहते हुए भी लोगों में विवाह-विच्छेद कम

हो गए। विवाह-विच्छेद एक अपवाद तथा मैत्री-बंधन के रूप में रह सकता है। हाँ यदि विवाह प्रथा का ही अस्वीकार कर दिया जाय और बिलकुल यौन अनाचार (sexual promiscuity) के युग में लौटना है तो बात ही दूसरी है।

हम विवाह-प्रथा तथा विवाह-विच्छेद पर तात्त्विक रूप से एक बार फिर ताजमहल पर लौटेंगे। रवीन्द्र साहित्य के किसी भी क[illegible] जाननेवाले को कमल की यह समालोचना पढ़कर यह पहचानने में देर नहीं लगेगी कि शरत् बाबू ने इस प्रकार कमल के मुँह से रवीन्द्रनाथ की 'ताजमहल' नामक कविता की समालोचना की है। रवीन्द्रनाथ ने ताज महल पर जो कविता लिखी है वह भी एक ताजमहल ही है—शब्दों का ताजमहल। कई शताब्दी बाद मानो इस मन्दिर की आत्मा को कविवर ने एक कविता में उंडेल दिया इस कविता से ताजमहल का जैसे द्वितीय जन्म हो गया था। रवीन्द्रनाथ के ये शब्द—

ज्योत्स्ना-राते निभृत मन्दिरे
प्रेयसीरे
जे नामे डाकिते धीरे धीरे
सेइ काने काने डाका रेखे गेले एइखाने
अनन्तेर काने
प्रेमेर करुण कोमलता
फुटिलो ता
सौन्दर्येर पुष्पपुंजे प्रशान्त पाषाणे।
हे सम्राट कवि
एइ तव हृदयेर छवि
इत्यादि

—कितने अच्छे हैं ताजमहल के प्रस्तरमय शरीर में मानो ये एक नवीन आत्मा का संचार करते हैं पर कमल के शब्द—'मगर उनकी तो और भी बेगमें थीं'—कितने मर्मभेदी हैं शाहजहाँ का ताजमहल भले ही इसके

भाव कायम रहे, पर रवीन्द्रनाथ के ताजमहल का इसके बाद कहीं पता नहीं रहता।

*कमल अपनी इसी समालोचना को विधुर आशु बाबू पर लागू करके* कहती है— एक दिन आशु बाबू अपनी स्त्री से प्रेम करते थे, जो इस समय जीवित नहीं है पर अब उन्हें न तो कुछ दिया ही जा सकता है और न उनसे कुछ पाया ही जा सकता है। उन्हें न तो सुखी किया जा सकता है न दुःखी ही किया जा सकता है। वे हैं ही नहीं। प्रेम-पात्र का चिह्न तक जाता रहा है। किसी दिन प्रेम किया था मन में केवल यह घटना मात्र रह गई है। मनुष्य नहीं है उसकी केवल स्मृति मात्र है। उसी को अहोरात्र मन के सामने रखकर वर्तमान की अपेक्षा अतीत को ही मुख्य मानकर जीवन बिताने में कौन-सा बड़ा भारी आदर्श है? मेरी समझ में तो कुछ नहीं आता।

निरीह आशु बाबू इस पर प्रतिवाद करके कहते हैं—'माना अब मैं बूढ़ा हो गया हूँ पर जिस समय मेरी स्त्री का देहान्त हुआ था उस समय तो मैं बूढ़ा नहीं था फिर भी किसी और को उसकी जगह पर ला बिठाने की बात सोच नहीं सकता था।

इस पर कमल तिलमिलाकर कहती है—'नहीं उस दिन भी आप ऐसे ही बूढ़े थे। कोई-कोई आदमी ऐसे होते हैं जो बूढ़ा मन लिए पैदा ही होते हैं। उस बूढ़े के शासन के नीचे उनका जीर्ण-शीर्ण विकृत यौवन हमेशा लज्जा से सिर नीचा किये रहता है। बूढ़ा मन सुखी होकर कहता है—अहा यही तो अच्छा है कोई हंगामा नहीं उन्माद नहीं—यही तो शान्ति है यही तो मनुष्य के लिए चरम-तत्त्व की बात है। उसके लिए कितने प्रकार के अच्छे-अच्छे विशेषण हैं, कितनी वाहवाही का आडम्बर है। ऊँचे स्वर से उसकी ख्याति का ढोल बजता है पर इस बात को वह जान भी नहीं पाता कि यह उसके जीवन का जयवाद नहीं आनन्द-लोक के विसर्जन का बाजा है। 'मन का बुढ़ापा मैं उसी को कहती हूँ जो अपने सामने की ओर नहीं देखता जिसका हारा-थका जराग्रस्त मन भविष्य की

समस्त भावनाओं को तिलाञ्जलि देकर सिर्फ अतीत के ही अन्दर जीवित रहना चाहता है। वह अतीत को घुमा-घुमाकर उसी से गुजर करके जीवन के बाकी दिन बिता देना चाहता है।

कमल ने इस प्रकार बराबर बहुत ही कुतूहलोद्दीपक बातें कही हैं। जिस बात को वह लेती है उसी पर एक बहुत ही झिलमिला बनवाता अभिमत दृष्टिकोण पेश करती है। हर मौके पर ऐसी बात कहती है जिसके विरुद्ध दलीलों की दुहाई देकर ही कुछ कहा जा सकता है। इसमें सन्देह नहीं 'संयम जहाँ अर्थहीन है जहाँ वह निष्फल आत्मपीड़न मात्र है उसी का लेकर अपने को बड़ा मानना न केवल अपने को ठगना बल्कि दुनिया को भी ठगना है' पर कमल ने तो एक प्रकार से सभी संयमों की निन्दा कर डाली यह कहाँ तक उचित है यह विचार्य है।

कमल की विद्रूपपूर्ण बातचीत में सबसे अधिक जो बात खटकती है और मुनासिब तरीके से आपत्तिजनक है वह यह है कि प्रत्येक बात को वह नामहीन ज्ञान वर्णनात्मक कुंठा से कसती है। आध्यात्मिक साहित्य के इस रूप से बड़ दुर्गुण के कारण न शरत् बाबू क्रान्तिकारी हो सके न कमल क्रान्तिकारिणी। कमल की बातें बड़ी चुभती हुई हैं मर्मस्पर्शी हैं शायद अधिकांश अंश में सही भी हैं अधिक से अधिक उसमें कुछ तरमीम की आवश्यकता है पर उसमें सब से बड़ा दोष यह है कि वह हर वर्ग की वैयक्तिक कुंठाओं को ही व्यक्त करती है। ताजमहल पर उसकी जो आलोचना है, और आशु बाबू के विपत्नीक जीवन पर उसकी जो समालोचना है, इन दोनों में यही त्रुटि दृष्टिगोचर होती है। शाहजहाँ की एकनिष्ठता की समालोचना का आधार अन्य बेगमों के साथ सहानुभूति नहीं है। सम्राट् की एकनिष्ठता की ख्याति पर हमला करने के लिए बेगमों का तर्क केवल एक अस्त्र है। विधुर आशु बाबू के जीवन की समालोचना भी इसी प्रकार है उसमें आशु बाबू क्या हैं और क्या नहीं रहे हैं। आशु बाबू की स्त्री एक लड़की छोड़ गई थी उस लड़की की दृष्टि से आशु बाबू के पुनर्विवाह करने के औचित्य-अनौचित्य पर एक हरफ भी कहीं नहीं

मिलता। कहीं गलतफहमी न हो जाय इसलिये हम फौरन कह दें कि इससे हमारा मत यह न समझा जाय कि पहले के प्रेम या विवाह की सन्तान हो तो दूसरा विवाह न किया जाय। हमारा कहना केवल इतना है कि किसी बीबी के अतिरिक्त समाज भर की एक वस्तु है बच्चे होते ही हैं इसके दृष्टिकोण से इस प्रश्न पर विचार होना चाहिये।

प्रत्येक बात पर केवल व्यक्ति और उसकी कुण्ठाओं के दृष्टिकोण से विचार करने का तरीका गलत है उसी पर मेरी आपत्ति है। यह तरीका क्रान्तिकारी भले ही जँचे पर है यह इसके बिलकुल विपरीत। जिस युग में एक छोटे से वर्ग की ओर से समाज का शोषण हो रहा है उस युग में शोषितों की ओर से व्यक्तिवाद का नारा क्रान्तिकारी है। पूँजीवाद ने इसी नारे के सहारे सामन्तवाद को मटियामेट किया। सम्भव है अक्सर व्यक्तिवाद के दृष्टिकोण से पहुँचा हुआ नतीजा वही हो जो सामाजिक दृष्टिकोण का नतीजा हो पर ऐसा नहीं भी हो सकता है। व्यक्ति-स्वातन्त्र्य एक बहुत बड़ी चीज है पर एक व्यक्ति की विशुद्ध 'स्वतन्त्रता' वहीं पर खतम हो जाती है जहाँ पर दूसरे की शुरू होती है यानी इन दोनों की स्वतन्त्रता में एक सामंजस्यविधान की आवश्यकता नहीं होती है। आदिम समाजवाद तथा १९१७ के बाद के रूस के अतिरिक्त (यों तो १८७१ के पेरिस का कम्यून भी है) सभी समाजों में जब दो व्यक्तियों के हितों में संघर्ष होता था तो उसका निर्णय अल्पसंख्या शासित राष्ट्र अपने वर्गहित को देखकर करता रहा है न कि निष्पक्ष होकर जैसा कि लोग समझते हैं। इस प्रश्न के तात्त्विक विवेचन का यहाँ अवसर नहीं है पर इतना तो स्पष्ट है कि सर्वबन्धन-विमुक्ति का नारा सभी हालतों में यहाँ तक कि वर्गहीन राष्ट्रहीन दलहीन समाज में भी गलत है। समाज में मनुष्य विशुद्ध 'स्वतन्त्रता' का उपभोग नहीं कर सकता वहाँ तो सामाजिक स्वतन्त्रता ही हो सकती है।

कमल चरित्र में जिस चीज का प्रचार किया गया है, वह सर्वबन्धन विमुक्ति है, शान्ति नहीं। साथ ही हम यह भी मानने के लिए बाध्य हैं

कि जिधर देखो उधर बन्धन ही बन्धन है, उस हालत में उसकी प्रतिक्रिया के फलस्वरूप सर्वबन्धन विमुक्ति के लिए प्रयास आता है, इस दृष्टि से यह प्रवृत्ति भले ही असामाजिक तथा अव्यावहारिक हो, है यह एक स्वाभाविक प्रवृत्ति ही। जब विद्रोह की धुन किसी पर सवार हो जाती है, और वह वर्षों की सब जंजीरों को तोड़कर अलग करने लगता है, उस समय उसको मात्राज्ञान नहीं रहता। तात्त्विक बातों को अन्तिम कल्याण-अकल्याण की बातों को जाने दिया जाय व्यक्तिस्वातन्त्र्य के एकमात्र दृष्टिकोण से देखा जाय तो भी कमल पूरी नहीं उतरती है। शिवनाथ की अकारण परित्यक्ता स्त्री के दृष्टिकोण से क्या कमल कभी सोचती है? हम यह नहीं कहते कि वह इस कारण शिवनाथ को ग्रहण न करती पर मेरा कहने का मतलब है, वह इस दृष्टिकोण से सोचने में असमर्थ-सी है। वह प्रत्येक चीज को अपने ही दृष्टिकोण से सोचती है। वह जब अजित को जान-बूझकर धीरे-धीरे खींचती है, उस समय सिवा आत्म-सुख के कौन से आदर्श का अनुसरण करती है। शिवनाथ भी मनोरमा को इसी प्रकार खींचता है, इन दोनों में फर्क क्या है?

यह शरत् बाबू की लेखनी की महिमा है कि शिवनाथ कम खेलता है और कमल विद्रोहिणी—बल्कि मूर्तिमती नारी-विद्रोह पर एक योगेन्द्र की विधवा का धोखा देने के अतिरिक्त उसमें कोई ऐसी बड़ी त्रुटि नहीं है जिसे हम कमल में भी नहीं पाते। शिवनाथ ने अपनी पहली स्त्री को रोग के कारण त्याग दिया यह कमल के दृष्टिकोण से उचित ही है। इस कृत्य का समर्थन करते हुए शिवनाथ ने कहा था—वे हमेशा बीमार रहती हैं, तब भी ठीक हो जाती। औरतों के लिए इतना ही काफी है। उस पर लगातार विभिन्न रोगों के कारण दाँत गिर गये बाल पक गये बिलकुल ही बूढ़ी हो गई है इसीलिए उन्हें छोड़कर दूसरा ब्याह करना पड़ा—कमल इसका अनुमोदन करने के सिवा क्या कर सकती है? इस सम्बन्ध में उसकी बात स्मरण कीजिए—'एक दिन जिससे प्रेम किया है फिर किसी दिन किसी भी कारण से उसमें परिवर्तन की कोई गुंजाइश नहीं,

मन का यह चंचल अस्थिर आचरण न तो स्वस्थ है न सुन्दर ही'—फिर—'मन का बुढ़ापा मैं उसी को कहती हूँ जो अपने सामने की ओर नहीं देख सकता, जिसका हारा-थका जराग्रस्त मन भविष्य की समस्त आशाओं को जलांजलि देकर सिर्फ अतीत के ही अन्दर जीवित रहना चाहता है।' इत्यादि।

शिवनाथ ने स्वयं कमल को छोड़ दिया उस पर कमल क्या कह सकती है? शिवनाथ पत्थर खरीदने के लिए जयपुर जाने का बहाना कर चला गया पर असल में वह आगरे में ही कमल से अलग रह रहा था इसकी खबर जब कमल को अजित से मिली तो उसमें जो प्रतिक्रिया होती है वह द्रष्टव्य है—

रात अधिक हो रही थी। कमल के घर बैठा हुआ अजित डर रहा था कि कहीं शिवनाथ आ जाय तो क्या समझें। कमल बोली—'अजित बाबू आशंका करने की कोई बात नहीं। वे अब यहाँ नहीं आने। शैव-विवाह की शिवानी (शिवनाथ का दिया हुआ कमल का प्यार का नाम) का मोह शायद अब दूर हो चुका है।'

अजित ने पूछा—'इसका अर्थ? क्या आप गुस्से में कह रही हैं?

—'नहीं गुस्सा करने लायक अब जोर भी शायद मुझमें नहीं रहा। मैं समझती थी पत्थर खरीदने के लिए वे जयपुर गये हैं पहले-पहल आप से ही यह खबर मिली कि वे अब तक आगरा छोड़कर कहीं नहीं गये हैं। चलिये उस कमरे में बैठें

कमल के इस वक्तव्य का प्रयोग करने से ही ज्ञात होगा कि जब शिवनाथ का मन कमल से हट गया तो उसने उसे त्यागकर ठीक ही किया पर शरत् बाबू के लेखन-कौशल से ऐसा लगता है मानो शिवनाथ ने कमल को धोखा दिया हो। पर कमल के मतानुसार यह धोखा नहीं हो सकता। 'एक दिन जिससे प्रेम किया है फिर किसी समय, किसी भी कारण से उसमें परिवर्तन की कोई गुंजाइश नहीं मन का यह चंचल अस्थिर आचरण न तो स्वस्थ है न सुन्दर ही।

एक बात यह तो माननी ही पड़ेगी कि शिवनाथ उसे त्यागकर चला गया और आगरे में ही रहता है इस खबर को कमल ने करीब-करीब स्थितप्रज्ञ की तरह ग्रहण किया। वह न तो इस पर क्षोभ दिखाती है न दुख। अजित ने पूछा—'क्या आप अब आगरे में ही रहेंगी?

—'क्यों?

—'मान लीजिए शिवनाथ बाबू अगर आगरा नहीं आए। उन पर तो आपका जोर है नहीं?

कमल ने कहा—'नहीं'—फिर जरा चुप रहकर कहा—'आप लोगों के यहाँ तो वे रोज आते हैं क्या गुप्त रूप से आप जानकर मुझे बता नहीं सकते?

—'उससे क्या होगा?

—'होगा और क्या घर का किराया इस महीने का दिया ही हुआ है फिर मैं परसों तक कभी जा सकती हूँ। इत्यादि।

क्या यह रूप स्वाभाविक है? यह माना कि एक प्रेम को लेकर उसी की लकीर की फकीरी आत्मपीड़न की हद तक करते रहना न तो स्वस्थ है न सुन्दर हो पर एक प्रेम जब चला जाता है, उस समय कुछ दिनों के लिए ही सही एक शून्यता छा ही जाती है सामयिक रूप से ही सही एक प्रकार का वैराग्य उत्पन्न होता है जिसे श्मशान वैराग्य कहते हैं, पर हम कमल में इस प्रकार की कोई बात नहीं देखते। यह तो 'गुजश्ते रा सलवात आइन्दा रा एहतियात' वाक्य का अपरापा रूप है। रसग्राममनुगम कुछ लोग उसे जैसे स्पर्श ही नहीं करते। डाक्टर श्रीकुमार बनर्जी ने शरत् बाबू की अन्य नायिकाओं के साथ कमल की तुलना करते हुए लिखा है—'वह (कमल) सावित्री अथवा राजलक्ष्मी की सहोदरा अथवा स्वजातीया नहीं है—सावित्री अथवा राजलक्ष्मी आदि नारियाँ भारतीय हैं इनका विद्रोह जिसके विरुद्ध युद्ध करते हुए बाहर आ रहा है वह है समस्त समाज और युग-युगान्तर-व्यापी धर्मविधि की सम्मिलित शक्ति। कमल का जैसे किसी के साथ नाड़ी का कोई सम्पर्क नहीं है, छोटा-बड़ा

सामग्री का प्रचलन हुआ। सहस्रों वर्षों तक विवाह (यौन-सम्बन्ध) से प्रेम का कोई सम्बन्ध नहीं होता था। इतिहास की बहुत ही प्रारम्भिक मंजिलों में (उससे भी पहले तो ऐसा था कि जो जिसको पा गया वह उसका होता था बाप और बेटी में भी शय्या-सम्बन्ध होता था) स्त्रियों के एक निर्दिष्ट समवर्ग का पुरुषों के एक निर्दिष्ट समवर्ग के साथ पैदा होते ही विवाह हो जाता था। इसमें प्रेम के वर्तमान रूप (जिसकी तॉल्सताय ने Kreutzer Sonata में यों परिभाषा की है—और सब व्यक्तियों पर एक व्यक्ति को सर्वतोभावेन तरजीह देना) का कोई सवाल ही नहीं उठता है। बाद के युग में जब हम इस प्रकार और सब व्यक्तियों पर एक व्यक्ति का तरजीहमूलक प्रेम पाते हैं तो उस सामाजिक रूप से नहीं बल्कि असामाजिक रूप से (व्यभिचार आदि में) पाते हैं। तभी एक युग में परकीया-प्रेम सारे साहित्य का आधार ही हो गया। जो कुछ भी हो यह तो साबित है कि प्रेम और विवाह का सम्बन्ध दायिम नहीं। अब भी सब समाजों में प्रेम स्थापित नहीं हो सका है। स्वयं शरत् बाबू के उपन्यास (मध्यवित्त श्रेणी के सामाजिक प्रतिफलन के रूप में) इसके सबसे बड़े प्रमाण हैं। यदि यही बात है तो अब यह प्रश्न अधिक जोर पकड़ता है कि क्या कमल के लिए (इसलिये किसी भी स्त्री या पुरुष के लिए) प्रेम करना जरूरी है? क्या यौन-सम्बन्ध के साथ एक बुद्धिसम्पन्न सम्बन्ध मात्र ही यथेष्ट नहीं है?

'शेष-प्रश्न' की कमल का उत्तर है—"मैं मानना चाहती हूँ कि जब जितना पाऊँ उसी को सच्चा समझकर मान सकूँ। दुःख का दाह मेरे बीते सुख की ओस की बूँदों को सुखा न डाले। वह (पाया हुआ सुख) कितना भी कम क्यों न हो और उसका परिणाम संसार की दृष्टि में चाहे जितना तुच्छ क्यों न गिना जाय फिर भी मैं उसे अस्वीकार न करूँ। एक दिन का आनन्द दूसरे दिन के निरानन्द के सामने झूँठा नहीं। इस जीवन में सुख-दुःख दोनों में से कोई भी सत्य नहीं सत्य है सिर्फ उनके चंचल क्षण सत्य है सिर्फ उनके चले जाने का छन्द। बुद्धि और हृदय से उनको

साथ नारी के चारों ओर रूढ़ि ही रूढ़ि है, जब परम्पराओं ने उसके प्रत्येक अंग को बीस-बीस लपेटों में बाँध रक्खा है ताकि वह हिल-डुल भी न पाये, जब हजारों वर्षों से उसकी आत्मा को कुचला गया है, तो उसके लिए सर्वबन्धनमुक्ति की इच्छा ही स्वाभाविक है। जब वह अपने बन्धनों को तोड़ेगी तो सम्भव है वह अपने वस्त्र की कमरवाली गाँठ भी खोलकर नग्न हो जाय और दिगम्बरी हो जाय। कमल ऐसी ही एक नारी है। उसको सामाजिक स्वातन्त्र्य नारी का आदर्श मानना कठिन है पर यह स्मरण रहे उसकी तरह मात्राज्ञानहीन विद्रोह, विद्रोह और विद्रोह फिर विद्रोह करने से ही नारी की मुक्ति सिद्ध होगी। यों तो शरत् बाबू के सारे उपन्यास मध्यवित्त श्रेणी की नारियों के विद्रोह के उपन्यास हैं, किसी उपन्यास में यह विद्रोह विस्फोट की मात्रा को पहुँचता है, किसी में नहीं, पर 'शेष प्रश्न' में आकर यह विद्रोह अथाह अग्नि सागर के साथ एकाकार हो गया है और वह सब कुछ भस्म करना चाह रहा है।

कमल केवल रूढ़ि परम्परा कर्तव्य के विरुद्ध विद्रोहिणी नहीं है, वह स्वयं प्रेम के विरुद्ध विद्रोहिणी है। वह प्रेम की चिरन्तनता का कायल नहीं। यदि देखा जाय कि प्रेम की चिरन्तनता के नाम पर किस प्रकार पुरुष जाति ने स्त्रियों को बेवकूफ बनाया है, विधवा स्त्रियों से ब्रह्मचर्य का पालन कराया, यहाँ तक कि पति के साथ उन्हें चिता में भेज दिया, तो हम समझ सकते हैं कि यह प्रेम केवल लूटखसोट का एक आवरण रहा है, पुरुष की शोषण-प्रवृत्ति पर एक गूलरपत्र (fig-leaf) का काम करता रहा है, तो प्रेम के प्रति कमल की यह आस्थाहीनता समझ में आती है। ताल्स्टायकृत प्रेम की जिस परिभाषा को मैंने उद्धृत किया है, उसमें सब पर एक को तरजीह देने को ही प्रेम बताया गया है, पर क्या यह तरजीह केवल नारी की ओर से ही हो? कानफ्युसियस ने तो स्त्रियों को यह नसीहत दी है कि बुद्धिमती स्त्री को यद्यपि पुरुषों के कभी-कभी इधर-उधर हाथ मारने से घबराना नहीं चाहिये, यह तो पुरुष का स्वभाव है, वह तो लौट ही आयेगा" इत्यादि। कमल ने इसी कारण प्रेम को भला-बुरा कहा।

शिवनाथ शिल्पकार थे इसलिए यह भी तो शिल्पी मानते थे कि शिवनाथ के विश्वासघात से उसको बहुत चोट लगी, वह तिलमिला गई, पर टिकी रह गई। ऐसी-वैसी नारी पर वह धीरे धीरे सँभली, उठी, उसने एक कदम बढ़ाया फिर दूसरा, अपना रोजमर्रे का काम करने लगी, इस बीच में अजित आया। धीरे धीरे उसके साथ घनिष्ठता बढ़ी, इत्यादि। हिन्दयनी उपेन्द्र के प्रेम में दीवानी हो गई थी, इस बात से उसके चरित्र पर स्वाभाविक भाव विह्वलता का दोष भले ही लगाया जा सके, पर इसमें उसकी मनुष्यता की गम्भीरता ही जाहिर होती है। इसके विपरीत ऐसा मालूम होता है कि कहीं भी बात कमल के अन्तरतम प्रदेश तक पैठती ही नहीं। सभी घटनायें जैसे उसकी सतह से टकराकर लौट जाती हैं और इस टकराव के फलस्वरूप जो आवाज होती है वह किसी रक्तमांसमयी नारी की आवाज नहीं, धातु की कठोरतम की आवाज मालूम होती है। यह कमल का दोष नहीं शरत् बाबू का ही दोष है कि वे कमल को ठीक तरह से पकाकर (ऐसा लगता है उसे dilute करने से डरे हैं) उसको रक्तमांसमय रूप नहीं दे सके। बात यह है शरत् बाबू मध्यवित्त श्रेणी के ही कलाकार हैं, उसी में उनकी सार्थकता तथा शक्ति है, शेष प्रश्न में वे अपनी सीमा से बाहर शक्ति ऊपर लिखने गये तभी यह गड़बड़ी हुई है।

फिर भी कमल के रूप में शरत् बाबू ने जिस चरित्र की सृष्टि की है वह निराला है। डाक्टर सुबोध सेन लिखते हैं— "अन्नदा दीदी से कमला तक शरत् बाबू ने जितनी भी नारियों के चित्र खींचे हैं उन सब की अभिलाषाओं को संचित करने पर जो प्रश्न या विद्रोह अनिवार्य हो जायगा, कमल केवल उसी की अभिव्यक्ति है। कमल के चरित्र ने शरत् साहित्य को पूर्णता प्रदान की है।" इसमें सन्देह नहीं पर हम इसको उस अर्थ में नहीं लेते जिसमें यह लिखा गया है। कमल में आकर नारी विद्रोह सक्रिय रूप ग्रहण करता है जरूर, अन्य विद्रोहों में तो विद्रोहिणी जिस चीज के विरुद्ध विद्रोह का झंडा बुलंद करती है उसी के दायरे में बल्कि उसी को आत्मसमर्पण कर जीवन व्यतीत करती है पर कमल तो

अधिक विद्रोहिणी है। फिर भी कमल का चरित्र असम्पूर्ण है। यह किस अर्थ में इसे हम साफ कर चुके हैं। इसका और थोड़ा स्पष्टीकरण यहाँ कर दिया जाय। कमल को शरत् बाबू ने जिस प्रकार सापेक्षशून्य अति-वस्तुवादिनी (इसलिए अवास्तविक) बनाया है क्या वही आदर्श समाज की (समाजवादी) नारी का चित्र है? हम तो नहीं समझते। यहीं पर शरत् बाबू की कुठाभरी कला फेल हो जाती है। वह समाजवादी समाज की स्वतन्त्र नारी का चित्र खींचने में असमर्थ रहती है। समाजवादी समाज की नारी मायामोहशून्य स्थितप्रज्ञा रबट नहीं होगी। उसमें केवल दिमाग ही नहीं दिल भी होगा।

'शेष प्रश्न' में सब कुठावादी अर्थों के उपन्यासों की तरह यह त्रुटि है कि उसमें यौन-समस्या पर ही जोर दिया गया है मानो दुनिया में स्त्री-पुरुष के सम्बन्ध के अतिरिक्त कोई समस्या ही न हो। यों तो कमल की बातचीत के दौरान कितनी ही समस्याओं पर रायजनी की गई है पर वे समस्याएँ कहीं भी जीवित रूप में नहीं आतीं। वे तर्कों की समस्याएँ हैं जीवन की नहीं। अनागत काल का वह कौन कलाकार होगा जो कुंठा के इस पंक से भारतीय साहित्य का उद्धार कर उसे जीवन की सैकड़ों समस्याओं के चरणों में चढ़ायेगा।

शरत् बाबू ने कमल के विषय में एक सबसे अच्छी बात जो दिखाई है वह यह है कि कमल आर्थिक रूप से स्वावलम्बिनी है। यद्यपि शरत् बाबू ने इस तथ्य को उतना महत्त्व नहीं दिया जितना इसे प्राप्त होना चाहिये फिर भी इतना तो हम जानते ही हैं वह सिलाई का रोजगार करती है। कमल की स्वतंत्रता का यही आधार है। वह न तो शिवनाथ की मुहताज है न अजित की। इस दृष्टि से देखा जाय तो शरत् बाबू ने पहली बार एक ऐसी स्त्री को अपने कथानक की नायिका बनाया है (चरित्रहीन की सावित्री को हम नहीं भूले हैं, पर उसे इस उपन्यास की नायिका होने की मर्यादा नहीं प्राप्त हुई) जो सर्वहारा तो नहीं बल्कि सर्वहारीभूता (proletarianised) है। यह बहुत खुशी की बात

है कि शरत् बाबू अन्तिम दिनों में यह समझ गये थे कि बिना आर्थिक रूप से स्वतंत्र हुए स्त्रियाँ स्वतन्त्र नहीं हो सकती। मध्यवित्त तथा शिक्षित स्त्रियों में स्त्री-स्वाधीनता पर लिप्सा और शोभा एक फैशन हो गया है, इसके लिए कई संस्थायें हैं एक अखिल भारतीय संस्था भी है पर इन संस्थाओं की स्त्रियों को पोल यह है कि ये सब की सब स्त्रियाँ अपने पतियों और पिताओं के पैसों पर चैन की बाँसुरी बजाने वाली हैं। इससे उनके सारे आन्दोलन को ही ऐसी अवास्तविकता प्राप्त है जो अकथनीय है। यह ऐतिहासिक तथ्य भी है कि स्त्रियाँ तभी तक समाज में स्वतंत्र रहीं जब तक वे आर्थिक रूप से परावलम्बिनी नहीं हुईं। जिस दिन से स्त्रियाँ रोटी की फिक्र से बचीं उसी दिन से वे परतंत्र भी हो गईं पुरुष के हाथ के खिलौने मात्र हो गईं कुछ भी नहीं रहीं। शरत् बाबू ने कमल के चरित्र में यह बात दिखला दी इसीलिये उस चरित्र को एक वास्तविकता प्राप्त हो गई है जो किरणमयी या और किसी नायिका को नहीं प्राप्त हो सकी। यदि शरत् बाबू कमल को इस प्रकार स्वावलम्बिनी नहीं दिखलाते तो कमल की सारी वक्तृताओं पर पानी फिर जाता। कुण्ठवादी लेखकों की एकमात्र समस्या यौन-समस्या है, उनके किसी नायक-नायिका को शायद ही रोटी की फिक्र हो उनका औसत खर्च ५००) रु० महीना समझना चाहिये। 'चरित्रहीन' के सतीश उपेन्द्र बड़ी दीदी के सुरेश से लेकर शरत् बाबू के सभी उपन्यासों में यही हाल है। देवदास को चन्द्रमुखी के सामने रोटी की समस्या आती है पर ऐसा उसकी परिस्थिति की एक अवस्था के रूप में दिखाया गया है। 'चरित्रहीन' की सावित्री मेस की नौकरानी है पर उसके चरित्र का अनुसरण कीजिये तो ज्ञात होगा वह महज कृपापूर्वक ऐसी है वह मेस की नौकरानी होती हुई भी बिलकुल मालकिन है। फिर मेस की नौकरानी न होती तो उसके साथ सतीश की जान-पहचान न हो सकती अतः स्पष्ट है कि उसका नौकरानी होना एक गौण तथ्य है।

स्वयं 'शेष प्रश्न' में भी आशु बाबू को रुपयों-पैसों की कोई फिक्र नहीं

है शिवनाथ और अजित का भी यही हाल है। सब निठल्ले से हैं। कमल के सम्बन्ध में हम पहले ही बता चुके।

कमल के मुँह से शरत् बाबू ने नाना विषयों की बातचीत कराई है। यह बातचीत भारतीय साहित्य में एक अद्भुत वस्तु है। स्वयं शरत्-साहित्य में एक किरणमयी की बातचीत के अतिरिक्त और कहीं इतनी असामान्य साथ ही प्रतिभाप्रखर बातचीत नहीं मिलती। हम उसके कुछ नमूने उद्धृत कर इस आलोचना को समाप्त करेंगे।

कमल कह रही है—'कोई भी आदर्श सिर्फ इसलिये कि वह बहुकाल स्थायी है और अत्यन्त प्राचीन काल से प्रचलित है चिरन्तन नहीं हो जाता। उसे बदल देने में कोई लज्जा की बात नहीं। उस परिवर्तन से यदि जाति की संचित विशिष्टता चली जाती हो तो जाय कोई बात नहीं। एक उदाहरण लीजिये। अतिथिसत्कार हमारा एक बड़ा आदर्श है। कितने अगणित काव्य कथानक धर्म-कथायें इस विषय पर नाना-वाना बनाकर रची गई हैं। अतिथि की प्रीति के लिए दाता कर्ण ने अपने पुत्र तक की हत्या कर दी। इस घटना पर न जाने कितने व्यक्तियों ने आँसू बहाये हैं। फिर भी आज यह काम न केवल कुत्सित बल्कि बीभत्स माना जायगा। एक सती स्त्री ने अपने कोढ़ी पति को कन्धे पर रखकर अभिसारालय पहुँचा दिया था—सतीत्व के इस आदर्श के सामने एक दिन और सब उदाहरण पीछे पड़ जाते थे पर आज उसी घटना कहीं हो जाय तो वह मनुष्य के हृदय में सिर्फ घृणा ही उत्पन्न करेगी ।'

आदर्शों की परिवर्तनशीलता तथा उनकी निरन्तर जाँच करते रहने के लिए यह एक सुन्दर कथन है।

हरेन्द्र ने भक्ति और श्रद्धा से विगलित होकर एक विधवा के सम्बन्ध में कहा—"इस घर की यह गृहिणी हैं यह भाई साहब की मातृहीन सन्तानों की जननी के समान हैं। इस घर की सारी जिम्मेदारी इन्हीं पर है। यह सब होते हुए भी इनका कोई स्वार्थ नहीं कोई बन्धन नहीं। बताइये न *किसी देश की विधवायें अपने को इस तरह से रमा सकती हैं?"*

कमल का चेहरा खिल गया। वह बोली—"इसमें कौन-सी भलाई की बात है हरेन बाबू! हो सकता है पराये घर की निःस्वार्थ गृहिणी और पराये बच्चों की निःस्वार्थ जननी होने का दृष्टान्त संसार में और कहीं न हो। नहीं होने के कारण यह अद्भुत हो सकता है, पर अद्भुत होने के कारण अच्छा हो जायगा किस तरह? वाक्यों की छटा से विशेषणों के बाहुल्य से लोग इसे चाहे जितना गौरवान्वित क्यों न कर डालें दूसरे की गृहस्थी के मालिकपने के इस अभिनय में सम्मान नहीं है"। हमारे यहाँ बायबाजार के हरीश बाबू की बात याद आ गई। जब उनकी सोलह साल की छोटी बहिन का पति मर गया तब उसे घर लाकर वे अपने झुंड के झुंड बाल-बच्चे दिखाकर रोते हुए बोले—'लक्ष्मी बहन मेरी अब ये ही तेरे बाल-बच्चे हैं। मुझे फिक्र किस बात की बहन इन्हें पालपोसकर आदमी बनाओ इस घर की सर्वेसर्वा बनकर आज से तू सार्थक हो यही मेरा आशीर्वाद है। हरीश बाबू बड़े भले आदमी हैं बगीचे भर में सब लोग धन्य-धन्य कर उठे। सभी ने कहा—'लक्ष्मी के भाग्य अच्छे हैं। अच्छे तो हैं ही। सिर्फ स्त्रियाँ ही समझ सकती हैं कि इतना बड़ा दुर्भाग्य इतनी बड़ी धोखेबाजी और कुछ हो ही नहीं सकती। पर एक दिन जब यह विडम्बना पकड़ी जाती है, तब प्रतिकार का समय निकल जाता है।

आश्रमों और गुरुकुलों पर कमल के मन्तव्य सुन लीजिये—" उनकी शिक्षा क्या है? बदन पर ढंग के कपड़े नहीं पाँवों में जूते नहीं फिर फटे-पुराने कपड़े पहिन रखे हैं कैसे बात है। एक जून आधा पेट खाकर जो सबके अस्वीकार के बीच में बढ़ रहे हैं प्राप्ति के आनन्द का जिनके भीतर चिह्न तक नहीं है देश की लक्ष्मी क्या उन्हीं के हाथ अपने भंडार की चाभी सौंप देगी? संसार की ओर एक बार सिर उठाकर देखिये तो सही। जिन्हें बहुत मिला है, उन्होंने ही आसानी से दिया है। उन लोगों को ऐसी अकिंचनता का स्कूल खोलकर त्याग का स्नातक नहीं बनाया गया था।

मन के मेल से व्यावहारिक लोक का मेल बड़ा है। राजेन्द्र कहता है—'कर्म के जगत में आदमी के व्यवहार का मेल ही बड़ा मेल है मन का नहीं। मन हो तो बना रहे, मन्त्र-काल का विचार अंतर्यामी करेंगे हमारा काम व्यावहारिक एकता के बिना नहीं चल सकता। यही हमारी कसौटी है—इसी से हम जाँच करते हैं। बाहर से स्वर में मेल न हो तो केवल दो जनों के मन के मेल से संगीत की सृष्टि नहीं होती वह तो सिर्फ कोला हल ही कहलायेगा। राजा की सेनायें युद्ध करती हैं उनकी बाहर की एकता ही राजा की शक्ति है, मन से उसे कोई मतलब नहीं।

और एक बार शरत् बाबू ने कमल की सुंदर बातचीतवाली मोनोपाली (एकाधिकार) तो तोड़ दी।

विवाह के सम्बन्ध में कमल के विचार सुन लीजिये। वह अजित से कह रही है—'असली फूल जल्दी सूख जाते हैं इस डर से जो लोग देर तक रहनेवाले नकली फूलों का गुच्छा बनाते हैं और गुलदान में सजाकर रखते हैं, उनके साथ मेरे मन का मेल नहीं खाता। पहले भी मैंने एक बार आपसे ठीक यही बात कही थी कि किसी भी आनन्द में स्थायित्व नहीं है। स्थायी है सिर्फ उस आनन्द के क्षणस्थायी दिन और वे दिन ही तो मानवजीवन के चरम संचय हैं। उस आनन्द को बाँधने चले कि वह मरा। इसी से ब्याह में स्थायित्व तो है पर उसका आनन्द नहीं। दुःसह स्थायित्व की मोटी रस्सी गले में बाँधकर वह आनन्द आत्महत्या करके मर मिटता है।"

अजित ने इस पर कहा—'जो इतना क्षणस्थायी है उसे मनुष्य अधिक सम्मान क्यों देने लगा?"

कमल बोली—'यह मैं जानती हूँ हमारे आँगन के किनारे जो फूल खिलते हैं उनका जीवन एक पहर से ज्यादा नहीं रहता। उससे बल्कि हमारा यह मसाला पीसने का सिल-लोढ़ा कहीं ज्यादा टिकाऊ और स्थायी है। सत्य की जाँच का इससे अधिक मजबूत मापदंड और पा ही कहाँ सकते हैं?' जो फूल को नहीं जानता उसके लिए सिल-लोढ़ा ही सबसे बड़ा

सत्य है क्योंकि उस सिल-लोढ़ा के घुलकर मर जाने की कोई आशंका नहीं है। फूल की आयु सिर्फ एक दिन की है और सिल-लोढ़ा हमेशा के लिए है। रसोईघर की जरूरत के मुताबिक वह हमेशा रगड़ रगड़कर मसाला पीस दिया करेगा—रोटी निगलने के लिए तरकारी के उपकरण मसाले का साधन जो ठहरा वह उस पर भरोसा किया जा सकता है। उसके न होने से संसार बिगड़ जो हो जायगा।

अजित ने कहा—'मैं तुम्हें समझ नहीं पा रहा हूँ कि तुम हो क्या। मुझे क्या लगता है जानती हो? लगता है कि तुम्हें पाना जितना आसान है तुम्हें खोना देना भी उतना ही आसान है।'

कमल ने कहा—'यह भी मुझे मालूम है।'

अजित ने सिर हिलाते हुए कहा—'यही तो मुश्किल है। तुम्हें पाना या लेना ही तो सब कुछ नहीं है। एक दिन यदि इसी तरह खो देना पड़ा तो क्या होगा?"

कमल ने शान्त स्वर में कहा—"कुछ भी न होगा उस दिन गँवाना भी उतना ही आसान हो जायगा। जितने दिन तक पास रहूँगी उतने दिन आपको यही शिक्षा सिखाया करूँगी।

अजित भीतर से चौंक पड़ा बोला—"विलायत में रहते हुए मैंने देखा है कि वहाँ वाले कितनी आसानी से—कितने मामूली कारणों से हमेशा के लिए विच्छिन्न हो जाया करते हैं। मन में सोचता हूँ क्या उन्हें जरा भी चोट नहीं लगती? और यही यदि उनके प्रेम का परिणाम है तो वे सभ्यता का गर्व कैसे किया करते हैं?'

कमल ने कहा—'बाहर से अखबारों में यह जितना सहज दीखता है, असल में उतना सहज नहीं है। मगर फिर भी मैं तो यही कामना करती हूँ कि नरनारी का यह परिणाम ही किसी दिन जगत में प्रकाश और हवा की तरह सहज-स्वाभाविक बन जाय।"

अजित चुपचाप उसके मुँह की तरफ ताकता रह गया कुछ बोला नहीं उसके बाद आहिस्ता से दूसरी तरफ मुँह फेरकर बैठे ही मालूम

नहीं क्यों उसकी आँखों में आँसू भर आये। शायद कमल ताड़ गई। उठकर वह पलंग के सिरहाने के पास आ बैठी और माथे पर हाथ फेरने लगी पर सांत्वना का एक वाक्य भी उसके मुँह से नहीं निकला।

कमल के बारे में जो कुछ अस्पष्टता हमारी आलोचना में रह गई वह इस कथोपकथन से स्पष्ट हो गई। वह समझती है बाग के फूलों की तरह प्रेम नश्वर है ऐसा वह अपवाद रूप से नहीं बल्कि प्रकृति के एक अपरिहार्य नियम के रूप में समझती है। उसका यह नियम एक अदृष्टवादी (Fatalistic) रूप तक पहुँच गया है, जरूर ऐसा होगा ही। निश्चित है कि वह मानती है कि एक प्रेम से दूसरे प्रेम में जाने के परिवर्तनकाल में कुछ दुःख होता है उसकी भाषा से जितना अखबारों से मालूम पड़ता है यह उतना सहज नहीं है।

यह एक वास्तविकता है कि प्रत्येक प्रेम स्थायी नहीं हो सकता इसको मानकर जो नीति सदाचार, कानून बनेगा वही स्वस्थ और सुन्दर बनेगा पर इसको अतिरंजित करके दूसरी अति पर पहुँच जाना कि प्रेम स्थायी किसी हालत में नहीं हो सकता हम समझते हैं अस्वस्थ है और इस मतवाद पर अवलम्बित सदाचार तथा कानून की पद्धति गलत होगी। फिर स्त्री-पुरुष के सम्बन्ध में स्त्री, पुरुष के अतिरिक्त संतान भी तो एक वस्तु है। कमल का किसी पति से लड़का नहीं हुआ, इसलिए उसके लिए यह समस्या नहीं आई पर कमल को क्रांति की अग्रदूती करार देनेवाले किसी समालोचक के लिए इस बात को भूल न जाना चाहिये था। फिर यह मनोविज्ञान की दृष्टि से विचारणीय है कि यदि एक व्यक्ति के दिमाग में यह बात अच्छी तरह पैठ जाय (जैसे कमल के दिमाग में पैठ गई है) कि जिस स्त्री को वह इस समय प्यार कर रहा है वह जरूर ही शीघ्र किसी दूसरे की प्रेमिका होगी तो क्या वह ठीक-ठीक प्रेम कर सकेगा? क्या उस हालत में उसके प्रेम में एक अवास्तविकता और निर्ममता की धारणा नहीं आ जायगी? अन्त में उक्त दृश्य को ही लीजिये अजित के तो यह सोचकर आँसू आ जाते हैं कि कमल से वह कभी अलग हो भी सकता है, पर अजित

के आँसू देखकर भी कमल की आँखों में आँसू नहीं आते। वह स्थितप्रज्ञ सी हो चुकी है। शरत् बाबू ने जिस बारीकी से उसके चरित्र को यहाँ स्पष्ट किया है वह उन्हीं की निपुण लेखनी के उपयुक्त है। इतना कह लेने के बाद भी यह सवाल तो रह ही जाता है कि इतना अधिक ज्ञानी हो जाना क्या केवल दुःख से ही नहीं सुख से भी परे हो जाना नहीं है? यदि ऐसा है तो क्या इस निष्फल परिज्ञान के बजाय थोड़ी सजनात्मक भ्रांति वरणीय नहीं है? क्या कमल के प्रेम में वह उद्दाम आवेग आ सकता है जो अजित के प्रेम में आवेगा? यदि नहीं तो कमल का अति ज्ञान लाभ हुआ या हानि?

इन सब प्रश्नों का उत्तर दिया नहीं जा सकता क्योंकि इन प्रश्नों का पूरा-पूरा उत्तर देने के लिए सम्पूर्ण मनोविज्ञान और समाजशास्त्र की अवतारणा करनी पड़ेगी। मान लीजिए कि इन प्रश्नों का उत्तर इस प्रकार दिया जाय कि दाम्पत्य-जीवन को चलाने के लिए एक बुद्धिसम्मत सम्बन्ध भर की जरूरत है, प्रेम की भ्रांति की जरूरत नहीं है तो भी 'शेष प्रश्न' की कमल के विरुद्ध यह समालोचना तो रह ही जाती है कि वह प्रत्येक प्रश्न पर, विशेषकर इन शेष प्रश्नों पर, केवल वैयक्तिक दृष्टिकोण से विचार करती है इसी त्रुटि के कारण कलामय जीवित प्रतिभाशाली कथोपकथन तथा नये-नये मूर्तिभंजक वार्तालाप के बावजूद यह पुस्तक गतानुगतिक कला से बन्धन छुड़ाकर भी नहीं छुड़ा पाती। शरत् बाबू की कला इस पुस्तक में सर्वबन्धनमुक्त होकर दौड़ने की चेष्टा करती है पर उसके पैरों में बचपन से बुर्जुआ कथा का जो चीनी जूता पड़ा है उसके कारण वह दौड़ नहीं पाती। इस पुस्तक की दूसरी त्रुटि यह है कि प्रेम के विरुद्ध भारतीय साहित्य में सबसे प्रथम भीषण आक्रमण होते हुए भी शरत् बाबू इसमें भी प्रेम के ही दायरे में रह गये हैं मानो वही जीवन की एक समस्या हो मानो उन्हीं के Adjustments को ढूँढना कला साहित्य विद्या का एकमात्र उद्देश्य हो मानो जीवन की और सब समस्याएँ सुलझ चुकी हों और एक वही समस्या अब मानवता के लिए रह गई हो।

कथानक की दृष्टि से शेष प्रश्न 'श्रीकान्त' 'चरित्रहीन' के सामने तो क्या 'ब्राह्मण की बेटी' 'दत्ता' 'पल्ली-समाज' आदि उपन्यासों के सामने भी टिक नहीं सकता। रस के परिपाक की दृष्टि से तथा भावुकता की दृष्टि से 'देवदास' 'चरित्रहीन' 'श्रीकान्त' 'चन्द्रनाथ' इससे कहीं श्रेष्ठ हैं। फिर भी इस उपन्यास में शरत् बाबू एक नवीन रूप में दृष्टिगोचर होते हैं। इस उपन्यास के प्रथम अध्याय से ही ज्ञात होता है कि हम एक नई दुनिया म प्रवेश कर रहे हैं, मानो 'चरित्रहीन' 'देवदास' 'श्रीकान्त' की पुरानी दुनिया को छोड़कर हम एक नये जगत में आ गये हैं। आपात दृष्टि से कमल शरत्-साहित्य की किसी अन्य नायिका से अभिन्न मालूम पड़ती है पर नहीं कमल उनमें से किरणमयी से बहुत मिलती हुई जान पड़ने पर भी जरा गहराई से सोचने पर एक नया चरित्र जान पड़ेगी। 'देवदास' की चन्द्रमुखी और 'श्रीकान्त' की राजलक्ष्मी भी उसके करीब मालूम पड़ती है पर उनमें और कमल में मौलिक प्रभेद यह है कि वे बन्धनहीन होती हुई भी क्रमशः एक-एक खूंटे से यानी क्रमशः देवदास और श्रीकान्त से सामाजिक रूप से नहीं पर मानसिक रूप से बँधी हैं पर कमल तो सर्वबन्धन मुक्ता है। वह किसी पुरुष की नहीं है। वह अपने आसामी ईसाई पति की नहीं है वह शिवनाथ की नहीं है वह अजित की भी नहीं है। वह अपनी है सम्पूर्ण रूप से अपनी। वह निर्मम है मन से और शरीर से। वह वर्तमान युग की नारी का—सब बन्धनमुक्त नारी का प्रतीक है यदि उसका वश चले तो पुरुष के बिना ही सारी सृष्टि को चलाये पर ऐसा हो नहीं सकता इसलिये उसकी सृष्टि में पुरुष का एक गौण स्थान है। वह प्रमिक की भावुकता पर मन ही मन हँसती है शायद कुछ घृणा भी करती है। जिस अनागत समाज में पुरुष और स्त्री में सम्पूर्ण समता होगी जिसमें स्त्री को अपने साथी के चयन में या आवश्यकता पड़ने पर उसके निष्कासन में किसी धार्मिक या सामाजिक कारण से बाधा न होगी निर्मोही तथा निर्मम कमल शायद उस समाज का आदर्श न हो सके पर परिवर्तनकाल में कुछ क्षति होती ही है। कमल उसी अनिर्विद्रोह का मूर्त प्रतीक है। उसके

के आँसू देखकर भी कमल की आँखों में आँसू नहीं आते। वह स्थितप्रज्ञ सी हो चुकी है। शरत् बाबू ने जिस बारीकी से उसके चरित्र को यहाँ स्पष्ट किया है वह उन्हीं की निपुण लेखनी के उपयुक्त है। इतना कह देने के बाद भी यह सवाल तो रह ही जाता है कि इतना अधिक ज्ञानी हो जाना क्या केवल दुःख से ही नहीं सुख से भी परे हो जाना नहीं है? यदि ऐसा है तो क्या इस निष्काम धातिशाम के बजाय थोड़ी सृजनात्मक भ्रांति वरणीय नहीं है? क्या कमल के प्रेम में वह उद्दाम आवेग आ सकता है जो अजित के प्रेम में आयेगा? यदि नहीं तो कमल का अति ज्ञान लाभ हुआ या हानि?

इन सब प्रश्नों का उत्तर दिया नहीं जा सकता क्योंकि इन प्रश्नों का पूरा-पूरा उत्तर देने के लिए सम्पूर्ण मनोविज्ञान और समाजशास्त्र की अवतारणा करनी पड़ेगी। मान लीजिए कि इन प्रश्नों का उत्तर इस प्रकार दिया जाय कि दाम्पत्य-जीवन को चलाने के लिए एक बुद्धिसम्पन्न सम्बन्ध भर की जरूरत है प्रेम की भ्रांति की जरूरत नहीं है तो भी 'शेष प्रश्न' की कमल के विरुद्ध यह समालोचना तो रह ही जाती है कि वह प्रत्यक्ष प्रश्न पर, विशेषकर इन शेष प्रश्नों पर, केवल वैयक्तिक दृष्टिकोण से विचार करती है। इसी त्रुटि के कारण कलामय बौद्धिक प्रतिभाशाली कथोपकथन तथा पदे-पदे मूर्तिभंजक वार्तालाप के बावजूद यह पुस्तक गतानुगतिक कथा से बन्धन छुड़ाकर भी नहीं छुड़ा पाती। शरत् बाबू की कला इस पुस्तक में सर्वबन्धनमुक्त होकर दौड़ने की चेष्टा करती है पर उसके पैरों में बचपन से घुँघुआ कला का जो जीर्ण जूता पड़ा है उसके कारण वह दौड़ नहीं पाती। इस पुस्तक की दूसरी त्रुटि यह है कि प्रेम के विरुद्ध भारतीय साहित्य में सबसे प्रबल भीषण आक्रमण होते हुए भी शरत् बाबू इसमें भी प्रेम के ही दायरे में रह गये हैं मानो वही जीवन की एक समस्या हो मानो उन्हीं के Adjustments को सुलझाना कला साहित्य विधा का एकमात्र उद्देश्य हो मानो जीवन की और सब समस्याएँ सुलझ चुकी हों और एक यही समस्या अब मानवता के लिए रह गई हो।

कथानक की दृष्टि से शेष-प्रश्न 'श्रीकान्त' 'चरित्रहीन' के सामने तो क्या 'ब्राह्मण की बेटी' 'दत्ता' 'पल्ली-समाज' आदि उपन्यासों के सामने भी टिक नहीं सकता। रस के परिपाक की दृष्टि से तथा भावुकता की दृष्टि से 'देवदास' 'परिणीता' 'श्रीकान्त' 'चन्द्रनाथ' इससे कहीं अच्छे हैं। फिर भी इस उपन्यास में शरत् बाबू एक नवीन रूप में दृष्टिगोचर होते हैं। इस उपन्यास के प्रथम अध्याय से ही ज्ञात होता है कि हम एक नई दुनिया में प्रवेश कर रहे हैं, मानो 'चरित्रहीन' 'देवदास' 'श्रीकान्त' की पुरानी दुनिया को छोड़कर हम एक नये जगत में आ गये हैं। आपात दृष्टि से कमल शरत्-साहित्य की किसी अन्य नायिका से अभिन्न मालूम पड़ती है पर नहीं कमल उनमें से किरणमयी से बहुत मिलती जुलती जान पड़ने पर भी ज़रा गहराई में सोचने पर एक नया चरित्र जान पड़ेगी। 'देवदास' की 'चन्द्रमुखी' और 'श्रीकान्त' की राजलक्ष्मी भी उसके करीब मालूम पड़ती है पर उनमें और कमल में मौलिक भेद यह है कि वे वेश्यावत् होती हुई भी क्रमशः एक-एक खूँटे से यानी क्रमशः देवदास और श्रीकान्त से सामाजिक रूप से नहीं पर मानसिक रूप से बँधी हैं पर कमल तो सर्वबन्धनमुक्ता है। वह किसी पुरुष की नहीं है। वह अपने आसामी ईसाई पति की नहीं है वह शिवनाथ की नहीं है वह अजित की भी नहीं है। वह अपनी है सम्पूर्ण रूप से अपनी। वह निर्भय है मन से और शरीर से। वह वर्तमान युग की नारी का—सर्वबन्धनमुक्त नारी का प्रतीक है यदि उसका बस चले तो पुरुष के बिना ही सारी सृष्टि को चलाये ऐसा हो नहीं सकता इसलिये उसकी सृष्टि में पुरुष का एक गौण स्थान है। वह प्रेमिक की भावना पर मन ही मन हँसती है शायद कुछ घृणा भी करती है। जिस अनागत समाज में पुरुष और स्त्री में सम्पूर्ण समता होगी जिसमें स्त्री को अलग गाँठी के बन्धन में या आवश्यकता पड़ने पर उससे निष्कासन में किसी धार्मिक या सामाजिक कारण से बाधा न होगी निर्मोही तथा निर्मम कमल शायद उस समाज का आदर्श न हो सके पर परिवर्तनकाल में कुछ क्षति होती ही है। कमल उसी प्रतिविग्रह का पूर्ण प्रतीक है। उसके

के आँसू देखकर भी कमल की आँखों में आँसू नहीं आते। वह स्थितप्रज्ञ सी हो चुकी है। शरत् बाबू ने जिस बारीकी से उसके चरित्र को यहाँ स्पष्ट किया है यह उन्हीं की निपुण लेखनी के उपयुक्त है। इतना सब लेने के बाद भी यह सवाल तो रह ही जाता है कि इतना अधिक ज्ञानी हो जाना क्या केवल दुःख से ही नहीं सुख से भी परे हो जाना नहीं है? यदि ऐसा है तो क्या इस निष्फल ज्ञान के बजाय थोड़ी सृजनात्मक भ्रांति वरणीय नहीं है? क्या कमल के प्रेम में वह उद्दाम आवेग आ सकता है जो अजित के प्रेम में आयेगा? यदि नहीं तो कमल का अति ज्ञान लाभ हुआ या हानि?

इन सब प्रश्नों का उत्तर दिया नहीं जा सकता क्योंकि इन प्रश्नों का पूरा-पूरा उत्तर देने के लिए सम्पूर्ण मनोविज्ञान और समाजशास्त्र की अवतारणा करनी पड़ेगी। मान लीजिए कि इन प्रश्नों का उत्तर इस प्रकार दिया जाय कि दाम्पत्य-जीवन को चलाने के लिए एक बुद्धिसम्पन्न सम्बन्ध भर की जरूरत है प्रेम की प्राप्ति की जरूरत नहीं है तो भी 'शेष प्रश्न' की कमल के विरुद्ध यह समालोचना तो रह ही जाती है कि वह प्रत्येक प्रश्न पर, विशेषकर इन शेष प्रश्नों पर, केवल वैयक्तिक दृष्टिकोण से विचार करती है इसी त्रुटि के कारण कलात्मक बौद्धिक प्रतिभाशाली कथोपकथन तथा पदे-पदे मूर्तिभंजक वार्तालाप के बावजूद यह पुस्तक गतानुगतिक कला से बन्धन तुड़ाकर भी नहीं तुड़ा पाती। शरत् बाबू की कला इस पुस्तक में सर्वबन्धनमुक्त होकर दौड़ने की चेष्टा करती है पर उसके पैरों में बचपन से बुर्जुआ कला का जो चीनी जूता पड़ा है उसके कारण वह दौड़ नहीं पाती। इस पुस्तक की दूसरी त्रुटि यह है कि प्रेम के विरुद्ध भारतीय साहित्य में सबसे प्रथम भीषण आक्रमण होते हुए भी शरत् बाबू इसमें भी प्रेम के ही दायरे में रह गये हैं मानो यही जीवन की एक समस्या हो मानो उन्हीं के Adjustments को ढूँढ़ना कला साहित्य विद्या का एकमात्र उद्देश्य हो मानो जीवन की और सब समस्याएँ सुलझ चुकी हों और एक यही समस्या अब मानवता के लिए रह गई हो।

कथानक की दृष्टि से शेष प्रश्न 'श्रीकान्त' 'चरित्रहीन' के सामने तो क्या 'ब्राह्मण की बेटी' 'दत्ता' 'पल्ली-समाज' आदि उपन्यासों के सामने भी टिक नहीं सकता। रस के परिपाक की दृष्टि से तथा भावुकता की दृष्टि से 'देवदास' 'चरित्रहीन' 'श्रीकान्त', 'चन्द्रनाथ' इससे कहीं अच्छे हैं। फिर भी इस उपन्यास में शरत् बाबू एक नवीन रूप में दृष्टिगोचर होते हैं। इस उपन्यास के प्रथम अध्याय से ही ज्ञात होता है कि हम एक नई दुनिया में प्रवेश कर रहे हैं मानो 'चरित्रहीन' 'देवदास' 'श्रीकान्त' की पुरानी दुनिया को छोड़कर हम एक नये जगत में आ गये हैं। भाषागत दृष्टि से इसमें

विवाह का काम ध्वंसात्मक अधिक और सृजनात्मक कम है। जिस समय पुराने समाज की जड़ से ईंट बजाई जा रही है उस समय यह स्वाभाविक है कि इस बात का कतई ख्याल न रखा जाय कि इसकी कुछ ईंटों से नये नीड़ को बनाने में शायद मदद मिल सकती है। पर उस समय यह कौन देखता है? उस समय तो तोड़ो और तोड़ो फिर तोड़ो। इसीलिये कमल सही मानों में क्रांति की अग्रदूती हो या न हो वह परिवर्तन युग के उपन्यास की नायिका के रूप में अस्वाभाविक नहीं है यद्यपि उसे अनागत समाज के आदर्श के रूप में रखने की चेष्टा अतिरंजनात्मक है। अनागत समाज का नर और नारी प्रेम के शोषण तथा एक पक्ष के लिए आत्मपीड़नमूलक रूप को दूर कर देगी पर प्रेम के उस रूप से जो मुँह नहीं मोड़ेगी। वह शारीरिक मिलन को उच्च बौद्धिक सतह पर पहुँचा देगा वह भोग का मूल्य त्याग के रूप में प्रेम या अनुरंजन का मूल्य विरह के मर्मभेदी विलाप में चुकाने से न चूकेगा पर साथ ही विरह के पंक में वह आत्मपीड़न की हद तक लोटेगा यह बात भी नहीं। जब पुराने प्रेम की सम्भावनाएं—यानी मिलन और आत्मपीड़नहीन विरह की सम्भावनाएँ खतम हो जायेंगी तब वह फिर जीवन की विराट मधुशाला से एक नया साकी ढूँढ लेगा और शायद इस नवीन साकी की शोभा में वह अपनी पुरानी खोई हुई साकी का ही पुनराविष्कार करेगा।

'शेष प्रश्न' एक परिवर्तन युग का भारतीय समाज की एक नई प्रवृत्ति का बन्धनमुक्त भारतीय नारी का सर्वबन्धनमुक्त प्रतीक है इसलिये वह निःसन्देह विश्वसाहित्य की एक सुन्दर कृति है। रहा यह कि शरत् बाबू यदि अपने उपन्यास में इस युग को पूर्ण रूप से निभा पाते तो वह उपन्यास कैसा होता और अच्छा होता या न होता यह व्यर्थ का वितंडा है। शरत् बाबू अपनी सीमाओं के कारण ऐसा कर ही नहीं सकते थे, यही क्या कम है कि उन्होंने उस ओर एक सुन्दर इंगित कर दिया। भविष्य का अनागत कलाकार ही शरत् बाबू के इस अधूरे काम को पूरा कर सकेगा।

# शरत्चन्द्र की अन्तिम कृति 'जागरण'

हम उनके असमाप्त उपन्यास के सम्बन्ध में कुछ न कहकर पहले पाठकों के सम्मुख इसका संक्षिप्त रूप रख देंगे जिससे उनके लिए हमारी आलोचना के रस को पूर्ण रूप से ग्रहण कर सकना सम्भव हो। उपन्यास का जितना हिस्सा वे लिख गए, वह ८० पृष्ठों में आया है इसलिए हम उसका थोड़े में ही सारांश देंगे। सारांश यों है—

बैरिस्टर मिस्टर आर० एम० रे का असली नाम राधामाधव राय था। वे न तो ब्राह्मसमाजी थे, कट्टर हिन्दू तो थे ही नहीं, हाँ यह कहा जा सकता है कि विलायत से लौटे हुए लोगों की बिरादरी के थे। जब वे स्कूल का दरवाजा पार करके कालेज में कदम रखने ही वाले थे तभी पाँच दिनों के अन्दर एक-एक करके उनके पिता तथा माता की मृत्यु हुई।

जमींदारी का परिवार था। पिताजी काफी धन और जमींदारी छोड़ गए थे। सबसे बड़ी बात जो वे छोड़ गए थे यह थी कि वे एक विश्वस्त तथा चतुर कर्मचारी के हाथों में जमींदारी का काम सौंप गए थे। इसका नतीजा यह हुआ था कि [illegible] के मारे [illegible] व्यर्थ गये थे और मिस्टर रे को कभी अभाव का सामना नहीं हुआ।

बैरिस्टरी पास करने के बाद जब मिस्टर रे देश में लौटे तो उन्होंने स्वाभाविक रूप से अपनी ही तरह एक साहब की शिक्षिता कन्या से विवाह कर लिया और वे यथाक्रम प्रयाग, बम्बई आदि स्थानों में प्रैक्टिस करते रहे। कहना न होगा कि उन्होंने जो साहबी ठाट अपनाया वह अपनी बैरिस्टरी की कमाई की बदौलत नहीं बल्कि जमींदारी की आमदनी की

बदौलत कायम रहा। जमींदारी से जो रुपया निकलकर भेजा जाता था उसी से उनकी साहबी का पौधा पनपता रहा। इस बीच उनके परिवार की संख्या में वृद्धि हुई और एक पुत्र तथा एक कन्या पैदा हुई। पुत्र तो बचपन में ही मर गया। पत्नी भी बहुत दिनों तक बीमार रहने के बाद चल बसी। तब से मिस्टर रे ने सदमा पाकर कह लीजिए या वैराग्य के कारण बैरिस्टरी छोड़ दी। पर साहबी ठाठ तो कायम ही रहा।

इस समय साहब की उम्र पचास से ऊपर हो चुकी थी। वे अपनी कन्या को लेकर पहाड़ के एक शहर में रहते थे। इतने में महात्मा गांधी का असहयोग-आन्दोलन छिड़ा और यद्यपि रे साहब न तो कोई राजनीतिज्ञ थे और न कोई देश-भक्त फिर भी समाचार-पत्रों के जरिये से असहयोग की लहर उनके हृदय पर भी लगी।

रे साहब समाचार-पत्र तथा आये हुए पत्रों को पढ़ने में व्यस्त थे इतने में उनकी कन्या आलेख्य बाहर जाने की पोशाक में दिखलाई पड़ी। उधर से मकान के सामने मोटर के खड़े किये जाने की आवाज भी मालूम हुई। आलेख्य का रङ्ग गोरा नहीं था क्योंकि बङ्गाली साहबों की लड़कियाँ गोरी नहीं होतीं। हाँ साबुन और पाउडर की बदौलत चमड़ी कुछ राख के रङ्ग की मालूम होने लगती है।

यद्यपि माँ ने जबरदस्ती कन्या का नाम आलेख्य रखा था और ऐसा नयापन के लिए ही रखा था फिर भी यह नाम मिस्टर रे को पसन्द नहीं था और वे उसे आलो (शब्दार्थ रोशनी) करके पुकारते थे। यह नाम उच्चारण की दृष्टि से आसान होने के कारण जल्दी ही प्रचलित हो गया और कुछ लोगों के अलावा बाकी सब लोगों को यह पता ही नहीं रहा कि जमींदार-कन्या का एक अटपटा नाम भी है। वे सब उसे आलो ही करके जानते थे।

आलेख्य ने पिता से कहा—यदि आज लौटने में कुछ देर हो जाय तो चिन्ता न करना। आज रेणु के घर में टैनिस-टूर्नामेंट है। मैं उसमें शरीक हूँ।

मिस्टर रे अपने पत्रों में डूबे हुए थे सिर उठाकर बोले—आओ बेटी देखो अजीब-अजीब बातें हो रही हैं मैंने पहले ही कहा था कि यह सब होकर रहेगा।

लड़की अपने पिता को पहचानती थी। उनके लिए दुनिया में जो कुछ होता है वह सब होकर रहेगा की श्रेणी में है और वे उसे पहले ही से जानते थे। इस कारण वह सहसा समझ नहीं पाई कि उनका किस बात से अभिप्राय है। बोली—कौन सी बात पिताजी?

मिस्टर रे ने पहले की तरह आंख मूंद कहा—पुलिस ने दो असहयोगियों को गिरफ्तार किया और मजिस्ट्रेट ने उन्हें कड़ी सजा दी है कोई छ-साल और पकड़े जायेंगे देखो क्या होता है।—कहकर उन्होंने एक लम्बी सांस ली।

आलेख्य को इन बातों में दिलचस्पी नहीं थी। अखबारों में उसे कोई रस नहीं आता था। तिस पर इस समय उस पर टूर्नामेंट का भूत सवार था फिर भी वह अपने निःसङ्ग शोकजीर्ण अकालवृद्ध पिता के आग्रह तथा आग्रह की अवज्ञा न कर सकी। वह अपने पिता से सचमुच प्रेम करती थी। कलाई घड़ी में उसने देखा कि अभी वह पिता को कुछ समय दे सकती है। बोली—उन व्यक्तियों ने क्या किया था?

मिस्टर रे बोले—जो किया था वह कोई मामूली बात नहीं है। वे गांधीजी की तरफ से असहयोग का प्रचार कर रहे थे। कहते थे मार-काट मत करो किसी अंग्रेज या भारतीय के प्रति विद्वेष न रखो सरकार के साथ कोई सम्बन्ध न रखो न उसकी नौकरी करो और न उसकी कचहरियों में न्याय की आशा से जाओ।

आलेख्य बोली—इसका तो अर्थ यह हुआ कि वे देश में अराजकतावाद फैलाना चाहते थे।

मिस्टर रे कुछ चौंककर बोले—मालूम तो ऐसा ही होता है।

आलेख्य बोली—तब तो उन्हें जेल भेजना ही चाहिए।

यद्यपि मिस्टर रे कन्या के सब वचनों से सहमत होते चले आ रहे थे

पर कन्या ने उससे जो उपसंहार निकाला उससे वे सहमत न हो सके, बोले—यह नहीं कहा जा सकता कि ये लोग जो कुछ कर रहे हैं वह सब यों ही कर रहे हैं। सरकार की तरफ से भी अन्याय हो रहे हैं।

मालेन्च सरकार के पक्ष या विपक्ष में नहीं थी पर वह यह चाहती थी कि दुनिया जैसी है वैसी रहे। बोली—उस दिन हड़ताल में मोटर पर निकलने के कारण इन्दु के पिताजी की गाड़ी के कांच तोड़ दिये गए थे यदि वह इट कांच पार करके कहीं इन्दु के पिताजी को लगती ?

मिस्टर रे को इन्दु के पिता के साथ सहानुभूति थी पर वे बोले—जब उस दिन हड़ताल थी तो मिस्टर घोष बाहर न निकलते तो अच्छा होता।

मालेन्च ने इस बात को पसन्द नहीं किया और बोली—गलत बात न मानकर उन्होंने तो साहस का परिचय दिया था।

मिस्टर रे बोले—बात गलत थी यह तुमने कैसे जाना ?

मालेन्च पिता की बात न मान सकी पर इसके साथ ही उसे स्मरण हो आया कि हड़ताल के दिन मिस्टर रे को अस्वास आया था व वैसम हो गए थे। बोली—जो लोग वैसे गए थे उन लोगों ने ठीक किया था। पर जो लोग इस गलत अनुरोध को न मान सके उन पर हेकेबाजी का अधिकार किसी को नहीं था।

मिस्टर रे ने अधिक तर्क नहीं किया। जब तक उनकी पत्नी जीवित रही तब तक वह उन्हें दबाती रही। हमेशा वह बहुत अधिक खर्च करती थी और रोक-थाम करने पर यह कहती थी कि इस जन्म में कोई भला आदमी गुजारा नहीं कर सकता। अब वे बहुत-कुछ कन्या के अधीन थे कभी उस पर अपनी राय लादने की चेष्टा नहीं करते थे। इसलिए वे बोले—जाओ तुम्हें देर हो रही है मुझे भी चिट्ठी-पत्री लिखनी है। जल्दी आना।

मालेन्च इन्दु के घर में पहुंची तो वहां सब तैयार था टूर्नामेंट अरेंज था। उसमें मालेन्च विजयी रही। इसके बाद चाय-पार्टी का दौर होते

देखकर आभास चुपके से सटककर अपनी कार में जाकर सवार हो गई। उसे अपने एकाकी पिता का स्मरण हो आया था। वह जल्दी से घर पहुँची तो देखती क्या है कि पिताजी सामान बाँधने में व्यस्त हैं। बोली—क्या बात है पिताजी ? कहीं जाने की तैयारी है क्या ? मैं जब गई थी तब तो कोई बात नहीं थी।

हाँ एक पत्र से यह मालूम हुआ कि जाना जरूरी है। मैंने तभी कहा था कि गांधी हमारा सत्यानाश करेगा। मैं समझ गया था कि ये स्वदेशी मुल्क का मिटाकर मानेंगे।

कहकर उन्होंने अपनी जेब से एक चिट्ठी निकालकर कन्या के हाथ में दे दी बोले—यदि इनको पकड़कर जेल में बन्द नहीं किया गया तो देश का सत्यानाश हो जायगा।

अभी कुछ देर पहले उन्होंने बिलकुल दूसरी ही बात कही थी। मुनीम ने लिखा था कि हाल बुरा है कोई लगान नहीं देता लोग मार काट पर भी कमर कसकर तैयार मालूम होते हैं।

पत्र पढ़कर आभास का चेहरा फक पड़ गया। बोली—पिताजी आप स्वयं जा रहे हैं ?

—जाऊँ नहीं तो क्या करूँ ? बिना गये काम नहीं बनने का। तुम चिन्ता न करो। लाट साहब से कह जाऊँगा वे आकर दोनों समय खबर ले आया करेंगे।

एकाएक आभास बोल उठी—मैं भी आपके साथ जाऊँगी। आप जाकर दूसरे कमरे में बैठें मैं सारा बन्दोबस्त किये आती हूँ।

पिता को पुत्री की बात माननी पड़ी पिता-पुत्री दोनों अपने देहाती घर में पहुँच गए। आभास पहली ही बार अपने बाप-दादों के इलाके में आई थी। यही वह कल्पवृक्ष था जिसे झकझोरते ही विलायत का खर्च अच्छे-से-अच्छे खाने-पहनने की चीजें सोना चाँदी हीरा मोती सब मिल जाते थे। उसकी माँ ने तो कभी इस तरफ ध्यान ही नहीं दिया पर वह कभी-कभी देखती थी कि जब बड़ी-बड़ी पार्टियाँ होती थीं और उनमें

मनमाने ढंग से राज होता था तो पिताजी कुछ उन्मन और दुखी होते थे। कई बार तो वे ठेक लगाने की कोशिश भी करते थे पर उनकी चेष्टा सफल नहीं होती थी। धूम धड़ाके के बीच वे दुःखी होकर एक किनारे बैठ जाते थे।

यहाँ आये हुए कुछ ही समय हुआ था कि मासम्य को ऐसा मालूम पड़ा कि यह स्थान बिलकुल रहने के लायक नहीं है। कमरों को फिर से बाकायदा मेंच कराके पेन्ट करवाने की जरूरत है। कुर्सी आदि में घटिया वार्निश है जो आँख को कष्ट देने वाली है इत्यादि-इत्यादि। सभी बाबा आदम के जमाने की है। चार-पाँच हजार व्यय हो तो किसी तरह निर्वाह हो सकता है। कन्या ने इसी प्रस्ताव को पिता के सामने रखना चाहा। मिस्टर रे उस समय एक पण्डितजी के साथ बातचीत कर रहे थे परिचय कराते हुए बोले—ये हमारे पुरोहित-वंश के हैं इन्होंने हमारे ही एक इलाके में एक पाठशाला खोली है। इन्हें प्रणाम करो।

मासम्य को यह आदेश अच्छा नहीं मालूम हुआ क्योंकि वह बहुत निकट के गुरुजनों के अतिरिक्त और किसी को प्रणाम करने की अभ्यस्त नहीं थी। एक तो अपरिचित और तिस पर पुरोहित जिनके विरुद्ध वह बचपन से इतना अधिक सुनती आ रही थी। उसने किसी प्रकार पिता की आज्ञा का पालन किया और आगन्तुक के प्रति अवज्ञा दिखाती हुई बोली—पिताजी आपने देखा है इस घर के कमरों की क्या दुर्दशा हो रही है?

मिस्टर रे बोले—ठीक तो है।

मासेम्य बोली—इसे आप ठीक कहते हैं। इन्हें फौरन नये सिरे से पेण्ट कराने की जरूरत है। ये लोग इतने दिनों से कर क्या रहे थे। पुराने आदमी कामचोर होते हैं। मैं इन्हें निकालकर तभी मानूँगी।

मिस्टर रे बोले—यहाँ पर रहना तो है नहीं रहना हो तब तो बात दूसरी है।

—मैंने समझ लिया अब बिना रहे काम नहीं चलेगा।

मिस्टर रे ने अमरनाथ से कहा—तब तो अच्छी बात है क्यों अमर नाथ ? इतने दिनों में यह समझ तो आई।

अमरनाथ ने कुछ नहीं कहा। मिस्टर रे बोले—जो रहना ही है, तो धीरे-धीरे सुधार किया जायगा।

—किया जायगा नहीं अभी करना पड़ेगा।—कहकर उसने हाथ के अंग्रेजी उपन्यास के अन्दर से एक तार निकालकर दिखलाया कि मिस्टर नाथ के परिवार के कई लोग जल्दी ही यहाँ आ रहे हैं।

मिस्टर रे बोले—तो कितने पैसे चाहिएँ ?

—मैं कह नहीं सकती पर चार बड़े कमरों में चार ड्रेसिंग टेबिल और कम-से-कम दस आरामकुर्सियाँ चाहिएँ।

सुनकर मिस्टर रे की भूख मारी गई, वे अमरनाथ से बोले—भई मैं बहुत दुख के साथ कहता हूँ कि शायद मैं तुम्हारी पाठशाला की कुछ सहायता न कर पाऊँ।

—मालूम तो ऐसा ही होता है—कहकर अध्यापक अमरनाथ हँसे।

प्रातःकाल के बदले में जब शाम हो गई, उसने आगन्तुक की सम्पूर्ण रूप से अवज्ञा करके यह गिनाना शुरू किया कि चाय और डिनर के कितने सेट अवश्य और फौरन चाहिएँ। बोली—जब वे आएँगे तो आप ग्राइट रायल इण्डियन स्टोर्स में जा करके और सवारी लेकर पता नहीं कर सकते। मैं सब-कुछ ठीक कर लूँगी आप चिन्ता न करें। इतने दिनों तक बहुत बेकार खर्च होते रहे। बेकार के लोग पलते रहे, मैं इन सबको निकाल बाहर कर रही हूँ। मैं बगान मुताबिक नौकर नियुक्त करूँगी जिससे कि आधे पैसे पर उससे काम मिले। न मालूम कितने मन्दिर हैं इनमें कितने रुपये बेकार खर्च होते हैं। एक इसी मद से मैं समझती हूँ सालाना दस-बारह हजार रुपये बच सकते हैं।

मिस्टर रे कुछ अन्यमनस्क हो गए थे पर यह सुनकर एकदम चौंक पड़े बोले—किस मद में बचाओगी ? देव-सेवा में ? यह तो पुरखों के जमाने से होती चली आ रही है, उसमें हाथ कैसे डालोगी ?

जायेंगी इस धन में उन्हें चाहे सत्य समझ लीजिये चाहे असत्य पर इसके रुपयों के आईने तथा विलायती मिट्टी के बरतन आदि खरीदे जायेंगे, तो कुछ लोग ऐसे हैं जो इस पर आवाज उठायेंगे शायद जोर से ही आवाज उठायें।

आलेख्य ने ध्यान से देखा तो यह महाशय खद्दरधारी ज्ञात हुए। उसने घूर कर देखा। बोली—आप शायद असहयोगी हैं!

अध्यापक ने उत्तर दिया—हाँ ?

—बटुकदेव किसका नाम है ?

—यह मेरा ही प्रचलित नाम है।

आलेख्य बोली—तब तो मैं सारी बात समझ गई। आप हमारी चीजों का खरीदना किस प्रकार बन्द करेंगे ? शायद लगानबन्दी करायें।

—कोई असम्भव बात नहीं है। किसानों की गाढ़ी कमाई के रुपये हैं।

आलेख्य बोली—पर मेरी भी सुन लीजिये पिताजी निरीह व्यक्ति हैं पर मैं निरीह नहीं हूँ। पुलिस से मुझे कुछ प्रेम नहीं है, पर मेरे निजी मामलों में हस्तक्षेप किया जायगा किसानों के साथ मेरा विरोध कराया जायगा तो मैं मजबूर होकर आत्मरक्षा तो करूँगी ही।

कहकर जाने लगी पर अमरनाथ ने कहा—पर आप ही यदि गलती पर हों तो

आलेख्य बोली—सम्भव है कि क्या सही और क्या गलत इस सम्बन्ध में आपकी और मेरी धारणा अलग हों।

जमींदारी के कामों में कन्या का उत्साह देखकर मिस्टर र बहुत खुश हुए। बूढ़ों और बेकारों को निकालने का कार्यक्रम जारी हुआ। आलेख्य ने ऐसे लोगों की एक सूची बनाकर मैनेजर ब्रजसुन्दर को दी। वे उस सूची के एक-एक नाम को पढ़ते जाते थे और उनका मत्था सूखता जाता था। एक नाम पर पहुँचकर बोले—यह मदन चाचुली बड़ा ही गरीब है बड़ा ही गरीब है इसका और कोई नहीं

—गरीबों के लिए और उपाय हैं।

—पर देखिये

—मैं इस सम्बन्ध में तर्क करना नहीं चाहती।

इस कारण ब्रजसुन्दर बाबू ने इन लोगों को निकालने की नोटिस दे दी पर जैसा कि होता है ये लोग सभी एक-एक दरख्वास्त लेकर पहुँचे जिसमें प्रत्येक ने अपने परिवार की लम्बाई-चौड़ाई तथा और कोई उपाय न होने का दीर्घ वर्णन किया था। पर उसका कोई असर नहीं हुआ। आलेख्य बैठकर ड्राइंग-रूम के पर्दों की डिजाइन पसन्द करने में लगी हुई थी इतने में उसे ऐसा अनुभव हुआ कि कोई अपरिचित व्यक्ति उसके सामने खड़ा है। आँख उठाकर देखा तो एक बहुत ही सुन्दर पतला फटा चीथड़ा पहने हुए बूढ़ा दिखाई पड़ा। आलेख्य ने चौंककर पूछा—कौन है? इसके उत्तर में वह बूढ़ा मुसकाकर बोला—मेरा नाम नयन गांगुली है। इस पर वह बोली—तुम यहाँ क्यों? तुम यहाँ क्यों? बूढ़ा बोला—मेरी लड़की का नाम दुर्गा है उसने मुझसे कहा बाबा तुम उनके पास जाना नौकरी अवश्य लग जायगी।

आलेख्य समझ गई कि यह निकाले हुए व्यक्तियों में है। बोली—आप जाइए, मुझसे कुछ न होगा—कहकर उसने इंगित किया।

वह आदमी फिर भी नहीं हिला बोला कि इन्हीं तेरह रुपयों पर उसकी लड़की का तथा नाती का गुजारा होता है, दामाद आसाम में नौकरी करने गया था तब से उसका पता नहीं लगा। आदमी मर चुका।

आलेख्य बिगड़ पड़ी उसने कह दिया कि ऐसी बातें सुनने के लिए मेरे निकट अवसर नहीं है। फिर भी वह आदमी अपने घर का वृत्तान्त सुनाता गया। अन्त में उसे चपरासी के द्वारा घर से निकाला गया तब छुट्टी मिली।

इसके कई दिन बाद आलेख्य घर सजाने में लगी हुई थी इतने में मैनेजर साहब एक लड़के को साथ लेकर आए, बोले—आपने कहा था कि गैर-हाजिरी के लिए नयन गांगुली के जो पाँच रुपये काटे गए थे उस

पर पुनर्विचार करेंगी, सो अब आप क्या कहती हैं? मदन गांगुली का न जाने क्या समझ आई, उसने किसी वृक्ष के बीज को खाकर आत्म-हत्या कर ली। उसकी लाश घर में पड़ी है। पुलिस आएगी तब कुछ होगा।

यह सुनकर आलेख्य के पैर के नीचे से जैसे जमीन खिसक गई। लाश की व्यवस्था आदि तो हो ही गई, पर आलेख्य के निकट कमरे को सजाना तथा उसकी पेंटिंग आदि बिलकुल अर्थहीन हो गई, अरे, यह क्या हुआ। बढ़ई और कारीगर हाट जाकर लौट गए। नये ढंग से काम करने पर यह विपत्ति हुई? उस व्यक्ति ने आत्म-हत्या करके इस प्रकार बदला लिया? केवल तेरह रुपयों के लिए आत्म-हत्या। उसके असंख्य पुत्रों में से किसी का भी दाम उससे अधिक होगा।

उस समय मिस्टर रे बाहर गये हुए थे। आज उनके लौटने की बात थी। आलेख्य आज किसी काम में जी न लगा सकी। अमरनाथ आए, आलेख्य ने उन्हें हाथ उठाकर नमस्कार किया पर अमरनाथ ने प्रति नमस्कार नहीं किया। वे बोले—काम से आया हूँ मैं जानता हूँ कि आप को बहुत दुःख पहुँचा है पर यह आपने क्या किया कि हाट के दिन बाहर से पुलिस बुला ली?

आलेख्य चौंक पड़ी। यहाँ आने के अगले दिन ही उसने बिना कुछ समझे-बूझे पिताजी को बिना बताये हुए मजिस्ट्रेट को एक पत्र लिख दिया था। उसकी तामील में देर होते देखकर वह यह धारणा बना चुकी थी कि शायद वह पत्र पहुँचा ही नहीं या उस पर ध्यान नहीं दिया गया। बोली—जाने दीजिए, क्या नुकसान है?

अमरनाथ बोले—आप बाहर रहती हैं आपको पता नहीं है, पुलिस आयगी तो कुछ-न-कुछ ज्यादती करेगी, जीन-जेल निकालेगी और ताज्जुब नहीं कि हम लोगों में से दो-चार अपनी जानों से हाथ धो बैठें।

आलेख्य ने पूछा कि ऐसा क्यों होगा, इसके उत्तर में अमरनाथ बोले कि लोग जिन बातों को सहज मान लेते थे अब वे उन्हें मानने के लिए तैयार नहीं हैं। पर आलेख्य बोली कि मुझे झूठ-मूठ डराया न जाय मैं

डरती नहीं हूं।

अभी-अभी सन्ध्या हुई थी। आलेख्य परेशान बैठी हुई थी इतने में एक व्यक्ति पर्दा हटाकर भीतर घुसा और बोलने लगा—डरो मत बेटी मैं भीख माँगने नहीं आया हूँ, ईश्वर की कृपा से मेरी हालत कुछ बुरी नहीं है। मुझे पढ़ी-लिखी विलायत से लौटी हुई स्त्रियों के सम्बन्ध में बड़ा कौतूहल है इसलिए

—मैं खास बनी हुई हूं इसी कारण

उस व्यक्ति ने कहा—मेरा नाम निमाई है मैंने अमरनाथ से सारी बातें सुनी हैं। मगन गांगुली वृद्धावस्था में सारी बातें सह न सका इसलिए उसने आत्म-हत्या कर ली। अभी तक वे श्मशान से नहीं लौटे। उसकी लड़की डाढ़ मारकर रो रही है। लघु पाप में गुरु दण्ड कितने ही लोगों को होता है। जो हुआ सो हुआ। फिर भी परिताप तो होता ही है।

आलेख्य एक अपरिचित के अयाचित उपदेशों से मन-ही-मन बिगड़ रही थी बोल उठी—यह आपको किसने कहा?

—अमरनाथ ने कहा।

—पर मैं तो अपना इसमें कोई अपराध नहीं देखती। क्या बेकार आदमी को निकालना अपराध है?

—अमरनाथ ने अपराध के विषय में कुछ नहीं कहा। तुम समझती हो कि मैंने कर्तव्य किया। पर कर्तव्य की बात कहकर तुम इस बूढ़े को चुप नहीं करा सकतीं। वह दुखिया बूढ़ा तुम्हारे ही अन्न से आजीवन पलता रहा अन्त में तुम्हारे ही भय से कोई रास्ता न सूझने के कारण उसने आत्म-हत्या कर ली। अब उसकी लड़की पितृ-शोक में निरुपाय होकर रो रही है नाती रोते-रोते श्मशान गया है। यहाँ कर्तव्य की बात कहकर अशोभनता को कैसे ढाका जा सकता है।

अब तक आलेख्य किसी तरह रुकी रही पर अब उससे रुका नहीं गया और वह एकदम फुफकारकर रोने लगी। बूढ़े निमाई ने सान्त्वना देने की कोई चेष्टा नहीं की। पाँच-छः मिनट बाद बोले—बेटी यह तो

मुझे मालूम था। नहीं तो काहे की शिक्षक हूँ और काहे की विद्या?

मासेम्म बोली—मैं आपके देश में रहने के लिए आई थी पर अब तो मुँह दिखाने की भी गुंजाइश नहीं रही।

बातचीत होती रही। मासेम्म ने बातचीत के दौरान कहा कि मदन गांगुली से सहानुभूति रखते हुए भी वह यह समझने में असमर्थ है कि उसने कोई गलती की है। इस पर निमाई बोले—मैं बूढ़ा हो चुका हूँ। शायद वह दिन देखकर न जा सकूँ पर इस बात को बेटी तुम निश्चित रूप से जान लो कि आज जिन पर अकर्मण्य और बेकार होने का फतवा तुम जारी कर रही हो कल उन्हीं के बाल-बच्चों के सामने तुम्हें इस बात का जवाब देना पड़ेगा कि तुम स्वयं किस लायक हो। उस दिन मानवता की कचहरी में जमींदार होने के नाते तुम्हारी अर्जी नहीं सुनी जायगी। दुनिया म बुद्धिमानों ने अब तक इन्हें अफीम खिलाकर सुला रखा था पर आज अकस्मात् भूख की ज्वाला से उनकी नींद खुल गई है। यदि उनका पेट नहीं भरा तो नीति-शास्त्र के वचन और पुराने कानूनों के रौब में आकर वे शान्त होंगे ऐसा नहीं ज्ञात होता।

इसी प्रकार दोनों में बातचीत होती रही। दोनों अपनी-अपनी हाँकते रहे। मासेम्म एक समय बोली—असली बात तो यह है कि आप पण्डित लोग अंग्रेजी शिक्षा के विरुद्ध हैं। इसलिए आप लोग अपनी सब बातों को अच्छी और दूसरों की सब बातों को बुरी समझ लेते हैं। जब तक आप उनकी विद्याओं तथा विज्ञान को पढ़ और समझ नहीं लेते तब तक आप निष्पक्ष होकर किसी बात पर विचार नहीं कर सकते। ऐसा स्वाभाविक ही है।

वृद्ध पंडित कुछ देर तक सिर झुकाकर सोचते रहे फिर बोले—अज्ञान-गोपन से अपराध हो रहा है। तुम्हें यह बता देना चाहिए था कि मैं अपने जमाने में कालेज का नामी अध्यापक था। मेरे ही मातहत शिक्षा पाकर अमरनाथ ने एम ए पास किया। तुम जिस विद्या और विज्ञान की बात कर रही हो उस पर सम्पूर्ण अधिकार तो क्या होता पर बिलकुल

अनभिज्ञ हूँ ऐसा भी कहना गलत होगा ।

सारी बात सुनकर आलेख्य चौंक पड़ी जैसे किसी ने उसको मारा । बूढ़े पंडित उसके चेहरे की तरफ देखकर सारी परिस्थिति समझ गए, बोले—बेटी तुम थकी हुई हो जाओ यदि अमरनाथ पर कोई विपत्ति न पड़ी हो तो कल आकर दोनों तुमसे फिर मिलेंगे—कहकर वे चले गए ।

अगले दिन रे साहब जब घर पर लौटे तो उन्हें अमल गांगुली की आत्म-हत्या की बात का पता लगा । कन्या से कुछ भी न पूछकर वे सीधे उसके घर गए और घण्टों बाद जब लौटे तब उनका चेहरा पहले से प्रसन्न था । लौटकर भी उन्होंने कन्या से कुछ नहीं पूछा । जब उधर से कोई बात नहीं आई तो आलेख्य ने ही पूछा—उनकी कोई व्यवस्था कर आये पिताजी ?

—नहीं कोई विशेष व्यवस्था नहीं की ।

—क्यों कर क्यों नहीं आये ?

—बेटी सम्पत्ति तुम्हारी है । तुम्हारे हाथों में सब-कुछ सौंपकर मैंने छुट्टी ले ली है । इसकी अच्छाई-बुराई सब तुम पर छोड़ी हुई है ।

आलेख्य ने करुण कण्ठ से कहा—यदि नासमझी में मैंने कोई गलत बात कर डाली है, तो क्या उसका प्रतिकार आप नहीं करेंगे ?

—नहीं मैं ही कौन-सा बड़ा बुद्धिमान हूँ । कम-से-कम इसका प्रमाण तो मैं आज तक न दे सका । यदि नासमझी में तुमने कोई गलती की है तो जो बुद्धि देने के मालिक हैं वे ही तुम्हें बुद्धि देंगे ।

आलेख्य धीरे से बोली—पिताजी जब तक आप मौजूद हैं तब तक इसका बोझ मुझ पर मत डालिये ।

थोड़ी देर दोनों चुप रहे । फिर आलेख्य बोली—लौटने के बाद से आपने मुझसे बात नहीं की । मैं तो खूब जानती हूँ कि मैंने बहुत गलत काम किया पर मैं यह स्वप्न में भी नहीं सोच पाई थी कि वे हमें इतनी बड़ी सजा दे जायेंगे ।

रे साहब लड़की को पास खींचकर सान्त्वना देते रहे बोले—तुम

तो जानती हूँ बेटी कि दुनिया में मैं तेज कदम से चल नहीं पाता इस कारण सबसे पीछे रह जाता हूँ। मुझे सुस्ती का ही रास्ता भाता है।

—मुझे यही पसन्द है।

—पसन्द है तो चलो पर यह कभी न समझो कि मेरे रास्ते को कबूल करने के लिए तुम मजबूर हो।

मालेक्स बोली—अब मैं आपको देखकर यह समझ रही हूँ कि दौड़कर चलना आगे बढ़ना नहीं है। आप जब पीछे रह जाते थे तो हम या समझती थीं कि आप पीछे हैं पर अब मैं समझ गई।

मालेक्स ने निमाई पण्डित की बात कही। इस पर रे साहब बोले—अच्छा वे जीवित हैं? ऐसा असली आदमी तो दुर्लभ है। बेटी उनकी किसी तरह हमारे यहाँ अवमानना तो नहीं हुई?

मालेक्स ने कहा कि नहीं। बात-बात में फिर नयन बाबू की बात आ गई। रे साहब बोले—पहले के युगों में भी एक दूसरे पर निर्भर होता था पर ऐसा नहीं था कि एक अपमान आते ही आत्म-हत्या करने की नौबत आये। उस जमाने में दो मुट्ठी अन्न तो सबको ही अपने घर में मिलता था।

मालेक्स बोली—दुनिया में धनी और दरिद्र रहें तो रहें, पर इस तरह से एक का दूसरे पर इतना निर्भर होना किसी भी तरह मंगलकारक नहीं हो सकता। न तो धनी के लिए ही यह मंगलकारक है और न दरिद्र के लिए ही। आप कहते हैं कि नयन बाबू का दिमाग कुछ फिरा हुआ था हो सकता है पर मैं इस बात को भूल नहीं सकती कि मेरे एक दर्शन से उनके पाँच साल की आयु घटित है। न मालूम और कितनों की मृत्यु का इतिहास हमारे पूर्वों आचार्यों आदि की परतों में लिखा हुआ है।

इन बातों को सुनकर रे साहब चौंक गए, बोले—जाने भी दे। ऐसी बातें सोचने पर गृहस्थी एक मिनट के लिए चल नहीं सकती।

मालेक्स बोली—पिताजी आप ऐसा कह रहे हैं क्योंकि आपके आगे

पर किसी बूढ़े की मृत्यु की कलङ्क-रेखा नहीं है।

इतने में ज्ञात हुआ कि आज ही सन्ध्या समय इन्दुमती और कमल किरण आ रहे हैं। तैयारी तो थी ही और तेजी हो गई। डिनर बड़े ठाट से गया। इतने में खबर आई कि कोई रे साहब से फौरन मिलना चाहता है। मालूम हुआ कि अमरनाथ है। रे साहब ने कहा—उसे यहीं ले आओ।

आगन्तुक अधिकृत हुई पर वे वहीं बुलाये गए। अमरनाथ के सिर पर एक बैंडेज बँधा हुआ था। रे साहब ने पूछा—मामला क्या है?

अमरनाथ ने कहा—नहीं पुलिस ने नहीं मारा। बल्कि कुछ लोगों ने ही मारा है। कुछ भी नहीं मगर थोड़ा-सा रक्तपात हुआ है।

रे साहब ने कहा—हुआ तो हमारे हाट में ही न? अच्छा जी तुम कुछ खाये-पीये नहीं मालूम होते हो? यहाँ तो शायद तुम्हारे खाने की कोई व्यवस्था न हो सके क्यों क्या कहते हो?

अमरनाथ मुस्कराये बोले—नहीं।

रे साहब ने अमरनाथ को विदा कर दिया। अब कमलकिरण आदि ने उस पर बातचीत शुरू कर दी। कमल ने पूछा—यही शायद आपके किसानों को भड़काता रहता है। यह हाट में गया क्यों था?

—विलायती कपड़े की बिक्री रोकने।

—यानी असहयोग का छोटा-मोटा पंडा है।

—हाँ।

कमल बोला—अब इस पर मुकदमा चलाना चाहिए। कम-से-कम मेरा मार्केट होता तो मैं ऐसा ही करता।

रे साहब कुछ देर चुप रहकर बोले—उससे जितना लाभ होता उससे अधिक क्षति होगी।

इसी प्रकार और भी आलोचना होने लगी। नतीजा यह हुआ कि रे साहब को डिनर में कोई रस नहीं आया।

अमरनाथ फिर आया और अपना दृष्टिकोण समझा गया। उसने

कहा—मुझ पर जिन लोगों ने हाथ उठाया है मैं यह चाहता हूँ कि उन पर किसी तरह की कार्रवाई न की जाय।

आलेख्य बोली—यह आप हम पर छोड़ें।

कमल ने कहा—और क्या ? जो हमारी जिम्मेदारी है हम उसे देखेंगे। क्यों मिस्टर रे ?

रे साहब कुछ नहीं बोले। सबका मुँह ताकने लगे। बोले—इस पर शान्त चित्त से विचार हो।

अमरनाथ बोले—जमींदार और किसान के अतिरिक्त दुनिया में और लोग भी हैं और कोई उनकी बात पसन्द करे या न पसन्द करे, उनका अस्तित्व लुप्त नहीं हुआ जाता।

आलेख्य का चेहरा कड़ा पड़ गया बोली—अंग्रेजी में एक शब्द है 'बिजी बॉडी' ये सर्वत्र मिलते हैं। हम अपने किसानों के सम्बन्ध में क्या करेंगी यह हमारा कार्य है पर यदि कोई व्यर्थ में हस्तक्षेप करे तो उसको ठीक रास्ते पर लाने के लिए हमें अपना कर्तव्य करना पड़ेगा।

कन्या की बात सुनकर रे साहब बहुत क्षुब्ध हुए, बोले—बेटी तुम लोगों के कामों से तुम लोगों की बातचीत कहीं अधिक कड़वी हो रही है। विशेषकर जब कि अमरनाथ तुम्हारे घर पर आये हुए हैं।

—अमरनाथजी सम्भ्रान्त व्यक्ति हैं यदि मुझे कोई बात कहनी है तो मैं अपनी बात और कहीं कह सकती हूँ। इसकी क्षमा उनसे अवश्य मिल जायगी और यदि अपराध हुआ ही हो तो उसे सम्पूर्ण कर देना चाहिए। अमरनाथ बाबू के साथ हमारे विचार नहीं मिलते इस कारण वे हमारे किसानों को हमारे विरुद्ध भड़कायेंगे इसे मैं उचित नहीं समझती।

आलेख्य ने उस व्यक्ति का नाम जानना चाहा जिसने अमरनाथ पर प्रहार किया था। पर अमरनाथ ने यह कहकर बताने से इनकार कर दिया कि इस कौतूहल को दमन करना ही पड़ेगा। आलेख्य बोली—यदि वे हमारे किसान न होते तो मैं नाम न पूछती।

—आप उन्हें सजा देना चाहती हैं और मैं यह समझता हूँ कि सजा देने से प्रतिकार नहीं होता।

—अन्याय का प्रतिकार सजा से ही होता है।

अमरनाथ बोला—मैं इस विषय पर आपसे तर्क करना नहीं चाहता। इतना मैं जानता हूँ कि अन्याय और अज्ञान ये दोनों एक चीज नहीं हैं। सजा देकर अज्ञान का प्रतिकार नहीं होता। उसके लिए कुछ और ही बात चाहिए।

अमरनाथ ने थोड़ी देर रुककर कहा—उन्होंने हमें मारा जरूर है, पर इस पर उन्हें सजा देने से बढ़कर मूर्खता और कुछ नहीं हो सकती। —कहकर अमरनाथ उठ खड़े हुए, और चलने के लिए उद्यत दिखाई पड़े।

रे साहब ने अकस्मात् कमलकिरण से पूछा—क्यों कमल तुम्हारी क्या राय है?

फिर रुककर स्वयं ही अमरनाथ से बोले—जब तुम नहीं चाहते तो फिर हम क्यों झगड़ा करें?

पर मालश्री बोल उठी—झगड़ा तो इन्होंने खड़ा किया और अब उसका अभिमान कौन सुनते?

अमरनाथ ठिठककर खड़े हो गए, बोले—अच्छी बात है। यदि आप लोगों को मेरी बात पसन्द नहीं है तो अपने ढंग से चलिए। मैं तो सजा देना निरर्थक मानता हूँ।

मालश्री बोली—जो एक बाहरी व्यक्ति के लिए निरर्थक है, वह जमींदार के रूप में हमारे लिए निरर्थक शायद न हो इतना तो आप समझते होंगे।

कमलकिरण बीच में बोल पड़ा—हम अपनी जिम्मेदारी का अपने ही हाथों में रखेंगे। एक थर्ड परसन को बीच में पड़ने की कोई जरूरत नहीं है। क्यों मिस्टर रे आपकी क्या राय है?

रे साहब सबका मुँह ताकने लगे। कुछ देर सोचकर बोले—अभी इस बात पर अन्तिम फैसला कर ही डालना पड़ेगा ऐसी कोई बात नहीं

है। बाद को शान्त होकर इस विषय पर विचार हो सकता है।

अब अमरनाथ निकल गए। उनके जाने पर आलेख्य बोली—पिता जी जब तक आप मौजूद हैं तब तक आप ही जमींदारी के मालिक हैं। यदि आप यह चाहते हैं कि मैं ही सब काम-काज देखूं तो आप मुझे इस बात के लिए न कहें कि कभी इधर चलूं कभी उधर। इससे तो अच्छा है कि पहले जैसा चल रहा था अब भी वैसा ही चले।

पर मिस्टर रे ने कुछ नहीं कहा। इसका अर्थ दूसरों ने भले ही कुछ न समझा हो पर आलेख्य समझ गई। बोली—इससे उन्हें प्रोत्साहन मिलता है। देश में जो वातावरण उत्पन्न हुआ है उसमें एकाएक कुछ नाम बुद्ध और ईसा बनकर बैठ गए हैं। न मालूम कैसे ये लोग ऐसा समझ बैठे हैं कि जिनका कुछ है उनको नुक्सान पहुँचाया जाए जिनका कुछ नहीं है उनका भला होगा।

कमलकिरण अब तक अपने को रोके हुए था बोला—जैसे पिताजी की गाड़ी के कांच के शीशे तोड़ दिए गए।

आलेख्य बोली—ऐसी बातों को सहन नहीं करना चाहिए।

कमलकिरण बोला—पिताजी की यही राय है।

आलेख्य बोली—मुसीबत तो यही है कि हमारे पिताजी की यह राय नहीं है। पिताजी आप तो जानते हैं कि इतने दिनों तक न देखने के कारण जमींदारी की सारी पद्धति में घुन लग चुका है। यदि मैं इसे साफ करना चाहूँ और कोई इस कारण आत्म-हत्या कर ले तो मैं क्या करूँ? यदि ऐसा ही चलेगा तो हम लौट जाएँ।

रे साहब बोले—पर अमरनाथ तो ऐसा नहीं है कि वह किसी को व्यर्थ में विपत्ति में डाले।

कमलकिरण बोल उठा—बल्कि मैं तो यह समझता हूँ कि अमरनाथ की तरह अशिक्षित देहाती ब्राह्मण गाँव के लोगों को भड़काने के लिए

वह इतना ही कह पाया था कि उसने आलेख्य के मुँह की ओर देखा तो उसकी बात बन्द हो गई। अब उत्तर प्रत्युत्तर की जो धारा अनर्गल

रूप से चल रही थी वह रुक गई। कमलकिरण ने अपनी बातों की आलेख्य की ओर से जिस प्रतिक्रिया की आशा की थी वह नहीं आई। अब जो बातचीत हुई वह अमरनाथ के कथित हस्तक्षेप से उत्पन्न परिस्थिति पर हुई। आलेख्य बोली—पिताजी कई बार आपने हमारा प्राप्य लगान माफ कर दिया।

मिस्टर रे मुस्कराकर बोले—प्राप्य माने न्याय-संगत नहीं यह तुम समझ लो बेटी। जो हमारा प्राप्य है वह किसानों के लिए न्याय-संगत देय नहीं भी हो सकता है। कमलकिरण इसका अर्थ नहीं समझ सका पर आलेख्य समझ गई। सौभाग्य से बात दूसरी ओर मुड़ी और आलेख्य ने प्रस्ताव किया कि गाव से जमींदारी की यात्रा की जाय। रे साहब ने कहा—मैं घर पर रहूंगा और दूसरे लोग जायें।

एक दिन रे साहब अपने एक मित्र की बीमारी की खबर पाकर चल पड़े तो कमलकिरण की बहन इन्दु भी उनके साथ गई। दोनों पैदल चले। गाँव के घर आदि देखकर इन्दु ने बहुत कौतूहल प्रदर्शित किया केवल यही नहीं वह बोल उठी कि उसे गाँव का जीवन बहुत पसन्द है, यहाँ तक कि उसने कहा कि मैं गाँव म रहना पसन्द करूंगी। इन्दु इसी तरह बहुत कुछ कहती रही पर रे साहब कभी उत्तर देते थे कभी नहीं देते थे। दोनों ने यह तय की कि रे साहब तो अपने मित्र के पास जायें और इन्दु घूम घामकर गाँव और मैदान देखे। अलग होते समय रे साहब बोले—मैदान पार करने पर अमरनाथ की पाठशाला मिलेगी। यदि उधर निकल पड़ो तो अमरनाथ से कहना कि मुझसे मिल।

इन्दु उधर ही निकल पड़ी और अमरनाथ से मिली। अमरनाथ उसे अपने घर ले गए तो उनकी माँ तथा बहन ने उसका बड़ा स्वागत किया। इन्दु को य लोग बहुत ही अच्छे लगे। कितने सरल और साफ-सुथरे थे यद्यपि गरीब थ।

इतना ही लिखकर शरत् बाबू और आगे न लिख सके। यह उपन्यास धारावाहिक रूप से मासिक 'बसुमती' में निकल रहा था। इस विषय पर

अनुमान लगाना व्यर्थ है कि शरत् बाबू इस उपन्यास में आगे क्या करते पर इतना तो निश्चित रूप से कहा जा सकता है कि वे इस उपन्यास में वैयक्तिक तथा पारिवारिक बातों तक अपने को सीमित न रखकर नई जमीन तैयार कर रहे थे। स्पष्ट ही यह एक राजनैतिक उपन्यास होता। राजनीतिक भी ऐसा कि उसमें साम्यवाद का पूरा पुट दिखाई पड़ता है।

यह स्पष्ट है कि इस उपन्यास में शरत् बाबू जमींदारी प्रथा की निरर्थकता तथा उससे उत्पन्न आलस्य प्रमाद कुसंस्कारों का भंडाफोड़ करने और इस प्रकार उसके चले जाने में ही कल्याण है यह बात अच्छी तरह दिखाने पर तुल गये थे पर साथ ही वे उससे इतने विद्विष्ट नहीं थे कि उसके उज्ज्वल पहलुओं को भूल जाएं। तभी उनका चित्रण इतना सुन्दर बन पड़ा है और चन्द पृष्ठों के अन्दर ही हमारे सामने एक द्वन्द्वात्मक चित्र उभर कर सामने आ जाता है। शरत् बाबू को जमींदार से नफरत है विशेष कर उसका वह रूप जो कुमारी आलेख्य में मूर्त है उससे घृणा है पर साथ ही उन लोगों से भी उन्हें वितृष्णा है जो जमींदारी में व्यर्थ पल रहे हैं। अक्सर शरत बाबू पर भावुकता का दोष लगाना एक आम बात हो गई है, कुछ नये लेखक शायद समझते हैं कि इस प्रकार शरत् की प्रतिभा पर यह लांछन लगाकर अपनी प्रतिभा पर चार चाँद लगा सकते हैं पर यह उनकी अदूरदर्शिता है। शरत मुख्यतः पुरुष और स्त्री के पारस्परिक सम्बन्धों के कलाकार थे पर पथ के दावेदार, शेष प्रश्न जागरण आदि में तो वह इतना आगे बढ़ चुके थे कि वे लेखक जो उन पर भावुकता का लेबल लगाकर साहित्य के कूड़ेखाने में डाल देना चाहते हैं वे अभी तक उनकी ऊँचाई के पास भी नहीं फटक सके।

# साहित्य-सृजन पर शरत् के विचार

यों तो शरत्चन्द्र ने उपन्यास ही लिखे पर उन्होंने अपने 'देना-पावना' नामक उपन्यास को १९२७ में नाटक का रूप दिया। इस नाटक पर रवीन्द्र और शरत् में कुछ पत्र-व्यवहार हुआ जो बहुत ही दिलचस्प है और जिससे इन दोनों महारथियों के साहित्य-सम्बन्धी विचारों पर अच्छी तरह प्रकाश पड़ता है।

शरत्चन्द्र ने 'देना-पावना' पर आधारित नाटक 'षोडशी' की एक प्रति रवीन्द्रनाथ को भेजी। रवीन्द्रनाथ ने उस पर लिखा—"तुम्हारी 'षोडशी' मिली। बंगला साहित्य में अच्छे नाटक नहीं हैं। तुममें नाटक लिखने की शक्ति होती तो मैं आग्रह करता क्योंकि नाटक साहित्य का एक श्रेष्ठ अंग है। मेरा विश्वास है कि तुममें नाटक लिखने की शक्ति है। जब भीतर की प्रकृति और बाहर की आकृति ये दोनों सही रूप से मिल जाती हैं तभी चरित्र-चित्रण सुन्दर होता है। मेरा विश्वास है कि यदि तुम्हारी लेखनी ठीक तरह से चले और इस रूप के साथ भाव का तालमेल बैठा सके तो तुम बहुत कुछ कर सकते हो क्योंकि तुममें पैनी दृष्टि है, चिन्तनशील मन है, इसके अलावा इस देश के लोक-चरित्र के सम्बन्ध में तुम्हारी अभिज्ञता का क्षेत्र भी विस्तृत है। पर यदि तुम वर्तमान काल के दावों और भीड़ की अभिरुचि से छुटकारा न पा सको तो तुम्हारी यह शक्ति प्रतिहत होगी। सभी महान साहित्यों का परिवेष्टित सुदूर विस्तृत होता है, जो साहित्य उसमें तालमेल रखकर चल सकता है वही टिकाऊ होता है पर जब आस-पास के लोगों का असर दीवार बनकर उसे संकीर्ण दायरे में कैद कर लेता है तो वह कुण्ठित होकर असमर्थ हो जाता है।

तुमने 'षोडशी' में वर्तमान काल को खुश करना चाहा है और इसका मूल्य भी तुम्हें मिला है, पर तुमने अपनी शक्ति के गौरव को खूब कुण्ठित किया है। तुमने जिस षोडशी का चित्रण किया है, वह आज के युग की फर्मायशी ममगढ़न्त वस्तु है। वह भीतर और बाहर से सत्य नहीं है। मैं यह नहीं कहता कि इस प्रकार की भैरवी नहीं हो सकती, पर हो भी तो जिस भाषा और जिस ढांचे के अन्दर वह संभव होती, वह आजकल में अखबार पढ़े हुए चेहरों के अन्दर नहीं मिलती। जिस कहानी के अन्दर हम लोगों के सोचा की वास्तविक भैरवी आत्म प्रकाश कर सकती थी, वह कहानी और ही होती। कलाकार के रूप में तुम्हारा कर्तव्य यह था कि भैरवी को एकान्त सत्य बना देते, न कि आधुनिक काल की चलती भावुकता मिश्रित लोकरंजक कहानी की रचना करते।

मैं जानता हूँ कि तुम मेरी बात से नाराज होगे, पर तुम्हारे प्रति मेरी श्रद्धा होने के कारण ही मैंने सरल मन से अपनी राय बताई, नहीं तो कोई जरूरत नहीं थी। तुम साहित्य के प्रकाण्ड साधक हो, यदि इन्द्र भगवान मामूली प्रलोभन दिखाकर तुम्हारा तपोभंग कर पाए तो उससे साहित्य को ही हानि पहुँचेगी। तुम वर्तमान युग से अर्घ्य लेकर खुश हो सकते हो, पर सर्वकाल के लिए क्या छोड़ जाओगे ?

४ फाल्गुन १३३४। —रवीन्द्रनाथ ठाकुर"

इस प्रकार रवीन्द्रनाथ ने कई मौलिक बातें उठाईं, जो प्रत्येक साहित्यकार के लिए विचारणीय हैं, एक तो यह कि वर्तमान की माँग पर भविष्य का बलिदान नहीं करना चाहिये, दूसरे जिस चरित्र का सृजन करना है कहानी उसके अनुरूप होनी चाहिये।

इसके उत्तर में शरत्चन्द्र ने काफी विस्तार के साथ एक पत्र लिखा जो इस प्रकार था— 'मुझे आपका पत्र मिला। बीमारी के कारण यथा समय उत्तर न दे पाने पर मैं अपराधी हो गया। मैंने षोडशी के सम्बन्ध में आपका मत श्रद्धा और कृतज्ञता के साथ ग्रहण किया है, पर मुझे भी जो

एक बात कहनी है क्योंकि यह केवल मेरा वैयक्तिक विषय नहीं है, बल्कि मामूली तौर पर बहुतों के जीवन में ऐसी बात घटित होती है इसीलिए आपको सारी बात बताना जरूरी है।

मैंने यह नाटक अपने एक उपन्यास पर आधारित करके लिखा है। मैं उपन्यास में जितनी बातें कह पाया और चरित्र चित्रण के लिए जितने प्रकार की घटनाओं का समावेश कर पाया नाटक में उतना नहीं कर पाया। काव्य की दृष्टि से भी नाटक का विस्तार कम होता है और व्याप्ति की दृष्टि से भी इसका स्थान संकीर्ण होता है। इसलिए लिखते समय बार बार मेरे मन पर यह बोझ बना रहा कि ठीक नहीं हो रहा है, फिर जब उपन्यास ही इसका आधार था तब कौन-सा रूप नहीं हो सकता है? मैं यह भी मान नहीं पाया। शायद उपन्यास से नाटक प्रस्तुत करने की चेष्टा करने पर यह बात स्वाभाविक है। एक तरफ से तो काम शायद सरल हो जाता है पर दूसरी तरफ प्रचुर मात्रा में दुविधा भी हो जाती है और ऐसा हुआ भी है। और एक कारण है। इस जीवन में विभिन्न अवस्थाओं से होकर गुजरते समय बहुत-सी वस्तुएँ सामने आईं इसी से अपने लोक-चरित्र के सम्बन्ध में मेरी अभिज्ञता बढ़ाई है पर बहुत कुछ देखना और जानना साहित्यिक के लिए विशुद्ध भलाई है या नहीं इस सम्बन्ध में मेरे मन में सन्देह उत्पन्न हुआ है क्योंकि अभिज्ञता से केवल शक्ति प्राप्त ही नहीं होती बल्कि कई बार शक्ति का हरण भी हो जाता है फिर सामाजिक सत्य साहित्य का सत्य नहीं भी हो सकता है। शायद यह पुस्तक इसी का एक उदाहरण है। मैंने इसे एक अत्यन्त घनिष्ठ रूप में जानी हुई वास्तविक घटना पर आधारित करके लिखा है।

पर यह जानना ही मेरे लिए विपरीत हो गया। लिखते समय वैसे यह ज्ञान बराबर मुझसे जिरह करता रहा और इस प्रकार उसने न केवल मेरी कल्पना के आनन्द और गति को ही बाधा पहुँचाई बल्कि एक हद तक विकृत भी किया। सत्य के साथ कल्पना मिलाने की चेष्टा करने पर शायद ऐसा ही होता है। संसार में जो घटना सचमुच ही घटित हुई है उसके

यथातथ्य वर्णन से इतिहास की रचना हो सकती है, साहित्य नहीं रचित हो सकता। और मेरी पोड़शी सत्य के साथ कल्पना का मिश्रण है। इस तरीके से जनता से तो यथेष्ट आदर प्राप्त हुआ पर आपसे मूल्य नहीं प्राप्त हुआ। इस प्रकार बाहर से मिली हुई सारी प्रशंसा बेकार पड़ गई।

'इसी प्रकार मेरी एक अन्य पुस्तक 'पल्ली-समाज' (देहाती समाज) है। इसकी बिक्री बहुत हुई और ख्याति भी यथेष्ट मिली फिर भी लोग इसकी जितनी ही प्रशंसा करते हैं, मैं मन ही मन उतना ही लज्जित होता हूँ, मैं जानता हूँ कि यह टिकाऊ नहीं है क्योंकि यह भी सत्य और मिथ्या मिलाकर है। मिथ्या बल्कि टिक सकती है पर सत्य की बुनियाद पर जो असत्य है उसके ढहने में देर नहीं लगती। यह बात ऐसी है कि एका-एक उलटी मालूम पड़ती है।

"एक समय था जब मैं केवल चित्रकारी करता था। चित्र में इसका सिर और उसका धड़ तथा किसी का पैर एक करके अद्भुत चीज खड़ी की जा सकती है क्योंकि वह केवल बाहर की वस्तु है आँख से देखकर ही उस पर विचार हो सकता है पर साहित्य में चरित्र सृजन के मामले में यह बात नहीं चलने की। मनुष्य के मन की सारी खबरें पाना कठिन है वहाँ अपने ख्याल या प्रयोजन के अनुसार इसका कुछ और उसका कुछ और, कुछ सत्य कुछ कल्पना आदि की पैबंदबाजी करके लोगों को चुप किया जा सकता है पर कहीं पर बहुत बड़ा गोलमाल रह जाता है और बाद को चलकर वह गोलमाल पकड़ में आता है। क्या मालूम शायद इसीलिये आजकल वास्तविक प्रकार साहित्य की चलन शुरू हो गई है। उसमें ढेर से लोग आते हैं सभी छोटे हैं सभी सत्य हैं सभी हीन हैं किसी में कोई विशेषता नहीं है यानी जैसा कि संसार में देखा जाता है। फिर भी सारी पुस्तक पढ़कर यह प्रश्न उठता है कि उससे क्या लाभ हुआ। कोई शायद कहे कि लाभ तो कुछ भी नहीं है यों ही है बीच-बीच में शायद अत्यन्त साधारण मामूली विषय का ब्यौरेवार वर्णन और रस चित्रण रहता है। उसकी भाषा और आडम्बर देखने लायक होता है, पर

मन तृप्त नहीं होता तो भी लोग कहते हैं कि यही साहित्य है।

षोडशी नाटक के सम्बन्ध में आपने ठीक-ठीक क्या कहा है यह मैं समझ नहीं पाया। केवल इतना ही समझ पाया कि यह ठीक नहीं रहा और इस पर आपकी दृष्टि गई।

"आपने परिप्रेक्षित का उल्लेख किया है। चित्रकारी में दूरी के अनुसार बड़ी चीज छोटी, गोल वस्तु चपटी, चौकोर चीज लम्बी और सीधी चीज टेढ़ी दिखाई पड़ती है। कितनी दूरी पर किस स्थिति में वस्तु का आकार प्रकार किस हद तक परिवर्तित होगा इसका भी एक नियम है। कैमरा जैसे यन्त्र को भी इस नियम से छुट्टी नहीं मिलती पर साहित्य के मामले में इस तरह का कोई बँधा हुआ नियम या कानून नहीं है। सारी बातें लेखक की रुचि और विचार-बुद्धि पर निर्भर करती हैं। अपने को कहाँ और कितनी दूरी पर खड़ा रखना होगा इस सम्बन्ध में कोई निर्देश नहीं है इसलिए चित्र का परिप्रेक्षित और साहित्य का परिप्रेक्षित शाब्दिक रूप से एक होने पर भी काम की दृष्टि से एक नहीं है। इसके अलावा साहित्य का वर्तमान काल जितना बड़ा सत्य है भविष्य किसी प्रकार से भी ठीक उतना बड़ा सत्य नहीं है। इतने युगों से नरनारी के बीच एकनिष्ठ प्रेम को आधार मानकर काव्य लिखे गए हैं मनुष्य को इससे तृप्ति मिली है इतना आँसू बहाया गया है वह भी एक दिन शायद हास्यकर हो जाएगा। क्रमशः ऐसा होना असम्भव नहीं है, पर इस कारण आज तो कल्पना में भी उसे ग्रहणीय नहीं माना जा सकता।

एक और अच्छा उदाहरण है। रामायण में राम रावण के युद्ध के ब्यौरे में बहुत जगह भरी है। राक्षस और बन्दरों ने मिलकर किस प्रकार की लड़ाई की किसने कौन-सा अस्त्र मारा इस सम्बन्ध में जितने ही नाम तथा जितने ही प्रकार के वर्णन आते हैं। किसका हाथ किसका पैर और किसका माथा कट गया यह भी उपेक्षित नहीं हुआ है। युद्धक्षेत्र में यह ब्यौरा न तो छोटा है न तुच्छ है और शायद उस जमाने की भीड़ ने कवि के निकट यह ब्यौरा माँगा भी था और पाकर मनों का [illegible]

आनन्द भी मिला, पर आज इतने दिनों के बाद युद्धक्षेत्र में बुढ़ापे वीरों का युद्ध-कौशल बिलकुल तुच्छ हो गया है। साहित्य के सुदूर विस्तृत परिप्रेक्षित से शायद आपने इसी प्रकार की किसी बात का इंगित किया है।

मैंने इसके पहले कभी नाटक नहीं लिखा था। अब तो एक नाटक लिखने की इच्छा है, पर बाधाएँ बहुत हैं। मेरे उपन्यासों पर पाठक समाज दया तो करता है, उसका क्षेत्र भी प्रशस्त है, पर नाटकों के परीक्षक कौन हैं यह समझना कठिन है। रंगमंच वाले या बेवकूफ दर्शक इसके हाईकोर्ट हैं या कोई और, यह कोई नहीं जानता। रामायण महाभारत से या इन्हीं की तरह प्रतिष्ठित टाड साहब के राजस्थान से कथानक लेकर नाटक लिखने पर इनकी परीक्षाओं में उत्तीर्ण तो हो सकते हैं पर आपसे डाँट मिलेगी।

'अन्त में आपने मेरी शक्ति का उल्लेख करते हुए लिखा है—'पर यदि तुम वर्तमान समय के बाधा और भीड़ की अभिरुचि से छुटकारा न पा सको तो तुम्हारी यह शक्ति प्रतिहत होगी।

आप तरह-तरह के कामों में व्यस्त रहते हैं, फिर भी मेरी बड़ी इच्छा है कि आपसे मिलकर मैं इन बातों को ठीक से जान पाऊँ। बात यह है कि वर्तमान भी बहुत बड़ी वस्तु है। उसका दावा न मानूँ तो वह भी सजा देने को तैयार है।

'आपकी अनुमति न होने पर मैं आपका समय नष्ट करने में संकोच का अनुभव करता हूँ। चिट्ठी लिखने का मेरा ढंग बहुत ही भद्दा है, मैं किसी भी बात को ठीक तरह से सजाकर नहीं कह पाता। यदि लिखने के दोष के कारण कहीं पर कुछ अपराध हो गया हो तो उसके लिए क्षमा चाहता हूँ।

२६ फाल्गुन १३१९ —सेवक

शरत्चन्द्र चट्टोपाध्याय'

इसके उत्तर में रवीन्द्रनाथ ठाकुर ने लिखा—

"मैं बुखार में पड़ा हूँ, फिर भी तुम्हारे पत्र का उत्तर दे रहा हूँ। मुझे

डर था कि कहीं मेरी आलोचना पढ़कर तुम नाराज न हो जाओ पर तुम्हारी चिट्ठी पढ़ कर मैं आश्वस्त हुआ।

तुम्हें मैं ही एक बात कह रहा हूँ। तुममें प्रतिभा है इसीलिए मैं तुमसे माँग करता हूँ वह माँग साहित्य की तरफ से माँग है। बहुत-से मामलों में एक-एक युग के वर्तमान का भोग वर्तमान काल में ही समाप्त हो जाता है राज्य-साम्राज्य भी इसी के अन्तर्गत आते हैं पर साहित्य में प्रत्येक जाति चिरकाल की सम्पत्ति की कामना करती है। इस सम्पत्ति को सृजन करने की जिनमें क्षमता है वे वर्तमान के किसी प्रलोभन में न आ जायें और उनका उपयोग न हो यही हम लोग तहेदिल से चाहते हैं। जो लोग संसार में केवल वर्तमान काल की माँग की पूर्ति करने के लिए आये हैं उनकी संख्या असीम है। उनका प्रचुर परिमाण में सर्वत्र दिखाई मिलती है। और उन्होंने मासिक साप्ताहिकों तथा सभा समितियों में अपना असर फैला रखा है। इन लोगों की मजलिस क्षणिक उत्सव के लिए तैयार की हुई बाँस की खपच्चियों से घिरी मजलिस है यदि तुम वहाँ पैर रखो तो उससे तुम्हारी जाति नहीं जायगी। तुमने लिखा है कि वर्तमान भी बहुत बड़ी वस्तु है वहाँ पर वह सचमुच ही बहुत बड़ी वस्तु है जहाँ अनुपस्थित काल में भी उसका प्रवेशाधिकार है। वर्तमान काल का एक बहुत बड़ा अंश है जो क्षणजीविता का है कुल मिलाकर उसकी क्षमता कम नहीं है उसके लोभ का आयोजन भी यथेष्ट है और आधुनिक डेमोक्रेसी के युग में वे भी साहित्य के दरबार में दल बाँध-बाँधकर अपनी माँग पेश करते रहते हैं। इस युग में इस लोभ से बचकर निकल जाना एक बहुत कठिन समस्या हो गई है पर पहले के युगों में यह समस्या इतनी कठिन नहीं थी। आजकल के युग की राजनीति समाजनीति अर्थनीति के प्रचलित नारे बराबर मुँह दर मुँह ध्वनित प्रतिध्वनित हो रहे हैं। ये लोग इन नारों की सबल पुनरावृत्ति के लिए उन्मत्त हो रहे हैं। तुम्हारे जैसे साहित्यकारों का ऐसे लोगों से कहना चाहिए कि तुम लोगों का नारा मेरा नारा नहीं है यदि हम तुम्हार

पिंजड़े की चिड़िया न बनें तो सम्भव है कि तुम्हारा चारा चुगना हमें नसीब न हो पर मेरा भोजन बृहत् काल और बृहत् देश में है। मसलन दाशुराय के जमाने में उस समय के काल ने दाशुराय को प्रचुर पुरस्कार दिया था पर उस काल ने जिस चेक पर दस्तखत किया था उसे आधुनिक काल के बैंक में कैश नहीं किया जा सकता। दूसरी तरफ मैमनसिंह के गाथा-काव्य और लोक-साहित्य की मियाद अब भी खतम नहीं हुई है वह अशिक्षित लोगों की सहज भाषा में रचित है फिर भी उसकी भाषा चिरकाल की भाषा है। दाशुराय के श्लेष अनुप्रास की छिछली कृत्रिमता में सत्य नहीं था पर मैमनसिंह की गाथा में सत्य था। आधुनिक काल के रोचक नारे ने दाशुराय के श्लेष और अनुप्रासों की जगह ले ली है और ये प्रतिदिन साहित्य के सत्य को नष्ट कर रहे हैं। यह काई की तरह साहित्य के सारे स्रोतों को अवरुद्ध कर रहे हैं। मैंने तुम्हारी जो कहानियाँ आदि पढ़ी हैं, उनमें तुमने बिना किसी आयास के चिरकाल के सत्य को मूर्त किया है। भीड़ की वाणी तुम्हारी वाणी में प्रविष्ट होकर सत्य के चित्रण पर अपनी छाप नहीं मार सकी। उस समय तुम भीड़ से दूर थे पर इस समय तुम जो कुछ लिखते हो उसे पढ़ते हुए मुझे भय लगता है कि मैं कहीं यह आविष्कार न कर बैठूँ कि तुम्हारी लेखनी पर तुम्हारी जानकारी या बेर-जानकारी में भीड़ का भार बैठ गया है। यह इतनी बड़ी हानि है कि उसे मैं अपनी आँख से देख नहीं सकता।

'तुम्हारे नाटक के जिस परिप्रेक्षित की बात मैंने बताई है वह नाटक के कथानक के सम्बन्ध में है, यानी जिस देहात में जिस वातावरण में सारी घटना दिखाई गई है उसकी भाषा चरित्र तथा व्यवहार में समुचित सामञ्जस्य की रक्षा नहीं हुई ऐसा मेरा विश्वास है। यानी तुमने जो कुछ कहना चाहा है उसे यदि उसकी परिस्थितियों के साथ संगत करके कहते तो उससे वह भाषा और घटना में दूसरे ही रूप में सामने आता मूल बात बनी रहती पर रूप बदल जाता। कला में विषय के साथ रूप का सामञ्जस्य हो तभी वह सत्य होता है।

एक बात याद रखो कि मैंने तुम्हारे उस नाटक के सम्बन्ध में जो मत व्यक्त किया यदि वह तुम्हें असंगत जँचे तो उसे मन से एकदम निकाल दो। तुम्हारी सृष्टि का आदर्श तुम्हारे अपने ही मन में है। यदि तुमने उसकी रक्षा की है तो कुछ नहीं कहना है पर यदि भीड़ के भाड़े सुझाव से तुम्हारी लेखनी विचलित हुई हो तभी वह चिन्तनीय है।

'इन दिनों मैं कलकत्ते में हूँ। यदि किसी दिन भेंट हो तो आमने-सामने बैठकर आलोचना हो सकती है।

—तुम लोगों का
रवीन्द्र नाम ठाकुर'

११ माघ १६२८

इन पत्रों से साहित्य-सृजन के सम्बन्ध में भारत के इन दो महारथियों के मत सामने आ जाते हैं। उसमें बार-बार भीड़ शब्द आया है जिसका मतलब शायद यही होगा कि जनता का अस्वस्थ और सामयिक रूप वाली मेडियाधसान। आज जनवाद के युग में इन पत्रों का बहुत अधिक महत्व है क्योंकि कहाँ तक जनता से परिचालित होना चाहिये और कहाँ तक उसकी सामयिक अशुद्ध अभिव्यक्तियों से बचना चाहिए इन पत्रों में उस प्रश्न पर लेखक का ध्यान केन्द्रित हो जाता है और वह सतर्क रहता है।

## नाटककार क्यों नहीं

इस पत्र-व्यवहार के बावजूद शरत्चन्द्र ने अधिक नाटक नहीं लिखे और क्यों नहीं लिखे इस पर उन्होंने एक पत्र में लिखा था— 'तुम्हारा प्रश्न यह है कि मैं नाटक क्यों नहीं लिखता। शायद यह जिज्ञासा तुम्हारे मन में दो कारणों से आई। पहली बात तो यह है कि नाट्यकार और दूसरे ग्रन्थकारों के ग्रन्थों को नाटक का रूप देने वाले योगेश चौधरी ने हाल ही में 'वातायन' पत्र में बंगला नाटक के सम्बन्ध में जो मंतव्य प्रकाशित किया है उससे तुम सम्पूर्ण रूप से सहमत नहीं हो सके हो। दूसरा कारण यह है कि तुम लोग निरन्तर जिन नाटकों का अभिनय देखते हो उनके भाव भाषा चरित्र निर्माण आदि का विवेचन करने के बाद तुम सारों के मन में

यह बात उठी है कि शायद शरत्चन्द्र नाटक लिखते तो रंगमंच का चेहरा कुछ बदलता।

"तुम्हारे प्रश्न के उत्तर में मेरी पहली बात यह है कि मैं नाटक नहीं लिखता इसका कारण है मेरी अक्षमता। दूसरी बात यह है कि यदि इस अक्षमता को न मानकर मैं नाटक लिखने पर तुल भी जाऊँ तो भी मजबूरी पूरी नहीं पड़ेगी। यह न समझो कि मैं यह बात केवल रुपय पैसे की दृष्टि से ही कह रहा हूँ। संसार में इस वस्तु का प्रयोजन है पर एकमात्र प्रयोजन नहीं इस सत्य को मैं कभी नहीं भूला। उपन्यास लिखने पर मासिक पत्रों के सम्पादक आग्रह के साथ उसे ले जायेंगे और उपन्यास प्रकाशित करने के लिए प्रकाशकों की कमी भी नहीं होगी कम से कम अब तक नहीं हुई और उन उपन्यासों के पढ़ने के साथ भी कुछ मिलते रहे हैं। कहानी तैयार करना मुझे आता है कम से कम यह कथा मुझे सिखला दो यह कहकर किसी के दरवाजे पर जाने की दुर्मति नहीं हुई। पर नाटक की बात और है। रंगमंच के अधिकारी ही इसके उच्चतम न्यायालय है यदि वे सिर हिलाकर कहें कि इस स्थान पर टेन्शन कम है दर्शक उसे नहीं लेंगे या यह पुस्तक चल नहीं सकती तो उसे चलाने का कोई उपाय नहीं है उनकी राय ही इस सम्बन्ध में अन्तिम निर्णय है क्योंकि वे विशेषज्ञ हैं और रुपये देने वाले दर्शकों के नाड़ी नक्षत्र का उन्हें पता है। इस लिये जान-बूझकर उस ओखली में सिर डालने में मुझे हिचकिचाहट मालूम होती है।

"शायद मैं नाटक लिख सकता हूँ क्योंकि नाटक की जो अत्यन्त आवश्यक वस्तु है और जो अच्छी न होने पर नाटक का प्रतिपाद्य किसी भी तरह दर्शक के दिल में उतर नहीं पाता उस कथोपकथन को लिखने का अभ्यास मुझे है। बातचीत कैसे करानी चाहिये तथा कितनी सरल और सीधी करने पर वह मन पर असर डालती है, यह कौशल मुझे न आता हो ऐसी बात नहीं। इसके अलावा चरित्र पर घटना-सृष्टि भी मैं कर सकता हूँ ऐसा मुझे विश्वास है। नाटक में घटना या सिचुएशन'

की सृष्टि चरित्र-सृष्टि से भिन्न हो जाती है। चरित्र-सृष्टि दो प्रकार की हो सकती है, एक है प्रकाश यानी जो पात्र-पात्री हैं उन्हें घटना परम्परा के द्वारा दर्शक की आँखों के सामने प्रकाशित करना और दूसरा है चरित्र का विकास यानी घटना-परम्परा के द्वारा उनके जीवन में परिवर्तन दिखाना। यह परिवर्तन अच्छा भी हो सकता है और बुरा भी। मान लो एक आदमी साथ पास सिम्मन के होटल में जाता था, जूआ खेलता था और दूसरे कुकर्म करता था पर आज वह धार्मिक वैष्णव है, बंकिमचन्द्र के शब्दों में यदि उसकी थाली में मछली का शोरबा गिरे तो वह हाथ से उसे फेंक देता है। फिर भी यह मानव त्याग न हो बल्कि वास्तविक आत्मिक परिवर्तन हो। शायद बहुत सी घटनाओं की भँवर में पड़कर कुछ अच्छे साधु के सम्पर्क में आकर और उनसे प्रभावित होकर वह सचमुच बदल गया है इसलिए वह जो पास साथ जो था वह भी सच था और वह आज जो है वह भी सच है पर जैसे-जैसे इसे न दिखाकर पाठक या दर्शक के समझ में सत्य करके दिखाना पड़ेगा। उन्हें ऐसा न लगे कि जो परिवर्तन हुआ उसका कोई मालूम कारण नहीं था। काम कठिन है। एक बात और उपन्यास की तरह नाटक में मनचाहापन नहीं है, नाटक को एक निर्दिष्ट समय से आगे बढ़ने नहीं दिया जाता। घटना के बाद घटना सजाकर नाटक को दृश्य या अंकों में विभाजित करना शायद कोशिश करने पर कठिन न होगा पर सोचता हूँ कि इस पचड़े में क्या पड़ने को जाऊँ?

"नाटक लिखूँ तो अभिनय कौन करेगा? शिक्षित समझदार अभिनेता और अभिनेत्रियाँ कहाँ हैं? नाटक की हीरोइन बनने लायक एक भी अभिनेत्री मुझे दिखाई नहीं पड़ती। इसी तरह के नाना कारणों से साहित्य की इस दिशा में पैर रखना नहीं चाहता। आशा करता हूँ कि वर्तमान रंगमंच का यह अभाव दूर होगा पर हम लोग शायद उस अवस्था को देख कर न जा सकें। अन्यथा यदि सचमुच लोग चाहें तो शायद लिखूँ भी पर अधिक आशा नहीं है।"

शरत्चन्द्र के पत्रों में जहाँ-तहाँ साहित्य-सृजन के सम्बन्ध में और भी बहुत-सी महत्त्वपूर्ण बातें आई हैं जिनमें से कुछ हम उद्धृत करते हैं। उन्होंने १४-११-१२ को रंगून से एक पत्र में लिखा था—"जो लोग चित्र बनाना नहीं जानते वे कूची हाथ में लेकर यह सोचते हैं कि आँख के सामने जो कुछ भी आये उसे चित्रित कर डालें पर दीर्घ अभिज्ञता के बाद उन्हें अन्त तक मालूम होता है कि यह सही बात नहीं है। बहुत-सी बड़ी चीज़ों को छोड़ना पड़ता है और बहुत कुछ दिखाने का लोभ छोड़ना पड़ता है तब जाकर चित्र बनता है। कहना या चित्रित करने में न कहना और चित्रित न करना बहुत कठिन है। बहुत आत्मसंयम करना पड़ता है, बहुत लोभ दमन करना पड़ता है तब जाकर सही ढंग से कहना और चित्र बनाना आता है।"

एक दूसरे पत्र में उन्होंने लिखा था—मेरे लिखने में कोई विशेषता नहीं है फिर भी इतना ठीक रखता हूँ कि जो लिखता हूँ उसके साथ अपने मन का ऐक्य रहे जो मैं सोचता हूँ, उसे ही मैं लिखना चाहता हूँ। वह क्या समझेगा, वह क्या कहेगा इस तरफ मैं नहीं ताकता। शायद इसी कारण से लोग बीच-बीच में मेरी रचनाएँ पसन्द करते हैं, कभी-कभी नहीं भी पसन्द करते। फिर भी वे हेय समझ कर लेखक का अपमान नहीं करना चाहते।

इसी में उन्होंने अपनी भाषा के सम्बन्ध में भी व्यंग्य के साथ एक मज़ेदार बात कही जिसका मतलब यह है कि उन्होंने दुर्बोध्यता से बचने की कोशिश की है, पर यह देखने की बात है कि जिन शब्दों में वे इसे व्यक्त करते हैं—'भाषा पर मेरा कोई अधिकार नहीं है ऐसा कहा जा सकता है। शब्द-सम्भार भी कम है इसलिये मेरी रचना सरल होती है मुश्किल करके लिखना मेरे लिए असम्भव है। इस क्षेत्र में मेरी अक्षमता ही मेरे काम आ रही है।'

इन्हीं पत्रों में से एक पत्र में उन्होंने लिखा—"आँखों में बड़े उत्साह

यह नहीं कह सकता।"

यह बहुत ही महत्त्वपूर्ण बात है क्योंकि और भी लेखकों ने यही कहा है कि वे एक अज्ञात शक्ति के हाथ में रहकर अपनी कृतियों की रचना करते हैं। इस सम्बन्ध में और अधिक ब्यौरे में जाने की आवश्यकता नहीं है।

१९३१ के लगभग श्री दिलीपकुमार राय को लिखते हुए उन्होंने फिर एक बार उसी बात को दूसरे शब्दों में कहा था जिसे वे बार-बार कहते रहे। उन्होंने लिखा— लिखना मुश्किल नहीं है, न लिखकर बताने की शक्ति भी कम नहीं है यानी भीतर के उच्छ्वास और आवेग की तरह निरर्थक बहा न ले जाए। मैं ही पाठक पर पूर्ण रूप से न छा जाऊं। उसको यह भी मौका मिले कि वह अपने भाव, रुचि और बुद्धि के द्वारा अलिखित अंश की पूर्ति कर ले। तुम्हारी रचना उसे इंगित और आभास दे दे पर उस पर बोझ न बने। जलधर सेन ने अपने किसी उपन्यास में मृत पुत्र के माँ-बाप की तरफ से अनेक पृष्ठों पर आँसू बहाए हैं, नतीजा यह है कि पाठक ताकते रह गए उन्हें रोने की फुरसत नहीं मिली। सच तो यह है कि रचना में असंयम साहित्य की मर्यादा को नष्ट कर देता है। बंकिम सुन्दर लिखते हैं पर सुन्दर न लिखना उन्हें नहीं आता। और एक तरह का असंयम है जो 'म' की रचना में दृष्टिगोचर होता है। वह अच्छा लिखता है विलायत वगैरह गया है पर वह एक मुहूर्त के लिए भी यह नहीं भूल पाता कि वह विलायत गया है। विलायत के सम्बन्ध में उसकी रचना में ऐसी एक अस्वाभाविक अति मदमद अतृप्तपूर्णता दिखाई पड़ती है कि पाठक का मन उत्पीड़ित हो जाता है। अनुरूपा देवी के उपन्यास में भी देखने में आता है कि वेद-वेदान्त, उपनिषद्, पुराण, कालिदास, भवभूति सब उसमें घुसने के लिए जैसे ठेलमठेला मचाये हुए हैं। हर पंक्ति में लेखिका की यह भावना दीख पड़ती है कि देखो मैं कितनी बड़ी विदुषी हूं, मैंने कितना पढ़ा है, कितनी जानकारी प्राप्त की है। इसकी अतिशयता किसी भी रूप में रचना के अन्दर पकड़ी न जाए।

शरत्चन्द्र के पत्रों में जहाँ-तहाँ साहित्य-सृजन के सम्बन्ध में और भी बहुत-सी महत्त्वपूर्ण बातें आई हैं, जिनमें से कुछ हम उद्धृत करते हैं। उन्होंने १२.११.१२ को रंगून से एक पत्र में लिखा था— 'जो लोग चित्र बनाना नहीं जानते वे कूची हाथ में लेकर यह सोचते हैं कि आँख के सामने जो कुछ भी आये उसे चित्रित कर डालें, पर दीर्घ अभिज्ञता के बाद उन्हें अन्त तक मालूम होता है कि यह सही बात नहीं है। बहुत-सी बड़ी चीज़ों को छोड़ना पड़ता है और बहुत कुछ दिखाने का लोभ छोड़ना पड़ता है, तब जाकर चित्र बनता है। कहना या चित्रित करने से न कहना और चित्रित न करना बहुत कठिन है। बहुत आत्मसंयम करना पड़ता है, बहुत लोभ दमन करना पड़ता है, तब जाकर सही ढंग से कहना और चित्र बनाना आता है।

एक दूसरे पत्र में उन्होंने लिखा था— 'मेरे लिखने में कोई विशेषता नहीं है, फिर भी इतना ठीक रखता हूँ कि जो लिखता हूँ उसके साथ अपने मन का ऐक्य रहे, जो मैं सोचता हूँ, उसे ही मैं लिखना चाहता हूँ। वह क्या समझेगा, वह क्या कहेगा, इस तरफ मैं नहीं ताकता। शायद इसी कारण से लोग बीच-बीच में मेरी रचनाएँ पसन्द करते हैं, कभी-कभी नहीं भी पसन्द करते। फिर भी वे हेय समझ कर लेखक का अपमान नहीं करना चाहते।

इसी में उन्होंने अपनी भाषा के सम्बन्ध में भी व्यंग्य के साथ एक मज़ेदार बात कही, जिसका मतलब यह है कि उन्होंने दुर्बोध्यता से बचने की कोशिश की है, पर यह देखने की बात है कि जिन शब्दों में वे इसे व्यक्त करते हैं—"भाषा पर मेरा कोई अधिकार नहीं है, ऐसा कहा जा सकता है। शब्द-सम्भार भी कम है, इसलिये मेरी रचना सरल होती है। मुश्किल करके लिखना मेरे लिए असम्भव है। इस दोष से मेरी प्रसन्नता ही मेरे काम आ रही है।"

इन्हीं पत्रों में से एक पत्र में उन्होंने लिखा— 'यों तो मैं बड़े उत्साह के साथ लिख रहा हूँ कि यह रचना सुन्दर होगी, पर क्या से क्या होगा

यह नहीं कह सकता।

यह बहुत ही महत्त्वपूर्ण बात है क्योंकि और भी लेखकों ने यही कहा है कि वे एक अज्ञात शक्ति के हाथ में रहकर अपनी कृतियों की रचना करते हैं। इस सम्बन्ध में और अधिक ब्यौरे में जाने की आवश्यकता नहीं है।

१९११ के लगभग श्री दिलीपकुमार राय को लिखते हुए उन्होंने फिर एक बार उसी बात को जोरदार शब्दों में कहा था जिसे वे बार-बार कहते रहे। उन्होंने लिखा— लिखना मुश्किल नहीं है न लिखकर बताने की शक्ति भी कम नहीं है यानी भीतर के उच्छ्वास और आवेग की तरंग निरंकुश बहा न ले जाए। मैं ही पाठक पर पूर्ण रूप से न छा जाऊँ। उसको यह भी मौका मिले कि वह अपने भाव रुचि और बुद्धि के द्वारा अलिखित अंश की पूर्ति कर ले। तुम्हारी रचना उसे इंगित और आभास देती है पर उन पर बोझ न बने। जलधर सेन ने अपने किसी उपन्यास में मृत पुत्र के मा-बाप की तरफ से अनेक पृष्ठों पर आँसू बहाए हैं नतीजा यह है कि पाठक ताकते रह गए उन्हें रोने की फुरसत नहीं मिली। सच तो यह है कि रचना में असंयम साहित्य की मर्यादा को नष्ट कर देता है। बनर्जी सुन्दर लिखते हैं पर सुन्दर न लिखना उन्हें नहीं आता। और एक तरह का असंयम है जो 'म' की रचना में दृष्टिगोचर होता है। वह अच्छा लिखता है विलायत वगैरह गया है पर वह एक मुहूर्त के लिए भी यह नहीं भूल पाता कि वह विलायत गया है। विलायत के सम्बन्ध में उसकी रचना में ऐसी एक अरुचिकर अति उद्भव अनुष्टपूर्वता दिखाई पड़ती है कि पाठक का मन उत्पीड़ित हो जाता है। अनुरूपा देवी के उपन्यास में भी देखने में आता है कि वेद-वेदान्त उपनिषद्, पुराण कालिदास भवभूति सब उसमें घुसने के लिए जैसे ठसमठसा मचाते हुए हैं। हर पंक्ति में रचयित्री की यह भावना दीख पड़ती है कि देखो मैं कितनी बड़ी विदुषी हूँ मैंने कितना पढ़ा है कितनी जानकारी प्राप्त की है। इनकी अतिशयता किसी भी रूप में रचना के अन्दर

वे इतने सरल रूप से आयें कि ऐसा मालूम हो कि वे बिल्कुल स्वाभाविक रूप से आए हैं। इसी रूप में लिखना बड़ा भारी कौशल है। यह सिखाया नहीं जा सकता ख़ुद सीखना पड़ता है। पाठक को चकाचौंध कर देने की इच्छा इतना ज़ोर न मारे कि उसकी निजी कल्पना की ख़ुराक न कमी पड़ जाय। लिखते समय इस तत्त्व को एक मिनट भी भूल कि गए। साथ ही बड़े विचार बड़े तत्त्व बड़ी भावना बड़े वर्णनों को लेकर रचना करें। पानी गिर रहा है पत्ते हिल रहे हैं लाल फूल हैं पानी बरसता है और देवरानी जेठानी के अपने कमरों में समपुटाव या प्रभात मुखर्जी की कमर दबाता मामी कमरे में कितनी अलमारियाँ हैं, कितने कोचे हैं कैसे सजानी बत्तियाँ हैं और अरगनी पर कितनी और किस किनारी की चुनी हुई साड़ियाँ टँगी हैं इन ब्योरों के दिन जा चुके हैं और प्रयोजन भी समाप्त हो गया है। यह महसूस लिखने में लिख के पाठक को लगता है।"

## रचना-कौशल

आषाढ़ १३३२ को दिलीपकुमार राय को एक पत्र में उन्होंने लिखा था—'भारतवर्ष के ज्येष्ठ १३३२ की संख्या में तुम्हारी 'नौकर' नामक कहानी पढ़ी। कहानी की दृष्टि से वह उतनी अच्छी नहीं बन पड़ी पर एक बात देख रहा हूँ कि तुममें एक बहुत सुन्दर वस्तु विकसित हो रही है वह है कथोपकथन। कहानी लिखने के कौशल या पद्धति के साथ कथोपकथन की धारा जब तुम्हारी रचना में सम्पूर्ण तालमेल बैठेगा तभी तुम बड़े साहित्यकार बनोगे।"

१० वैशाख १३३८ में उन्होंने उसी प्रश्न पर लिखा—"कथोपकथन छोटा होना चाहिए या मधुर होना चाहिये। किसी भी हालत में ऐसा न मालूम पड़े कि ज़रूरत से ज़्यादा एक हरफ़ भी कहा गया है। आर्टिस्टिक काम का भीतरी यही रहस्य है। पहले शायद ऐसा लगे कि हाथ में सारी बात कह नहीं पाया पाठक शायद वक्तव्य पकड़ न पायें पर अधिक समझाने में लेखक को कोई धर्म है, ऐसा न दिखाई पड़े

समझें न ? इसीलिए कुछ लोग यह कहते हैं कि तुम्हारी रचनाओं में वाद-विवाद प्रबन्ध आकार धारण करता है। जो पढ़ता है उसे यदि सोचकर समझने का अवकाश न मिले तो उसमें लेखक की बुद्धि प्रमाणित नहीं होती तब पाठक चिढ़ जाता है।

इसी पत्र में उन्होंने यह भी लिखा— क्या रवीन्द्र इस बात को स्वीकार नहीं करते कि उपन्यास के जरिये से मनुष्य को काम-की बातें सुनने के लिए मजबूर किया जा सकता है। जिसे हमका साहित्य कहते हैं क्या उसके प्रति उनमें श्रद्धा नहीं है?

शरत् बाबू ने कम से कम एक और पत्र में यह भी लिखा है कि किसी किसी रचना के लिए खास उम्र होती है। उन्होंने दिलीपकुमार राय को एक पत्र में लिखा था— 'इसलिये उम्र कम रहते ही कुछ काम समाप्त कर लेने चाहिए। जैसे कहानी लिखना। मैंने कई बार देखा है कि कम उम्र में जो कुछ लिखा जा सकता है उसमें से अधिकांश उम्र बढ़ने पर नहीं लिखा जा सकता तब उम्र के अनुसार गाम्भीर्य और संकोच आ जाते हैं। मनुष्य में केवल लेखक ही नहीं होता आलोचक भी होता है। उम्र के साथ-साथ आलोचक बढ़ता जाता है। इसलिए अधिक उम्र में जब लेखक लिखना चाहता है तो आलोचक उसकी कलम पकड़ लेता है और इस समय की रचना ज्ञान विद्या बुद्धि की दृष्टि से चाहे कितनी बड़ी हो रस की दृष्टि से उसमें कमी आ जाती है। इसलिए मेरा विश्वास है कि यौवन पार कर लेने के बाद जो व्यक्ति रस सृष्टि का आयोजन करता है वह गलती करता है। मनुष्य की एक उम्र होती है जिसके बाद काव्य या उपन्यास लिखना उचित नहीं है रिटायर करना ही कर्तव्य है। बचपना मनुष्य का कुछ देर की उम्र है उस समय मनुष्य का आनन्द पाने का परिस्पन्द करना व्यर्थ है।

इसके साथ ही उन्होंने उस पत्र में यह भी लिखा है— 'मेरी उम्र काफी हो गई। रवीन्द्रनाथ भी बूढ़े हो चले। एक ऐसी धारणा होती है कि इसके बाद बंगला उपन्यास-साहित्य का स्थान कुछ नीचे जायगा।

इस वक्तव्य में उम्र वाली बात पर ज़ोर न होकर अपने तथा रवीन्द्र के व्यक्तित्व पर ज़ोर है। सौभाग्य से उन्होंने बंगला साहित्य के भविष्य के सम्बन्ध में जो चिन्ता की थी वह गलत निकली और इन दोनों महारथियों के बाद भी 'पथेर पांचाली' के लेखक विभूतिभूषण आदि कई उच्चस्तर के लेखक बंगला उपन्यास क्षेत्र में आगे रहे। इधर बंगला के उपन्यास क्षेत्र में नवीन प्रतिभाओं की बाढ़-सी आ गई है। मैंने 'बंगला साहित्य दर्शन' में इनका कुछ ब्यौरा दिया है पर यहाँ कुछ नाम तो गिनाए ही जा सकते हैं, जैसे ताराशंकर, प्रबोध सान्याल, बनफूल, 'साहब बीबी गुलाम' के विमल मित्र, सुबोध घोष, सतीनाथ भादुड़ी, गजेन्द्र कुमार मित्र, शंकर इत्यादि।

शरत् बाबू ने उक्त पत्रों में उम्र के साथ साहित्य-रचना के तारतम्य का जो सिद्धान्त सामने रखा वह एक हद तक नियम होने पर भी उसमें बहुत से अपवाद थे स्वयं रवीन्द्रनाथ इसके अपवाद थे और भी बहुत-से अपवाद हैं। इस वक्तव्य को बिलकुल आक्षरिक रूप से लेने की ज़रूरत नहीं।

# दो महारथियों में टकराव

शरत्चन्द्र का उदय बंगला साहित्य में उस समय हुआ जब रवीन्द्र मध्य गगन में तप रहे थे। मध्यम वर्ग की जनता में शायद शरत्चन्द्र अधिक प्रसिद्ध हो गये थे। जो कुछ हो शरत्चन्द्र और रवीन्द्र में कई बार मनमुटाव की नौबत आई यह केवल वैयक्तिक बात नहीं बल्कि बहुत हद तक दोनों के साहित्य के आदर्श भी अलग थे इसलिए इस प्रकार का मतभेद स्वाभाविक था। इसी के साथ यह भी स्मरण रहे जैसा कि हम बाद को देखेंगे कि शरत्चन्द्र अपने को सब तरह से रवीन्द्र ऋणी मानते थे।

शरत् के कुछ पत्रों से इस मनमुटाव का प्रामाणिक इतिहास मिलता है। २६ बैशाख १३२८ (बंगला सन्) यानी १९२१ में उन्होंने अपने गाँव से रवीन्द्रनाथ को एक पत्र लिखा था— 'लड़कों के मुँह से सुनने में आया कि आप मुझसे बहुत असन्तुष्ट हैं। शायद उत्तेजना के समय क्रोधवश मैंने आपके सम्बन्ध में कोई झूठी बात (मिथ्या) कही हो पर जो व्यक्ति आपके पास मेरे कथन का सत्यासत्य जाँचने के लिए गया था उसने भी कभी अपराध नहीं किया। आप भारत के प्रति इंगलैण्ड के व्यवहार से क्षुब्ध हुए हैं, और यह सारी बात पंजाब सम्बन्धी उस पत्र के कारण हुई। उसे न लिखने पर यह सब हो ही नहीं सकता—इन बातों को मैंने उस समय ठीक किस रूप में कहा था यह मुझे याद नहीं है। मैं आम तौर पर गढ़कर झूठी बातें नहीं कहता पर कहना एकदम असम्भव है ऐसा भी नहीं। कम से कम इतना तो मैंने निश्चित रूप से कहा है कि इस बार विलायत से लौटकर आप बहुत बदल गये हैं और बंगाल के प्रति आपकी पहले वाली

श्रद्धा की दृष्टि से देखता हूँ। वह मेरे गुरुस्थानीय हैं यह तो तुम जानती ही हो पर शायद लिखने की त्रुटि के कारण जो मैं कहना चाहता हूँ वह नहीं कह पाया और दूसरा ही अर्थ हो गया। यदि कुछ दोष हुआ भी हो तो वह मेरी असमर्थता का दोष है, मेरे हृदय का नहीं। नवीन लेखकों के प्रति मेरा आन्तरिक स्नेह है यह मैं जानता हूँ कि वे गलतियाँ करते हैं पर जब समाज में उन्हें अपदस्थ प्रतिपादित करने पर मुझे कष्ट पहुँचता है। उसके अलावा यह बहुत बड़ा लांछन है क्योंकि यह कहा जाता है कि वे गरीब हैं इस कारण इन गन्दी बातों में पड़कर रुपया कमाना चाहते हैं। मैं जानता हूँ विरोधी दल के लोग यही सब कहते फिरते हैं।

'जब 'पथ के दावेदार' जब्त हो गया तो मैंने रवीन्द्रनाथ से कहा कि आप यदि इसका प्रतिवाद करें तो उससे संसार के लोगों को यह मालूम हो जाय कि ब्रिटिश सरकार साहित्य के प्रति अविचार कर रही है। अवश्य मेरी पुस्तक पर से जब्ती नहीं हटेगी अंग्रेज वैसे लोग नहीं हैं, पर दुनिया के लोगों को खबर तो हो जाती। उन्हें मैं पुस्तक भी दे आया। इस पर उन्होंने मुझे लिखा" (यहाँ शरत् बाबू ने रवीन्द्रनाथ के पत्र से कुछ शब्द उद्धृत किए।)

इसके बाद उसी पत्र में शरत् बाबू ने लिखा—'तुम सोच सकती हो कि बिना अपराध के कोई किसी के प्रति इतनी बड़ी कटूक्ति कर सकता है ? उन्होंने यह पत्र छपने के लिए दिया था पर मैं उसे छपा नहीं सका क्योंकि मैं जानता था कि कविवर का इतना बड़ा सर्टिफिकेट उसी समय स्टेट्समैन आदि अंग्रेजी अखबारों के द्वारा सारे संसार में तार भेजकर फैला दिया जायगा। नतीजा यह है कि हमारे देश के युवक-युवतियों को अंग्रेजों ने जिस प्रकार बिना मुकदमा चलाये जेल में बन्द कर रखा है, उसके विरुद्ध जो आन्दोलन चल रहा है, वह व्यर्थ हो जायगा।

'मैं ठीक नहीं कह सकता पर जब मैंने 'साहित्य की रीति-नीति' लिखा था तब वे बातें मेरे मन में थीं इसी कारण शायद कहीं-कहीं तीव्रता का थोड़ा बहुत आभास आ गया है। जो कुछ भी हो जो हो गया उसका तो

कोई उपाय नहीं है।

ऊपर जो पत्र-व्यवहार प्रकाशित किया गया है उससे यह स्पष्ट है कि दोनों में मन-मुटाव बहुत काफी दूर तक पहुँच गया था। हम इस झगड़े में नहीं पड़ना चाहते कि इनमें कौन सही था और कौन गलत, पर इतना अवश्य कहेंगे कि 'पथ के दावेदार' की जब्ती के विरुद्ध प्रतिवाद करना अस्वीकार करते हुए रवीन्द्रनाथ ने ब्रिटिश साम्राज्यवाद को अन्य साम्राज्यवादों से कम खूंख्वार बताया यह और कुछ नहीं तो बहुत ही असामयिक बात थी। यह बहुत से विद्वान मानते हैं कि ब्रिटिश साम्राज्यवाद इस प्रकार के दूसरे आधुनिक साम्राज्यवादों से कम खूंख्वार रहा है पर यदि यह सत्य भी था तो इसे कहने का यह मौका शरत् बाबू को खलना बहुत स्वाभाविक था।

हम बाद के पत्रों में देखते हैं कि शरत्चन्द्र धीरे-धीरे रवीन्द्रनाथ से हटते गये यद्यपि वे सार्वजनिक रूप से रवीन्द्रनाथ को सराहते ही रहे। उन्हें ऐसा आघात लगा जिससे वे फिर उभर नहीं सके। तभी २० माघ १३४० (बंगला सन्) यानी १९३४ के लगभग उन्होंने सुप्रसिद्ध नाटककार श्री डी० एल० राय के सुपुत्र श्री दिलीपकुमार राय को लिखते हुए यह उपदेश दिया— "उपमा या उदाहरण कुछ भी रवीन्द्रनाथ की तरह निरर्थक और असम्बद्ध न हो और तर्क किसी बात से भी वाष्पाच्छादित न हो जायें, मनुष्य को अलंकारों से सुसज्जित करने की रुचि और है और सुनार की दुकान में डमी फ़ेस को अलंकारों से सुसज्जित करने की रुचि और है। यह बात हर समय याद रखनी चाहिये। अलंकृत वाक्य का बोझ कितना पीड़ादायक है यह बात सिर्फ पाठक ही समझते हैं।"

इस उद्धरण पर कोई टिप्पणी करने की आवश्यकता नहीं है।

इसके लगभग एक साल बाद दिलीपकुमार का ही पत्र लिखते हुए उन्होंने कुछ ऐसे ही वाक्य कहे। उन दिनों दिलीपकुमार शरत् बाबू के 'निष्कृति' नामक लघु उपन्यास का अंग्रेजी अनुवाद तैयार कर रहे थे और 'श्रीकान्त' के अंग्रेजी अनुवाद करने की बात चल रही थी। उन्होंने इस पत्र

में लिखा—"रवीन्द्रनाथ मुझे हस्तोद्धृत कर देंगे ऐसी आशा मैं नहीं रखता वे मुझ पर प्रसन्न तो हैं नहीं। इसके अलावा उनके पास इतना समय भी कहाँ है? साहित्य-सेवा के कार्य में वे मेरे गुरुस्थानीय हैं मैं उनसे कभी उऋण नहीं हो सकता पर भाग्य चाहे आशा और मेरे प्रति उनकी विमुखता की कोई सीमा नहीं है इसलिये यह चेष्टा करना व्यर्थ है।"

इसके एक साल बाद उन्होंने एक पत्र में लिखा—"इसके अलावा मेरे मन में इस सम्बन्ध में कोई अफसोस सचमुच ही इस बात का नहीं है और न उद्वेग है कि मुझसे कौन बड़ा और कौन छोटा है। यदि रवीन्द्रनाथ यह कह देते कि मेरी कोई भी रचना उपन्यास पद-वाच्य नहीं है तो उससे सामयिक रूप से वेदना पहुँचने के अतिरिक्त और कुछ न होता। शायद यह विश्वास करना कठिन है और शायद ऐसा लगे कि मैं बहुत अधिक दीनता दिखला रहा हूँ पर यही साधना मैंने सारी जिन्दगी की। इसीलिए किसी आक्रमण का भी मैं प्रतिवाद नहीं करता। जीवन में एकाध बार मैंने रवीन्द्रनाथ के विरुद्ध कुछ कहा था पर वह मेरी प्रकृति नहीं विकृति थी बहुत से कारण थे शायद इसीलिये मैंने यह गलती की थी।"

इन पत्रों से यह ज्ञात होता है कि शरत्चन्द्र को बराबर यह अफसोस बना रहा कि रवीन्द्रनाथ ने उनका खुलकर आदर नहीं किया। हम इस ग्रंथ में जो पत्र उद्धृत कर चुके हैं तथा घटनाएँ बता चुके हैं उनसे यह बात स्पष्ट हो जाती है।

आश्विन १९४० के लगभग फिर एक बार रवीन्द्रनाथ के सम्बन्ध में हम शरत्चन्द्र को एक पत्र में इस प्रकार लिखते हुए पाते हैं। उन्होंने श्री अतुलानन्द राय को लिखा—"तुमने परिचय पत्रिका में श्री दिलीपकुमार राय को लिखित 'रवीन्द्रनाथ के पत्र 'साहित्य की मात्रा' के सम्बन्ध में मेरी राय जाननी चाही है यद्यपि यह पत्र व्यक्तिगत है फिर भी जब यह प्रकाशित हुआ है तो ऐसा अनुरोध शायद किया जा सकता है पर कई बार पृष्ठ वाले पत्रों की अन्तिम पंक्ति में यह जो लिखा रहता है कि कुछ

रुपये भेज देगा उसी की तरह यदि अन्तिम पंक्तियों का असली वक्तव्य यह हो कि योरोप अपने धन धन-दौलत तोप-तमंचों और विपुल मर्यादा के साथ जल्दी ही डूबेगा तो बहुत ही दुःख के साथ यह बात याद आयेगी कि अब उम्र काफी हो चुकी है शायद ही वह स्थिति देख जाने का मौका मुझे मिले।

पर उन बातों के अतिरिक्त कविवर ने और जिन लोगों के सम्बन्ध में निराशा के कारण पतवार छोड़ दी है तुम लोगों का सन्देह यह है कि उन लोगों में मेरी भी गिनती है। इस निबन्ध में कविवर का अभियोग है कि वे (दूसरे लोग) प्रमत्त हाथी हैं वे बकवास करते हैं, पहलवानी दिखाते हैं, कसरत करामात करने पर आमादा हैं प्राब्लेम साल्व करते हैं, इस लिये उनकी इत्यादि इत्यादि।

ये बातें चाहे जिनके सम्बन्ध में कही गई हों न तो ये सुन्दर हैं और न कानों को अच्छी लगती हैं। क्लेष और विद्रूप के वातावरण के कारण मन में एक इरिटेशन पैदा होता है इससे वक्ता का उद्देश्य व्यर्थ हो जाता है और श्रोता का मन भी बिगड़ खड़ा होता है। इसके साथ ही क्षोभ दिखाना भी बेकार है प्रतिवाद करना भी व्यर्थ है। मैंने किसकी बोली तोते की तरह रटी कब मैंने पहलवानी दिखलाई, कहाँ खेल दिखाया क्रुद्ध कविवर के निकट यह जिज्ञासा अवान्तर है। मुझे अपने बचपन की याद आती है। खेल के मैदान में किसी ने यह कह दिया कि फलाने ने टट्टी पर पैर रख दिया बस फिर क्या है कहाँ पर रख दिया किसने कहा किसने देखा वह टट्टी नहीं थी गोबर था यह सब कहना व्यर्थ होता था घर आये तो माँ आदि बिना नहलाये तथा सिर पर गंगा जल का छींटा दिये घर में दाखिल नहीं होने देती थीं। बस इतना ही कहा जाता था फलाने ने टट्टी पर पैर रख दिया। मेरी भी इस समय वही हालत है।

साहित्य की भाषा ही क्यों कविवर के ऐसे निबन्धों में से अधिकांश का समझने की मुझ में बुद्धि नहीं है। उनके उपमा उदाहरण में बस-कम्बैं हाट-बाजार, हाथी घोड़ा जानुदैवान सब आते हैं पर यह समझ में नहीं

आता कि मनुष्य की सामाजिक समस्यायें और नर-नारी के परस्पर सम्बन्ध
पर विचार करते हुए ये क्यों आते हैं और इनसे क्या प्रमाणित होता है?
सुनने में अच्छा लगने पर भी वह युक्ति तो नहीं होती।
एक उदाहरण देता हूं। कुछ दिन पहले हरिजनों के प्रति होने वाले
अन्याय से दुःखी होकर उन्होंने प्रवर्तक संघ के प्रति बापू को एक पत्र
लिखा था। उसमें उन्होंने यह शिकायत की थी कि ब्राह्मणों की पाली हुई
बिल्ली झूठे मुंह से उसकी गोद में आकर बैठ जाती है उसमें छूत नहीं
होती और वह इस पर आपत्ति नहीं करती। बहुत सम्भव है कि वह
आपत्ति नहीं करती पर इससे हरिजनों को कोई सुविधा हुई? इससे क्या
प्रमाणित हुआ? बिल्ली की युक्ति पर ऐसा तो ब्राह्मणी से नहीं कहा
जा सकता कि चूंकि अत्यन्त निकृष्ट जीव बिल्ली आकर तुम्हारी गोद में
बैठी है और तुमने कोई आपत्ति नहीं की इसलिये अत्यन्त उत्कृष्ट जीव मैं
भी आकर तुम्हारी गोद में बैठूंगा और तुम आपत्ति नहीं कर सकती।
बिल्ली क्यों गोद में बैठती है चींटे क्यों चासनी पर चढ़ते हैं इन सब तर्कों से
मनुष्य के साथ मनुष्य के न्याय या अन्याय का विवेचन नहीं हो सकता। ये
सब उपमायें सुनने में अच्छी लगती हैं चटपटी हैं, पर कसौटी पर कसने
पर बहुत ही तुच्छ प्रमाणित होती हैं। × × आधुनिक काल के कथाकार
ग्रामों की विभिन्न कारणों से बहुत से लोग निन्दा करते हैं। रवीन्द्रनाथ भी
करते हैं इसमें कोई दोष की बात नहीं है बल्कि यह फैशन हो गया है
पर इस अतिनिन्दित वस्तु के सम्पर्क में जो लोग इच्छा या अनिच्छा से
आते रहते हैं उनके कारण भी जटिल हो गये हैं उनकी जीवन-यात्रा के
तरीके भी बदल गये हैं और किसानों के जीवन से उनका जीवन हूबहू
नहीं मिलता इस पर भले ही कोई अफसोस करे, पर यदि कोई इन लोगों
के जीवन की विविध घटनाओं पर कहानी लिखे तो वह साहित्य क्यों
नहीं होगा? हां कविवर भी ऐसा नहीं कहते कि वह साहित्य नहीं होगा
वे केवल इस बात पर आपत्ति करते हैं कि साहित्य की मात्रा का संयम
न किया जाय पर इस मात्रा का निर्णय किस प्रकार होगा? कसाई से

होगा या कटु वाक्यों से होगा ? कविवर का कहना है कि इसका निर्णय साहित्य की चिरन्तन मूल नीति की कसौटी से होगा पर यह मूल नीति लेखक की बुद्धि की प्रभविष्णुता और रसोपलब्धि के आदर्श के अलावा कोई और वस्तु है क्या ? चिरन्तन की दुहाई सिर्फ जबर्दस्ती ही दी जा सकती है असल में वह मरीचिका मात्र है।

कविवर कहते हैं— उपन्यास-साहित्य की भी यही दशा है। मनुष्य के प्राण का रूप चिन्ता के स्तूप के नीचे दब गया है। पर उसके जवाब में यदि कोई कहे कि उपन्यास साहित्य की यह दशा नहीं है। मनुष्य के प्राण का रूप चिन्तन के स्तूप में दबा नहीं है वह चिन्ता के सूर्यलोक में और उज्ज्वल हो गया है तो उसे किस तर्क से रोका जा सकता है ? इसी के साथ-साथ एक और बात आजकल प्रायः सुनने में आती है उसमें रवीन्द्रनाथ ने भी हाथ बटाया है वह यह कि 'यदि कोई मनुष्य कहानी की मजलिस में आये तो वह कहानी ही सुनना चाहेगा बशर्ते कि वह सही दिमाग हो। इस वचन को स्वीकार करते हुए भी यदि पाठक इस पर कहें कि हाँ हम सही दिमाग हैं पर जमाना बदल गया है और हमारी उम्र भी बढ़ी है इसलिए राजकुमार और बेगमा बेगमों[1] की कहानी से हमारा पेट नहीं भरता तो यह नहीं कहा जा सकता कि यह उत्तर बहुत गुस्ताखी भरा है व अनायास ही ऐसा कह सकते हैं कि कहानी में चिन्तन शक्ति की छाप पड़ने पर वह परित्याज्य नहीं होती यह विशुद्ध कहानी लिखने के लिए लेखक का चिन्तनशक्ति विसर्जित करने की जरूरत नहीं है।

कविवर ने महाभारत और रामायण का उल्लेख करते हुए भीष्म और राम के चरित्र की आलोचना करके यह दिखलाया है कि रटी-रटाई बोली के कारण दोनों चरित्र उभर नहीं पाए। इस पर मैं आलोचना नहीं करूँगा क्योंकि ये दोनों न केवल काव्य-ग्रन्थ हैं बल्कि धर्म-पुस्तकें भी हैं

१ कहानियों में आजकल कविता अंक।

और शायद कुछ इतिहास भी है ये दो चरित्र महज साधारण उपन्यास के बनाये हुए चरित्र भी हो सकते हैं इसलिए उन्हें साधारण काव्य—उपन्यास के गज से नापते हुए मैं हिचकिचाता हूँ।

कविवर के पत्र म 'इन्टलेक्ट' शब्द का बार-बार प्रयोग हुआ है। ऐसा मालूम होता है जैसे कविवर विद्या और बुद्धि दोनों ही अर्थों में इस शब्द को ले रहे हैं 'प्राबलेम' शब्द का भी यही हाल है। उपन्यास में तरह तरह के 'प्राबलेम' रहते हैं व्यक्तिगत नीतिगत सामाजिक सांसारिक इसके अलावा कहानी का अपना प्राबलेम होता है वह प्लाट का प्राबलेम है इसी की गाँठ सबसे कठिन होती है। कुमारसम्भव का प्राबलेम उत्तरकाण्ड म राम का प्राबलेम डाल्स हाउस म नोरा का प्राबलेम या योगायोग में कुमु का प्राबलेम एक तरह के नहीं हैं। जब 'योगायोग' उपन्यास 'विचित्रा' में धारावाहिक रूप से प्रकाशित हो रहा था और अध्याय के बाद अध्याय में कुमु इतना नचायी जा रही थी तो मैं यह सोच ही नहीं पा रहा था कि दुर्धर्ष प्रबल पराक्रान्त मधुसूदन के साथ उसके टग-आफ-वार का अन्त किस प्रकार होगा? पर कौन जानता था कि समस्या इतनी मामूली थी और लेडी डाक्टर एक मिनट में आकर उसकी मीमांसा कर देंगी। हमारे जलधरदादा का भी प्राबलेम फूटी आँखों नहीं भाता। उनकी एक पुस्तक में इसी तरह एक आदमी ने बहुत भारी समस्या की सृष्टि की थी पर उसकी मीमांसा एक दूसरे ही उपाय से हो गई। एक असली नाग ने आकर फनफना कर उसे काट लिया मैंने दादा से पूछा कि भाई यह क्या हुआ। इस पर उन्होंने कहा—क्यों इसमें क्या बात है क्या साँप कभी किसी को नहीं काटता?

अन्त में एक बात और कहनी है। रवीन्द्रनाथ ने लिखा है—'एक जमाने में इब्सेन के नाटकों की बड़ी कद्र थी पर उसी बीच में क्या उनका रंग कुछ-कुछ फीका नहीं पड़ गया? बाद को क्या वे आँखों से बिल्कुल ओझल नहीं हो जायेंगे? —ओझल हो सकते हैं पर यह अनुमान मात्र है प्रमाण नहीं।

# अद्भुत व्यक्तित्व

शरत्चन्द्र का व्यक्तित्व बहुत ही अद्भुत था। इसके कुछ ब्यौरे पहले आ चुके हैं जिनसे पता चलता है कि उन्होंने किस प्रकार साहित्य-सेवा की और उन पर क्या-क्या प्रभाव पड़े। इस अध्याय में कुछ फुटकर ब्यौरे दिये जा रहे हैं जो दिलचस्प होने के साथ ही उनके साहित्य पर रोशनी डालते हैं।

## चोरी से एक बुढ़िया की सहायता

२६ ९ २२ को हावड़ा के अपने गाँव से उन्होंने काशी की एक बुढ़िया का पत्र लिखा था जिससे पता चलता है कि वे किस प्रकार उस बुढ़िया की सहायता करते थे। यह बुढ़िया किसी सम्भ्रान्त घर की कन्या और बहू थी, पर बाल विधवा थी। हरिदास शास्त्री के अनुसार वह अच्छी पढ़ी लिखी थी और बंकिमचन्द्र तथा नवीनचन्द्र के सम्बन्ध में बहुत-सी बातें कहा करती थी। बढ़िया मालपुआ तैयार करती थी और लोगों को खिलाती थी। अन्तिम दिनों में आँखें खराब हो गई थीं इसलिए पढ़ नहीं पाती थी शरत्चन्द्र मेरे जरिये से उसकी कुछ सहायता करते थे।

उसे शरद् बाबू माँ कह करके सम्बोधित करते थे। शरद् बाबू ने पत्र में लिखा था—तुमने घर बदलकर अच्छा ही किया। क्या यह घर तुम्हें पसन्द है? यदि न हो तो दो-एक रुपया किराया ज्यादा देने पर और भी अच्छा घर मिल सकता है। तुम किराये के लिए चिन्ता न करो क्योंकि हरिदास वह रुपया देगा। तुम से वे किराया भी नहीं लेंगे।

हरिदास शास्त्री ने इस पर लिखा है कि 'असल में मैं कुछ भी नहीं देता था शरत्चन्द्र ही मुझे बीच में रखकर इस महिला की सहायता किया

करते थे ।

## शरीर की रखा-राख

१२ श्रावण १३३३ को उन्होंने अपने गाँव से एक पत्र में लिखा था—'अभी-अभी मैं एक सप्ताह का इलाज करके आ रहा हूँ । सारे शरीर में टिंक्चर आयोडीन लगाकर 'चालिका' खाने की व्यवस्था करके सेंक लगाने का प्रबन्ध कर लिया है । कल रात को उसकी नाव डूब जाने के कारण उस पर से नाव बह गई थी ।

## कुत्ते की मृत्यु पर शोक

अपने कुत्ते की मृत्यु पर उनको जितना शोक हुआ था और उस पर जितना दीर्घ पत्र लिखा था वह भी शरत् बाबू के ही योग्य था । उन्होंने २८-४-२५ को हावड़ा के अपने गाँव से लिखा था—'तबियत ठीक नहीं है । भेलू अब नहीं रहा । गत बृहस्पतिवार के पहले के बृहस्पतिवार को मैं सवेरे ढाका से यहाँ पहुँचा तभी उसे बेलगछिया अस्पताल से मोटर पर घर ले आया । आते ही वह बहुत बीमार हो गया । डाक्टरों ने कहा—बहुत तेज मेनिन्जाइटिस है । लगभग सात दिन सात रात मैं बिना खाए और सोए उसकी सेवा करता रहा फिर भी बृहस्पतिवार को प्रातःकाल ६ बजे उसका देहान्त हो गया । अन्तिम दिन उसे बहुत कष्ट रहा । बुधवार को मैंने उसे जबर्दस्ती थोड़ी दवा खिलाने की चेष्टा की मैंने चमचे से मुँह में दवा डालने की बहुत चेष्टा की पर दवा पेट में नहीं गई । उसने गुस्से के मारे मुझे काट लिया । उस दिन सारी रात मेरे अंगों के पास मुँह रख कर वह किस बुरी तरह रोता रहा । प्रातःकाल वह रोना बन्द हुआ । वह मेरा २४ घण्टे का साथी था इस दुनिया में केवल उसी ने मुझे पहचाना था । जब उसने काट लिया और सब लोग डर गये तब मुझे रवीन्द्रनाथ की यह पंक्ति बारबार याद आने लगी—'तुम्हारे प्रेम में आघात है अवहेलना नहीं है । उसके काटने में आघात था पर

बर्दाश्त नहीं थी। इसके पहले इतनी व्यथा मुझे कभी नहीं मिली। डाक्टर आदि कई मित्रों ने इलाज करने के लिए कहा यानी पागल कुत्ता काटे तो जो इलाज होना चाहिए वह इलाज होना जरूरी था। २८ इंजेक्शनों में आज १० इंजेक्शन खतम हुए १८ बाकी हैं वह भी पूरे होंगे। मनुष्य को निभाना ही पड़ेगा क्योंकि Your life is too valuable पर देखा जाय कि इस मूल्यवान जीवन का अन्त किस प्रकार होता है।"

## गाँव वालों की सहायता से विपत्ति

इसी प्रकार उनके हृदय का परिचय गाँव में रहते समय गाँव वालों की सहायता करने के कारण उन पर जो विपत्तियाँ आई उनसे भी मिलता है।

१९३ के लगभग एक पत्र में उन्होंने लिखा—"गाँव में आकर रहने का अच्छा मजा मिल रहा है यानी दीवानी और फौजदारी मामलों में फँस गया हूँ और अब काफी दौड़-धूप कर रहा हूँ। ३ साल तक मजे में निर्लिप्त निर्विकार रूप में रहा पर ग्रामदेवता को यह सहन नहीं हुआ इसलिये वे सिर पर सवार हो गए। बड़े जमींदारों से भले ही कोई पार पा जाए, पर स्थानीय सम्पन्न छुट जोतदारों का दबाव भयंकर होता है बहुत पुराने जमाने से लोगों के पास देवोत्तर जमीन चली आई थी पर दो-चार साल से बने हुए जोतदार को यह सहन नहीं हुआ। गरीब किसान रो कर हमारे पास आए तो मैं कूद पड़ा। मैंने यह बता दिया कि मैं इसमें पड़ गया हूँ तो छोड़ूँगा नहीं इसके बाद फौजदारी हुई। मामला जारी है पर भरसक बचा रहा हूँ सोच रहा हूँ कि यह किसी तरह खतम हो तो गाँव छोड़ कर भागूँ। कुछ सिखा कर शहर रहा जा सकता है।"

एक अन्य पत्र में भी इसी का जिक्र मिलता है। उसमें लिखा है कि 'मैं स्वयं अभियुक्त तो नहीं बना पर दीदी के देवर का पुत्र अभियुक्त

करते थे।

## गरीब की दवा-दारू

१२ श्रावण १३३३ को उन्होंने अपने गाँव से एक पत्र में लिखा था—'अभी-अभी मैं एक सप्ताह का इलाज करके आ रहा हूँ। सारे शरीर में टिंक्चर आयोडीन लगाकर 'मालिश' लाने की व्यवस्था करके सेंक लगाने का प्रबन्ध कर दिया है। कल रात को उसकी नाव डूब जाने के कारण उस पर से नाव बह गई थी।

## कुत्ते की मृत्यु पर शोक

अपने कुत्ते की मृत्यु पर उनको जितना शोक हुआ था और उस पर जितना दीर्घ पत्र लिखा था वह भी शरत् बाबू के ही योग्य था। उन्होंने २८ ४ २६ को हावड़ा के अपने गाँव से लिखा था—'तबियत ठीक नहीं है। भेलू अब नहीं रहा। गत बृहस्पतिवार के पहले के बृहस्पतिवार को मैं सवेरे ढाका से यहाँ पहुँचा तभी उसे बेलगछिया अस्पताल से मोटर पर घर ले आया। आते ही वह बहुत बीमार हो गया। डाक्टरों ने कहा—बहुत तेज गैस्ट्राइटिस है। लगभग सात दिन सात रात मैं बिना खाए और सोए उसकी सेवा करता रहा फिर भी बृहस्पतिवार को प्रातःकाल ६ बजे उसका देहान्त हो गया। अन्तिम दिन उसे बहुत कष्ट रहा। बुधवार को मैंने उसे जबर्दस्ती कड़वी दवा पिलाने की चेष्टा की मैंने चमचे से मुँह में दवा डालने की बहुत चेष्टा की पर दवा पेट में नहीं गई। उसने गुस्से के मारे मुझे काट लिया। उस दिन सारी रात मेरे गले के पास मुँह रख कर वह किस बुरी तरह रोता रहा। प्रातःकाल वह रोना बन्द हुआ। वह मेरा २४ घण्टे का साथी था इस दुनिया में केवल उसी ने मुझे पहचाना था। जब उसने काट लिया और सब लोग डर गये तब मुझे रवीन्द्रनाथ की यह पंक्ति बारम्बार याद आने लगी—'तुम्हारे प्रेम में आघात है अवहेलना नहीं है।' उसके काटने में आघात था पर

समझ में आता नहीं थी। इसके पहले इतनी व्यथा मुझे कभी नहीं मिली। डाक्टर आदि कई मित्रों ने इलाज करने के लिए कहा यानी पागल कुत्ता काटे तो जो इलाज होना चाहिए वह इलाज होना जरूरी था। २८ इंजेक्शनों में मात्र १० इंजेक्शन खतम हुए, १८ बाकी हैं वह भी पूरे होंगे। मनुष्य का जिलाना ही पड़ेगा क्योंकि Your life is too valuable, पर क्या जाने कि इस मूल्यवान जीवन का अन्त किस प्रकार होना है।"

## गाँव वालों की सहायता से विपत्ति

इसी प्रकार उनके हृदय का परिचय गाँव में रहते समय गाँव वालों की सहायता करने के कारण उन पर जो विपत्तियाँ आईं उनसे भी मिलता है।

१९३ के लगभग एक पत्र में उन्होंने लिखा—"गाँव में आकर बहुत का अच्छा सिला मिल रहा है यानी दीवानी और फौजदारी मामलों में फँस गया हूँ और अब काफी दौड़-धूप कर रहा हूँ। ३ साल तक मन में निश्चिन्त निर्विकार रूप से रहा पर ग्रामदेवता को यह सहन नहीं हुआ इसलिए वे सिर पर सवार हो गए। बड़े जमींदारों से सब ही कोई पार पा जाए, पर स्थानीय सम्पन्न कुछ लोगों का स्वभाव भयंकर होता है। बहुत पुराने जमाने से गाँवों के पास देवोत्तर जमीन खाली पड़ी थी पर हर-चार साल से बन रहे लोगों को यह सहन नहीं हुआ। गरीब किसान गर कर हमारे पास आए तो मैं कुछ पड़ा। मैंने यह बता दिया कि मैं इसमें पड़ गया हूँ या डाकू था नहीं इसके बाद फौजदारी हुई। जमा जाने दो पर झंझट बढ़ा ही है सोच रहा हूँ कि यह किसी तरह खतम हो तो गाँव छोड़ कर भागूँ। घूस खिला कर बाहर रहा जा सकता है।"

एक अन्य पत्र में भी इसी का जिक्र मिलता है। उसमें लिखा है कि "मैं स्वयं अभियुक्त तो नहीं बना पर दीनों के बेचारों का मूल अभियुक्त

करार दिये जाने के कारण अशान्ति भी कम नहीं हुई। लिखना-पढ़ना तो खतम सा हो रहा है।

## अफीम का व्यसन

शरत्चन्द्र कभी अपने जीवन की बातों को छिपाने के आदी नहीं थे। वे अफीम खाते थे और बराबर इस सम्बन्ध में लोगों से कहते थे कि मैं अफीम खाता हूँ। १८-३-१४ को एक पत्र में उन्होंने लिखा था—"मैं भयंकर अफीमची हूँ, तिस पर खूनी पेचिश है। कुछ भी हो, इस देश में मैंगोस्टिन फल से यह रोग आराम हो जाता है, अब मैं उसे खा रहा हूँ, पेचिश लगभग ठीक है।

५-१-१६ को एक दूसरे पत्र में लिखा—'मुझे इतना दुख शायद इसलिये मिला कि मैंने अफीम छोड़ने की चेष्टा की। अब मैं कभी अफीम छोड़ने का नाम नहीं लूँगा। जब अच्छी तरह अफीम फिर से शुरू किया तभी पर अच्छा हुआ। अब थोड़ी मात्रा और बढ़ा दूँ तो शायद हाथ भी ठीक हो जाए, अफीम कम करने के कारण दिमाग खाली-सा हो गया था फिर धीरे-धीरे भरता जा रहा है। क्या चीज है! आप लोगों को भी शुरू करना चाहिये। मैं समझता हूँ कि हर शरीफ आदमी को अफीम सेवन करना चाहिए।

१९३१ के लगभग शरत् बाबू बहुत बीमार थे तब भी उन्होंने लिखा था—"पर पुकार आ रही है। पाथेय भी तैयार है। सोते-सोते और जागते-जागते पढ़ना शुरू करता हूँ। बहुत दिनों का अभ्यास है। बहुत अफीम रक्त-मांस में मिला हुआ है। बहुतों के निकट हार मानी है पर मैंने आबकारी के लोगों को हराया था। इसलिए भरोसा है कि मौत में भी पाथेय का रस मुँह से बह कर जमीन पर नहीं गिरेगा।"

## भोजन विलासी

शरत् बाबू तगड़े भोजन-विलासी भी थे। इस बात को उन्होंने यथा-

रानी देवी को लिखे गये १० वैशाख १३३८ के पत्र में इस प्रकार लिखा है— 'एक तो ब्राह्मण हूँ तिस पर बूढ़ा इसलिये कोई मुझे यत्नपूर्वक खिलाये इसे मैं बहुत पसन्द करता हूँ यह मेरी रचनाओं में बार-बार आया है और लोग यह समझते हैं कि इसमें मैंने अपनी बात ही कही है।

पर उनकी रुचि मौखिक भोज्य में विशेष थी। बहुत कम लोग जानते हैं कि शरत् बाबू चित्रकला में दिलचस्पी रखते थे।

## चित्रकारी की साधना

शरत्चन्द्र उपन्यासकार बने पर उन्होंने बहुत तरह की साधना की थी जिसका परिचय उनके पत्रों से मिलता है। २२-९-१२ को पत्र लिखते हुए उन्होंने लिखा था— 'तुम्हें एक और खबर देनी है, जब तीन साल पहले यकृत की बीमारी का पहला लक्षण सामने आया तो मैंने पढ़ना छोड़कर आयल पेंटिंग शुरू किया। गत तीन सालों में मैंने बहुत से आयल पेन्टिंग बनाये थे जो जल गये हैं बस चित्रकारी की सामग्रियाँ बच गई हैं। अब यह बताओ कि मैं किस लाइन में जाऊँ? तीन लाइनें हैं— उपन्यास इतिहास और चित्रकारी। यह बताओ कि कौन-सा फिर से शुरू करूं?

उनकी इस चित्रकारी के बारे में बर्मा में रहने वाले उनके मित्रों ने बहुत कुछ लिखा है। उनके प्रथम चित्र का नाम 'रावण-मन्दोदरी' था पर उनके चित्रों में 'महाश्वेता' अधिक प्रसिद्ध हुआ था। उनके रंगून के मित्र योगेन्द्र नाथ सरकार ने लिखा है कि उनका सर्वप्रथम चित्र 'रावण मन्दोदरी' कुछ अस्पष्ट था पर 'महाश्वेता' उस दोष से मुक्त था। साथ ही अतिरिक्त रोशनी सामने से बहुत उज्ज्वल था ऐसा भी नहीं। आलोक और छाया का सम्बन्ध इसमें इस तरह परिस्फुटित हुआ था कि वह किसी नून ही अपरिपक्व कृति हो ऐसा नहीं कहा जा सकता वस्तुतः उसमें शरीर विद्या का ज्ञान परिप्रेक्षित और पृष्ठभूमि का याथार्थ्य सभी विद्यमान था। कलाकार का रंग सम्बन्धी ज्ञान भी कम था ऐसा नहीं कहा जा सकता।

कुल मिलाकर निसर्ग और मनुष्य का चित्र एक साथ मिलकर वैसा ही हुआ था जैसा होना चाहिए और 'तपस्विनी महाश्वेता' का चित्र प्रकृति के कल्पनाशील पुत्र शरत्चन्द्र की कूँची से निखर कर सामने आया था। वर्षा के दिनों में नदी का किनारा धुँधला मालूम हो रहा है, उस पार मेघों के भार से झुका आकाश और भी स्पष्ट था उसी की एक बगल से भगाया हुआ सूर्य कुछ ताक-झाँक रहा है। नदी तट पर पेड़ के नीचे बाल खोले सद्यस्नाता तपस्विनी महाश्वेता है, मानो रोती हुई प्रकृति देवी का ही एक जीता-जागता चित्र है।'[1]

२५ जनवरी १९१३ को उन्होंने फिर लिखा—'मैं पेन्टिंग करता हूँ आयल पेन्टिंग भी समझता हूँ और इस सम्बन्ध में मैंने बहुत काफी पुस्तकें पढ़ी हैं। उसी पत्र में उन्होंने लिखा—'मैं जैक आफ आल ट्रेड्स हूँ संगीत चित्र दर्शन काव्य नाटक, उपन्यास सभी विषयों में थोड़ा-थोड़ा जानता हूँ। ९–८–१३ को उन्होंने फिर एक पत्र में लिखा है कि दुख है कि 'अमुक चित्रकार का मूलचित्र नहीं देखा' नहीं तो इस तरह से उस पर तुम्हारी पत्रिका में टिप्पणियाँ दे सकता था जिससे मालूम होता कि यह किसी चित्र व्यवसायी की लिखी हुई है। उसी पत्र में फिर लिखा है कि चित्र पर राय जाहिर करना गीत की स्वर लिपि का दोष-गुण बताना वैज्ञानिक आलोचना तथा साहित्यिक आलोचना भी मैं कर सकता हूँ फिर व्यंग्य के साथ लिखा—'हाँ मेरे वश की बात यह नहीं है कि ताम्रलिप्ति वगैरह पर लिखूँ।'

पहले जिस महाश्वेता चित्र का वर्णन आया है उसके सम्बन्ध में १०–१–१३ को फिर लिखा— 'मेरा असमाप्त 'महाश्वेता' आयल पेन्टिंग फिर समाप्त होने की ओर जा रहा है।"

## संगीत-प्रेम

संगीत में भी उनकी विशेष रुचि थी। उन्होंने श्री दिलीपकुमार राय

---

१ शरत्चन्द्र : चित्रिता—श्री गोपालचन्द्र राय

को २२ मार्च १९३१ में लिखा था—"तुम्हारी पुस्तक और छोटा-सा पत्र मिला। २४ घंटे में पुस्तक पढ़कर समाप्त कर दी। बहुत अच्छी लगी। पर दो एक कमियाँ भी हैं। भारत के बड़े-बड़े नेताओं और कलाकारों में अपना नाम न देखकर मैं कुछ दुखित हुआ पर यह मैं निश्चित रूप से जानता हूँ कि यह तुम्हारी इच्छाकृत भूल नहीं है ध्यान न देने के कारण ही हो गई है और इसमें भी सन्देह नहीं कि भविष्य में तुम इस भूल को सुधार दोगे। राय बहादुर मजूमदार महाशय के गाए हुए 'रांगा जवा मूटा-मूर्गे' गीत का तुमने उल्लेख नहीं किया है वह भी होना चाहिए। वे भी दुखी हुए होंगे ऐसा मेरा विश्वास है। यह तो रही पुस्तक में जो कमी है उसकी बात पर एक मतभेद भी है, तुमने पूजनीय रवीन्द्र नाथ का एक उद्धरण दे दिया है—'हम लोग जनता के प्रति श्रद्धा नहीं रखते इसीलिए उनके लिए बाहर के आँगन में चना-चबैना की व्यवस्था करते हैं और उन्हें सन्देश नहीं परोसते। इत्यादि-इत्यादि। यह बात सुनने में अच्छी लगती है और इससे लेखक की मानसिक उदारता और निरपेक्षता भी सामने आती है पर असल में इतनी गलत बात कोई हो नहीं सकती। शिक्षा सभ्यता और संस्कृति के लिए सन्देश ही चाहिए, चना-चबैना खिलाने की चेष्टा करने पर उससे पेट ही दुखेगा और जनता माने छोटे लोग हैं वे चना-चबैना पर ही आश्रय करते हैं।

## विज्ञान में अभिरुचि

उन्हें विज्ञान से भी बहुत प्रेम था। वे बराबर विज्ञान की पुस्तकें पढ़ा करते थे और उनमें रस लेते थे। १९१५ में भारतवर्ष-पत्र में 'जड़ जगत' नामक एक लेख छपा था जिस पर उन्होंने पत्र के प्रकाशक को २२-१२-१९१७ को लिखा था—"अच्छा एक बात है, यदि 'जड़ जगत' नामक लेख का कोई प्रतिवाद करना चाहे मान लीजिये मेरी अपनी दीदी[1]

---

१ शरत् बाबू अक्सर अपना परिचय अनिला देवी के नाम से भी लिखते थे।

से मैं कुछ लिखा भूँ तो क्या आप उस प्रतिवाद को छापेंगे ? अवश्य आप इस पर सारी बातें सोच लीजिये। जर्मनी के सभी पंडितों ने यह नहीं माना है कि सिम्बल या कल्पना की प्रतिमा को सामने रख कर ही सब काम चल रहा है। यह तो मैंने एक उदाहरण दिया आखिर उनकी राय का कुछ मूल्य तो है ही इसके अलावा हेल्म होल्ट्ज ने सौन्दर्य के सम्बन्ध में उतना ही कहा जितना लेखक ने दिखाया है ? क्या उस ने उसे मान लिया था ? आप ही बताइए न ? और यह तो सिर्फ पदार्थ विद्या की बात हुई।"

उनके इस विज्ञान-प्रेम के सम्बन्ध में प्रत्यक्ष दर्शियों के भी कई संस्मरण हैं। प्रेमेन्द्र मित्र ने शरत्चन्द्र के सम्बन्ध में एक संस्मरण में लिखा है—"सुदूर ब्रह्मदेश से आकर कहानी के इस जादूगर ने एकाएक एक शुभ प्रभात में चकित और चमत्कृत कर दिया और सब लोग उन्हीं के द्वारा सृष्ट चरित्रों के संकेत का अनुसरण करते हुए उन्हें पहचानने की चेष्टा करने लगे। सतीश, उपेन्द्र रमेश यहाँ तक कि देवदास में भी हमने उनको खोजने की चेष्टा की इसी के साथ-साथ हमने उनके पेशू कुत्ते की बात भी सुनी थी। उनके कमरे में एक तरफ बन्दूक टंगी थी दूसरी तरफ रहता भालू तो अलमारियों में विज्ञान की अपठित पुस्तकें थीं।"

शरत् बाबू ने एक पत्र में राधारानी देवी को लिखा था—'असल में दीदी मैं कोई साहित्यकार नहीं हूँ मेरे लिए तो साहित्य-सृजन वैसे ही है जैसे एम० एस-सी० पास करके वकालत करना। साहित्य में मुझे कभी भी उतना आनन्द नहीं मिला जितना विज्ञान में मिला। इसी के लिए शायद मैं तैयार ही हुआ था पर ग्रहों के फेर के कारण सब कुछ बदल कर ही रहा। सोचता हूँ कि यदि फिर कभी जन्म हो तो ऐसी भूल न हो।"

इस पर टीका करते हुए श्री गोपालचन्द्र राय ने लिखा है कि—'साहित्य में उन्हें आनन्द नहीं मिलता था यह तो सहज रसिकता थी पर विज्ञान

में भी उन्हें आनन्द मिलता था इसमें कोई सन्देह नहीं क्योंकि उन्होंने कभी विज्ञान के बहुत से ग्रन्थ पढ़े थे। इसके अलावा सभी समय उनकी अलमारियों में वैज्ञानिक ग्रन्थ साथ रहते थे।

## वैष्णव साहित्य में निष्णात्

प्रारम्भ से ही शरत् बाबू को वैष्णव साहित्य से बड़ा प्रेम रहा। १५-११-१२ को एक पत्र में अपने प्रकाशक को लिखा था—'आपने हमें 'चैतन्य चरितामृत' पढ़ने के लिए दिया था पर उसे मैंने लौटाया नहीं। मात समय याद ही नहीं पड़ा। इसके बाद यहाँ चला आया। पुलिस ने खींच-तानकर उसकी बल्कि मेरी सब पुस्तकों की ऐसी हालत कर दी है कि वे अब बिकने लायक नहीं रहीं। जिल्द पर जाने कहाँ के दाग लग गए हैं। मुसीबत तो यह है कि इसका दाम बहुत है और दूसरे की पुस्तकें हैं मैं बहुत लज्जित हूँ पर कोई उपाय भी नहीं दीखता। इसके अलावा और भी बहुत से वैष्णव ग्रन्थ पढ़ने के लिए दिया था। इन सारी किताबों को कितनी बार पढ़ चुका हूँ और रोज ही पढ़ता हूँ यह मैं नहीं कह सकता। बात तो यही थी कि ये लौटा दी जायें।

## पोंगापन्थ का विरोध

शरत्-साहित्य में बराबर पोंगापन्थ के विरुद्ध लिखा गया है। बंगाल के एक धन्य स्वनामधन्य महापुरुष श्री अरविन्द के शिष्यों के प्रति शरत् बाबू के मन में कभी श्रद्धा नहीं रही यह उनके कुछ पत्रों में बहुत स्पष्ट रूप से सामने आता है। दिलीपकुमार राय को ११-१-२९ को एक पत्र में उन्होंने लिखा— मैं सुनता हूँ कि बारीन्द्र[1] जिस किसी पेड़ का पत्ता नाक के सामने रखकर जिस फूल की भी गन्ध सूँघना चाहें सूँघ सकता है। उपेन्द्र[2] का कहना है कि उनमें यह गुर श्री अरविन्द से भर लिया है।

१. श्री अरविन्द के छोटे भाई एवं सुप्रसिद्ध क्रान्तिकारी बारीन्द्रकुमार घोष।
२. उपेन्द्र भी सुप्रसिद्ध क्रान्तिकारी थे।

पाते समय तुम भी इसे सीख लेना। एकाएक अरविन्द भागेंगे नहीं पर तुम भी पीछे पड़े रहना। कुछ दिनों तक उनकी 'अन्नमन की बांसुरी' की तारीफ़ के पुल बांध देना और हर समय उस पुस्तक को हाथ में रखना बीच बीच में यह कहना कि इतने दिनों तक तुमने यह पुस्तक नहीं पढ़ी इसका बड़ा अफ़सोस है बहुत सम्भव है कि इतने ही से तुम यह विभूति मार पाओगे। उत्तर भारत में घूमते समय यह हुर बहुत काम आयेगा। सुना है कि अभिसवरण मिट्टी को चीनी बना सकता है। बहुत देर तक मिट्टी चीनी नहीं बनी रहती पर पांच-सात घंटे तक चीनी की तरह देखने में और खाने में हो जाती है इसे भी निश्चित रूप से सीखने की चेष्टा करना। एकाएक रास्ते में प्रवास में रुपया-पैसा कम पड़ जाय तो समझ गये न बस ? इसे सीख ही लेना है। अभिसवरण सरल और अच्छा आदमी है। यदि एकदम ही सिखाने से इनकार कर दे तो भूत और चुड़ैलों की कहानियां कहते रहना और कसम खाकर कहना कि तुमने अपनी आंख से चुड़ैल देखी है यह किया कि बस सोचना नहीं पड़ेगा बिना किसी आयास के ही गुर हाथ लग जायगा। और यदि तुमने ये दोनों बातें सीख ली तो फिर उस आश्रम में झख मारने की ज़रूरत क्या है ?"

दूसरे पत्र में 'पुनश्च' करके फिर उन्होंने लिखा था— इन दोनों गुरों को सीखना ही है, औने-पौने में बहुत काम आयेंगे। जो कुछ भी हो जल्दी चले आओ। तुम मेरा विश्वास करो सन्यासी होने में अब कोई गुरुत्व नहीं रह गया।"

इसके लगभग तीन साल बाद ४ कार्तिक १३३८ (बंगला सन्) में शरत् बाबू ने एक पत्र में लिखा— श्री अरविन्द के सम्बन्ध में मैंने कहीं यह बात नहीं कही। उन पर देशवासियों की बड़ी श्रद्धा है क्या मैं ही इससे अलग हूं ? पर आश्रमवासियों पर मेरा मन सुप्रसन्न नहीं है। कुछ तो 'द— की बातों से और कुछ दूसरे आश्रमवासियों के सम्बन्ध में मुझे जो व्यक्तिगत जानकारी है उससे मेरे मन में यह धारणा उत्पन्न हुई

है। इसके अलावा तुम्हारा आश्रम में जाना मुझे बहुत अखरा। जब तुम आई० सी० एस० या कानून नहीं पढ़े तब भी अखरा था पर जब तुमने संगीत और साहित्य को अपना लिया तो वह क्षोभ दूर हो गया। मैंने सोचा था सब लोग नौकरी करेंगे और हाकिम या बैरिस्टर के रूप में लोगों को जेल भेजते रहेंगे यह क्यों? तुम्हें रोटी-दाल की चिन्ता नहीं है, यदि भारत की कला और शिल्प को विदेशियों की आँख में जँचा सको इसके गतानुगतिक मार्ग से अपनी बुद्धि से एक नया मार्ग निकाल सको तो क्या यह देश के लिए कल्याण या गौरव की वस्तु नहीं होगी? तुम्हीं से सुना था कि विदेश में 'सिम्फनी' नाम की एक वस्तु है यह बहुत बड़ी बात है वह सचमुच ही बड़ी है और तुम अपने देश के संगीत में उसे लाना चाहते हो। इसके बाद मैंने एकाएक सुना कि तुम सब कुछ छोड़कर वैरागी हो गये। एकाएक ऐसा जान पड़ा जैसे मेरी बड़ी भारी वैयक्तिक हानि हुई है।

"मैं सुनता हूँ कि अनिलबरण मिट्टी को चीनी बना सकता है। क्या यह बात सही है कि आश्रम की सारी चीनी वही सप्लाई करता है? मुझे इस पर विश्वास नहीं है क्योंकि यदि उसे यह गुर मालूम होता तो फिर वह आश्रम में रहता ही क्यों है कलकत्ते में आकर मजे से चीनी की एक दूकान खोल सकता था।

बारीनकुमार से अक्सर भेंट होती है। वह कहता है कि वह अब उभर सकने वाला नहीं है। इतनी बड़ी पार्टियों के बीच उसकी आत्मा आज भी पिंजड़े से नहीं निकली यह उसका अहोभाग्य है पर तुम लोगों की 'मदर' के सम्बन्ध उसने गम्भीर वक्तव्य दिया है। वह कहता है वैसा आश्चर्यजनक मनुष्य देखने में नहीं आता। कहता है कि उनकी सूक्ष्म दृष्टि एक अद्भुत बात है। वह एक तरफ बहुत ही मेहनती हैं दूसरी तरफ अनुशासन के सम्बन्ध में भी बहुत सतर्क हैं साथ ही बुद्धि प्रखर है। हर आदमी की हर बात उनकी आँख के सामने रहती है। उनके आदेश या उपदेश के अतिरिक्त वहाँ कुछ भी नहीं हो सकता। इसीलिए बाहर से

एकाएक जो लोग जाते हैं वे उनके सम्बन्ध में तरह-तरह की उल्टी-सीधी धारणा लेकर लौटते हैं।'

इसी पत्र में उन्होंने पुनश्च करके ये शब्द लिखे थे— 'अनिलबरण के द्वारा चीनी बनाने की खबर कहाँ तक सही है यह जरूर लिखना। यदि सीख सको तो जावा की चीनी का बायकाट बहुत आसानी से किया जा सकता है यह देश का एक महत् काम है।

इसके तीन साल बाद ६ मार्च १९३१ को उन्होंने एक पत्र में लिखा— 'श्री अरविन्द के हाथ की लिखी हुई चिट्ठी मैंने यत्नपूर्वक रख दी। यह एक रत्न है।"

यहाँ थोड़े शब्दों में यह बता दिया जाए कि इन दिनों 'श्रीकान्त' के अंग्रेजी अनुवाद की बातचीत चल रही थी। दिलीपकुमार राय अनुवाद करने वाले थे और अरविन्द ने यह विश्वास दिलाया था कि वे उस अनुवाद को देख देंगे। कम-से-कम ऐसी कुछ आशा थी। शरत् बाबू श्री अरविन्द की विद्वत्ता और अंग्रेजी ज्ञान के सम्बन्ध में बहुत अच्छी तरह जानते थे।

शरत् बाबू ने उक्त पत्र में ही लिखा था— 'जब श्री अरविन्द स्वयं उसे देख लेने का संकल्प कर चुके हैं तो अनुवाद तो अच्छा ही होगा पर पुस्तक (निष्कृति) में ऐसा क्या हुआ है मुझे नहीं मालूम। क्यों श्री अरविन्द को यह अच्छी लगी यह मैं नहीं जानता। कम-से-कम न लगती तो मैं न तो विस्मित होता और न क्षुब्ध ही होता। जब तुम 'श्रीकान्त' का प्रचार कराओगे तभी मैं आशा करूँगा कि शायद पश्चिम के लोग एक बंगला कथाकार को श्रद्धा की दृष्टि से देख सकेंगे। यदि तुममें उद्योग कायम रहा और श्री अरविन्द का आशीर्वाद रहा तो यह असम्भव नहीं कि एक दिन यह सम्भव हो जाय। यही आशा रखता हूँ।

श्री अरविन्द की मदर की प्रार्थना सचमुच ही सुन्दर लगी। इसमें कोई सन्देह नहीं कि वे एक बहुत बड़े कवि हैं।"

## बंगला साहित्य और मुसलमान

यद्यपि बंगला साहित्य में मुसलमान लेखकों की कमी नहीं रहा है फिर भी इस क्षेत्र में जितने हिन्दू आये उस अनुपात से मुसलमान नहीं आये। इस सम्बन्ध में कई समस्यायें हैं। श्रीमती जहाँनारा चौधरी को एक पत्र लिखते हुए शरत् बाबू ने इस सम्बन्ध में कुछ प्रश्नों पर रोशनी डाली थी। उन्होंने लिखा था— 'तुमने अपनी वार्षिक पत्रिका में कुछ लिखने के लिए अनुरोध किया है। मैं सोच रहा था कि साहित्य के धर्म रूप गठन सीमा तत्त्व आदि पर अब तक थोड़ी बहुत आलोचना हुई है पर एक दिशा में जानकर किसी ने कुछ नहीं कहा वह है साहित्य के प्रयोजन तथा उसकी कल्याणकारी शक्ति के सम्बन्ध में। शायद इस बात को बहुत से लोग स्वीकार करेंगे कि साहित्य रस के जरिये से पाठक के चित्त में जैसे सुविमल आनन्द की सृष्टि होती है उसी तरह वह मनुष्य के अनेक अन्तर्निहित कुसंस्कारों की जड़ों पर भी चोट कर सकता है उसी के फलस्वरूप मनुष्य महान होता है उसकी दृष्टि उदार होती है उसका सहिष्णु क्षमाशील मन साहित्य रस की नवीन सम्पदाओं से ऐश्वर्यवान हो जाता है। पर बंगाल के एक बड़े हिस्से में उसका व्यतिक्रम देखा जा रहा है। साहित्य सृष्टि के साथ-साथ यहाँ क्षोभ और वेदना उत्तरोत्तर तीव्र बढ़ती ही जा रही है। मैं तुम्हारे मुसलमान समाज की बात कह रहा हूँ यह भी देख रहा हूँ कि कुछ लोग गुस्से के मारे भाषा को ही विकृत करना चाहते हैं यह नहीं कि इसके लिए उनके पास सामान नहीं है, पर जोश शान्त होने पर वे स्वयं ही समझेंगे कि बहाना बनाने से अधिक कुछ भी नहीं है। जिस कारण से भी हो इतने दिनों तक बंगाल के हिन्दू ही साहित्य-चर्चा करते आये हैं मुसलमान समाज पूरी तरह इस तरफ से उदासीन था पर साधना का फल तो होता ही है इसलिए वाणी देवता ने इनको भी वर दिया है। मुझे सब साहित्य-रसिक मुसलमान साहित्यिकों की बात मुझे याद है पर किसी दिन भी वह विस्मृत नहीं हो सकता। इसी लिए निर्मल-क्रिया न इसका

नाम दिया है 'हिन्दू साहित्य' पर अफसोस कि अभिव्यक्ति को उचित नहीं कहा जा सकता यद्यपि कहा जा सकता है कि कुछ साहित्यकारों ने मुसलमान चरित्र चित्रित किया है और कहीं-कहीं इतने बड़े विराट् समाज के सुख-दुख का कुछ ब्यौरा भी दिया है फिर कैसे उनकी सहानुभूति मिले और कैसे उनका हृदय छू सके ? हृदय छूना तो दूर रहा बल्कि विपरीत परिणाम ही हुआ है फलस्वरूप जो हानि हुई है उसके प्रतिकार का रास्ता भी खोजना पड़ेगा।

कुछ समय पहले मेरे एक नवीन मुसलिम मित्र ने इस प्रकार का अफसोस व्यक्त किया था।—वे स्वयं साहित्यसेवी हैं विद्वान् अध्यापक हैं साथ ही उनके हृदय को साम्प्रदायिक मलिनता स्पर्श नहीं कर सकी और न उनकी दृष्टि ही धुंधली हो सकी बोले हिन्दू-मुसलमान ये दो वृहत् जातियां हैं। एक ही देश में एक ही वातावरण में एक ही पड़ोस में रहते हैं आजन्म एक ही भाषा बोलते हैं पर इतने विलग और बेगाने हैं कि सोचने पर आश्चर्य मालूम होता है। संसार और जीवन धारण के प्रयोजन में बाहर का लेन-देन कुछ-कुछ है पर भीतर का लेन-देन एकदम नदारद है कहा जाय तो कोई अत्युक्ति नहीं होगी। ऐसा क्यों हुआ इस गवेषणा का प्रयोजन नहीं है पर आज इस विच्छेद का अन्त और इस दुस्तर खाई को मिटाना ही पड़ेगा नहीं तो किसी का कल्याण नहीं है।

मैंने कहा—मैं इस बात को मानता हूँ पर इस असाध्य साधन का उपाय क्या है ?

उन्होंने कहा—केवल एक है और वह है साहित्य आप लोग हमें खींच लीजिये स्नेह और सहानुभूति से हमारी बात कहिये केवल हिन्दुओं के लिए हिन्दू साहित्य की रचना न कीजिये। मुसलमान पाठकों की बात जरा याद रखिये। आप देखेंगे कि बाहर भेद कितना भी अधिक दिखाई पड़े फिर भी दोनों की शिराओं में एक ही आनन्द और वेदना का खून बहता है।

मैंने कहा—यह मुझे मालूम है पर अनुराग के साथ विराग, प्रशंसा

के साथ तिरस्कार, अच्छी के साथ बुरी बात कहना साहित्य का अपरिहार्य अंग है इसे तुम न तो ग्रहण करोगे और न क्षमा करोगे। शायद ऐसे दंड की व्यवस्था करोगे जिसे सोचने पर भी रोंगटे खड़े हो जाते हैं, इससे जो कुछ है वह कम-से-कम निरापद तो है।

इसके बाद हम दोनों कुछ देर तक चुप रहे, अन्त में मैंने कहा—तुम लोगों में शायद कोई-कोई कहे कि हम कायर हैं तुम लोग वीर हो। तुम लोग हिन्दू की कसम से निन्दा बर्दाश्त नहीं करोगे और प्रतिशोध भी जो लोगे, वह हर दर्जे का होगा। यह भी मानता हूं कि व्यक्तिगत रूप से तुम लोगों को बहादुर मानने में हमें आपत्ति नहीं है। तुम लोगों के सम्बन्ध में हम लोगों को भय और संकोच सचमुच अधिक है पर यह भी बताता हूं कि यदि कभी तुम लोगों की वीरत्व की धारणा बदली तो बेशक तुम्हीं लोग सबसे अधिक हानि उठा चुके हो।

तरुण मित्र दुखी हुए बोले—क्या इस प्रकार असहयोग हमेशा चलेगा ?

मैंने कहा—नहीं हमेशा नहीं चलेगा क्योंकि जो लोग साहित्य के सेवक हैं उनकी जाति और सम्प्रदाय अलग नहीं है, वे मूलतः और आन्तरिक रूप से एक है, इस सत्य की उपलब्धि करके उस अवांछित सामयिक खाई को तुम्हें पाटना पड़ेगा।

मित्र ने कहा—अब से यही चेष्टा करूँगा।

मैंने कहा—करना। अपनी चेष्टा पर जगदीश्वर का आशीर्वाद प्रति दिन अनुभव करोगे।

## समाज-बहिष्कृत

शरत्चन्द्र राजनीतिक क्षेत्र के अतिरिक्त सामाजिक क्षेत्र में भी अपने ढंग से ही चलते थे। २१. ६. १६ को एक पत्र में उन्होंने अपने प्रकाशक को लिखा— आप शायद जानते हों कि इस शुक्रवार से बाद के शुक्रवार को मेरी भांजी की शादी है। इसमें सारी जिम्मेदारी मुझी पर है और मेरी

सारी जिम्मेदारी आप पर। इतने दिनों तक मैंने आपको बताया नहीं कि अपने गाँव में मैं समाज से बहिष्कृत हूँ। इसीलिए ब्याह-शादी के मौके पर मुझे जाना नहीं चाहिये। और इस पर मैं नहीं सोचता हूँ क्योंकि वे लोग भी यही चाहते हैं कि मैं रुपये दूँ पर गुप्त रूप से। वे यह चाहते हैं कि मैं न जाऊँ। ४०० रुपये की कमी पड़ रही है। मुझे यह रकम चाहिये।

इस पर श्रीगोपालचन्द्र राय ने यह टिप्पणी जोड़ी है—"शरत्चन्द्र ने मेदिनीपुर जिले के कृष्णदास अधिकारी की कन्या हिरण्यमयी देवी से शादी की थी। उन्होंने ब्याह के समय नाते-रिश्तेदारों को खबर नहीं दी इसीलिये उस ब्याह की बात बहुत कम लोग जानते थे। जब शरत्चन्द्र रंगून से गाँव घर लौटे तब भी कुछ लोग उस बात पर अटकलें भिड़ाते थे कि हिरण्यमयी देवी पता नहीं कहाँ की किस जाति की है पर शरत् बाबू में यह आदत थी कि कोई झूठ बोले तो वे उसका प्रतिवाद नहीं करते थे और बिना कुछ कहे मजा लेते थे। उनके इस स्वभाव का फायदा उठाकर ऐसे लोगों ने अन्त तक उन्हें गाँव घर के समाज से निकाल दिया था।"

# कालानुक्रामक ग्रन्थ-तालिका

| | | | |
|---|---|---|---|
| १९१३ | सितम्बर | बड़दिदि | (उपन्यास) |
| १९१४ | मई | विराजबहू | (     ) |
| | जुलाई | बिन्दुर छेले तथा | |
| | | अन्यान्य गल्प | (गल्प समष्टि) |
| | अगस्त | परिणीता | (गल्प) |
| | सितम्बर | पण्डित महाशय | (उपन्यास) |
| १९१५ | दिसम्बर | मझलिदि तथा | |
| | | अन्यान्य गल्प | (गल्प समष्टि) |
| १९१६ | जनवरी | पल्ली-समाज | (उपन्यास) |
| | मार्च | चन्द्रनाथ | (उपन्यास) |
| | जून | बैकुण्ठर विल | (गल्प) |
| | नवम्बर | अरक्षणीया | (गल्प) |
| १९१७ | फरवरी | श्रीकान्त—प्रथमपर्व | (उपन्यास) |
| | जून | देवदास | (     ) |
| | जुलाई | निष्कृति | (गल्प) |
| | सितम्बर | काशीनाथ | (गल्प समष्टि) |
| | नवम्बर | चरित्रहीन | (उपन्यास) |
| १९१८ | फरवरी | स्वामी | (गल्प समष्टि) |
| | २ सितम्बर | दत्ता | (उपन्यास) |
| | २८ सितम्बर | श्रीकान्त–द्वितीयपर्व | (उपन्यास) |
| १९२० | जनवरी | छवि | (गल्प समष्टि) |

| | | | |
|---|---|---|---|
| | मार्च | गृहदाह | (उपन्यास) |
| | अक्टूबर | बामुनेर मेये | ( " ) |
| १९२३ | अप्रैल | नारीर मूल्य | (सन्दर्भ) |
| | अगस्त | देना-पावना | (उपन्यास) |
| १९२४ | अक्टूबर | नव-विधान | ( " ) |
| १९२६ | मार्च | हरिलक्ष्मी | (गल्प समष्टि) |
| | अगस्त | पथेरदाबी | (उपन्यास) |
| १९२७ | अप्रैल | श्रीकान्त—तृतीयपर्व | (उपन्यास) |
| | अगस्त | षोडशी | (देना-पावना का नाट्य रूपान्तर) |
| १९२८ | अगस्त | रमा | (पल्ली-समाज का नाटय रूप) |
| १९२९ | अप्रैल | तरुणेर विद्रोह | (सन्दर्भ) |
| १९३१ | मई | शेष प्रश्न | (उपन्यास) |
| १९३२ | अगस्त | स्वदेश और साहित्य | (सन्दर्भ संग्रह) |

राजनीति :—आमार कथा (भाषण हुगली जिला कांग्रेस कमेटी २४ जुलाई १९२१) स्वराज्य साधनाय नारी (भाषण शिवपुर इन्स्टीट्यूट पौष १३२८) शिक्षार विरोध (१३२८ में गौड़ीय सर्वविद्या आयतन में पठित) स्मृति कथा (देशबन्धु के सम्बन्ध में) अभिनन्दन (१३२८ के जून में देशबन्धु को दिया गया)।

साहित्य :—भविष्यत् बंग-साहित्य (नवद्वीप शाखा साहित्य परिषद् का अभिनन्दन भाषण ज्येष्ठ १३३ ) गुरु शिष्य सम्वाद ('यमुना' फाल्गुन १३२०) साहित्य और नीति (नदिया शाखा साहित्य परिषद् के वार्षिक अधिवेशन में दिया गया भाषण १० आश्विन १३३१) साहित्य आर्ट और दुर्नीति (१३३१ चैत्र मास में मुंशी गंज में सम्पन्न बंगीय-साहित्य-सम्मेलन के साहित्य शाखा के सभापति के रूप में दिया गया भाषण) भारतीय उच्च संगीत ('भारतवर्ष )

फाल्गुन १३३१) आधुनिक साहित्येर कैफियत (भाषण शिवपुर इन्स्टीट्यूट १५ आषाढ़ १३३०) साहित्येर रीति ओ नीति ('वंग-वाणी' आश्विन १३३४) अभिभाषण (१३३५ भाद्रमास में ५३वें जन्मदिन के उपलक्ष्य में यूनीवर्सिटी इन्स्टीट्यूट) अभिभाषण (१३३८ में ५३वीं जन्मतिथि के उपलक्ष्य में प्रैसीडेन्सी कालेज बंकिम शरत् समिति में) यतीन्द्र सम्वर्धना शेष प्रश्न (सुमन्थ भवन की श्रीमती सेन को लिखित) रवीन्द्रनाथ (१३३८ में रवीन्द्र जयन्ती के उपलक्ष्य में पठित)।

| | | | |
|---|---|---|---|
| १९३३ | मार्च | श्रीकान्त चतुर्थपर्व | (उपन्यास) |
| १९३४ | मार्च | अनुराधा सती और परेश | (गल्प समष्टि) |
| | अगस्त | विराजबहू | (नाट्य रूप) |
| | दिसम्बर | विजया | ('दत्ता' का नाट्य रूप) |
| १९३५ | फरवरी | विप्रदास | (उपन्यास) |

(मृत्यु के बाद प्रकाशित)

| | | | |
|---|---|---|---|
| १९३८ | मार्च | शरत्चन्द्र ओ छात्र समाज | (भाषण समष्टि) |
| | अप्रैल | छेलेबेलार गल्प | (बच्चों के लिए गल्प समष्टि) |
| | जून | शुभदा | (उपन्यास) |
| १९३९ | जून | शेषेर परिचय | ( " ) |
| १९४८ | फरवरी | शरत्चन्द्रेर पत्रावली | |